संघर्ष

और

समीक्षा

श्रीराम शर्मा

संघर्ष और समीक्षा

श्रीराम शर्मा

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड
हीराबाग, बम्बई–४

विषय-सूची

भूमिका—डा० कैलासनाथ काटजू	...	
१. आन्दोलनका पूर्वपृष्ठ	...	१
२. दाव-पेंच	...	१३
३. गिरफ़्तारी	...	२५
४. सूबेदार जुम्मन ख़ाँ	...	३७
५. ठुकाई-पिटाई और अपमान	...	४५
६. कताई	...	५६
७. रामकली	...	६८
८. रहस्योद्घाटन	...	७९
९. दो उदाहरण	...	८९
१०. आन्दोलन-संचालन-जन्य व्यय	...	१००
११. मुसीबतके साथी	...	१११
१२. आन्दोलनके बाद	...	१२५
१३. हत्याका षड्यन्त्र	...	१४१
१४. पिताजीकी अस्थियोंका विसर्जन	...	१५५
१५. समीक्षा	...	१७२
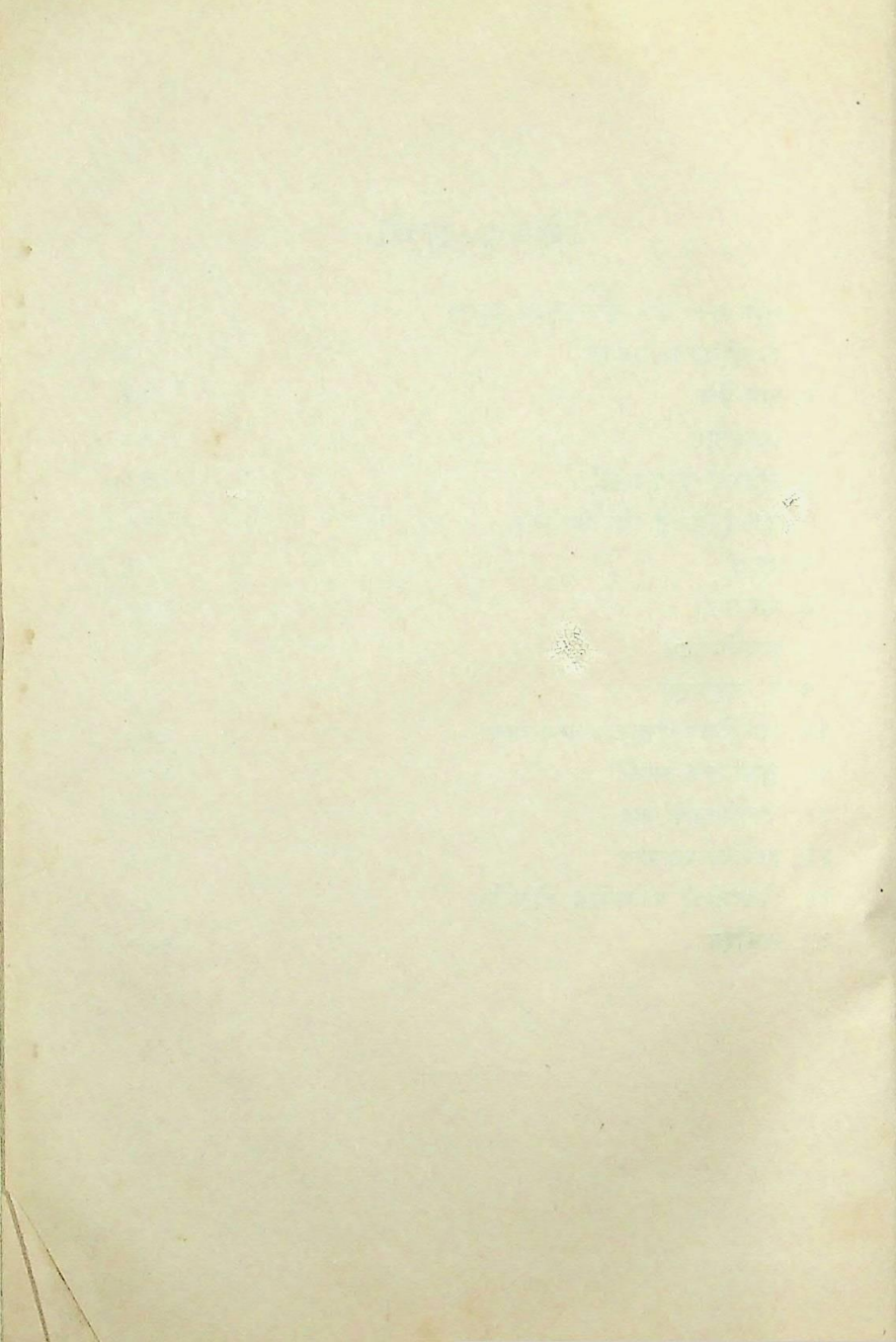
भूमिका

'संघर्ष और समीक्षा'के लेखक हिन्दीके सुविख्यात लेखकों और पत्रकारोंमेंसे हैं। स्कैच, रेखाचित्र, संस्मरण और भेंट लेनेकी कलामें तो उनका एक विशेष स्थान है। हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ स्कैच और संस्मरण-लेखकोंमेंसे वे एक हैं। इस पुस्तककी भूमिकामें मुझे उनकी साहित्य-सेवाका विवेचन नहीं करना और न इस पुस्तकका साहित्यिक दृष्टिसे मूल्यांकन करना मेरा काम है। मैं तो साधारण रूपसे इस इस पुस्तकके विषयमें इसलिए लिखना चाहता हूँ क्योंकि मैं लेखकको एक रचनात्मक कार्यकर्त्ताके रूपमें अधिक जानता हूँ। उत्तरप्रदेशकी सेक्रेटरियेटमें मेरे अधीन उन्होंने ग्राम-सुधार-विभागको सँभाला था। उनकी लगन, सूझ-बूझ, कृषि और पशु-पालन तथा अन्य रचनात्मक कार्योंसे मैं परिचित हूँ। उनकी कर्त्तव्य-निष्ठा और लगन लोगोंके लिए न केवल उत्साहवर्धक हैं वरन् प्रेरणामूलक भी।

मैंने श्रीरामजीको सन् १९४२ के आन्दोलन-सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाये गए, आगरा षड्यंत्र केसके मुख्य अभियुक्तके रूपमें भी देखा था। उनपर अनेक दफ़ायें लगी थीं, जिनमेंसे दो तो ऐसी थीं कि उनमें दंडित होनेपर उन्हें फाँसी भी हो सकती थी। आगरा सैशन्स अदालतमें, मैं उनका और उनके साथियोंका वकील होकर गया था। मुसीबतका समय था, बहुत कम लोग साथ देते थे। आगरेवालोंने तो समझ ही लिया था कि श्रीरामजीको फाँसी होगी। अभियुक्तके रूपमें भी वे अडिग ही थे। मेरे आग्रहपर ही वे मुक़दमेको क़ानूनी तौरपर लड़ने-को तैयार हुए थे। यहाँ मुझे इस विवादमें नहीं पड़ना कि १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसियोंका आन्दोलन था या गैर-कांग्रेसियों का। बापूजीके सामने जो बात श्रीरामजीने कही वह इस पुस्तकमें है ही। शरलॉक

होम्सकी तरह मुझे भी श्रीरामजीपर लगाई गई दफ़ाओंमेंसे कई बातें सूझीं, उन्हींको लेकर मैंने मुक़दमेमें बहस की और श्रीरामजी तथा उनके साथी सैशन्स अदालतसे बरी हो गए। हाँ, उनके बड़े भाईको साधारण-सी दफ़ामें थोड़ी सज़ा हो गई।

'संघर्ष और समीक्षा' में श्रीरामजीने १९४२ के आन्दोलनका एक ऐसा सजीव और निष्पक्ष चित्र खींचा है कि पढ़नेवाला मंत्रमुग्ध हो जाता है। एक तो उनकी लेखन-शैली बड़ी हृदयग्राही है, तिसपर भी उनकी सूक्ष्म विश्लेपण-शक्तिने तो सोनेमें सुगंधका काम किया है।

'संघर्ष और समीक्षा'के पढ़नेसे १९४२ के आन्दोलन-सम्बन्धी अनेक तथ्योंपर एक नया प्रकाश पाठकोंको मिलेगा। सन् १९४२ के आन्दोलनकी तोड़-फोड़ सम्बन्धी योजना महीनों पूर्व अनेक कांग्रेसजनोंने बना ली थी और उस योजना बनानेवालोंमें स्व० रफ़ी अहमद क़िदवई भी थे। इस बातसे स्पष्ट हो जाता है कि अनेक लोगोंको ९ अगस्त १९४२ से प्रारम्भ होनेवाले धुँआधार आन्दोलनका आभास मिल गया था। स्वयं लेखकने इस बातको स्वीकार किया है कि वह आन्दोलन कांग्रेसका न होकर कांग्रेसजनोंका था। कैसी कठिनाईसे वह चला और ब्रिटिश साम्राज्य-जैसी शक्तिसे उलझनेके लिए कैसे लोगोंने प्राणोंकी बाज़ी लगाई थी।

'संघर्ष और समीक्षा' केवल संस्मरणात्मक और ऐतिहासिक पुस्तक ही नहीं है वरन् उसमें कई अन्य विषयोंका भी ऐसा पुट है जिन्हें पढ़कर पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है। प्रकृति-चित्रणमें तो श्रीरामजी हिन्दीमें अद्वितीय हैं और 'रामकली' ऐसा ही, फतेहगढ़ जेलकी एक मैनाका चित्रण है। एक छोटे-से पक्षीके चित्रणसे प्रतीत होता है मानों वह किसी घरकी कुलवधू हो और जो स्नेह, तथा तपस्याकी साकार मूर्ति हो। 'रामकली'को पढ़कर हृदय द्रवित हो जाता है और एक जेलवासीकी सुकुमार भावनाओंका अनुमान लगाया जा सकता है। 'सूबेदार जुम्मन ख़ाँ' पुलिसकी वर्दीमें एक मानवका काम करता है। उसके अफ़सरोंका आदेश है कि वह आगरा षड्यन्त्र केसके व्यक्तियोंपर गोली भी चला

सकता है। 'रहस्योद्घाटन' पढ़कर लोग समझ गए होंगे कि श्रीरामजी और उनके साथियोंको सँभलनेमें कितना समय लग गया था और पुलिस साड़ीका रहस्य ही न समझ सकी। श्रीरामजीको अर्जुनकी बृहन्नला रूपकी याद आ गई होगी। जो जानकी बाज़ी लगाकर देशपर मर-मिटनेको तैयार है उसकी सूझ-बूझ कैसी पैनी हो जाती है, यह बात इस पुस्तकसे स्पष्ट होती है। 'मुसीबतके साथी' तो हृदयविदारक है, उसे पढ़कर नेत्र सजल हो जाते हैं। मुसीबतमें बहुत कम साथ देते हैं।

मैंने ऊपर लिखा है कि श्रीरामजी मूलतः रचनात्मक कार्यकर्त्ता हैं, बिजलीसे जहाँ रचनात्मक कार्य होते हैं वहाँ उसी शक्तिसे नष्ट-भ्रष्ट कार्य भी सम्भव हो सकता है। श्रीरामजीने १९४२ में जो तोड़-फोड़ प्रोग्राम चलाया उससे कोई सहमत न हो पर इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने अपनी रचनात्मक शक्तिको ध्वंसात्मक कृत्यमें लगाया। पर मूलरूपसे वे अहिंसाके पुजारी हैं अतः उन्होंने कोई हत्या न होने दी। 'समीक्षा'में जो रूपरेखा उन्होंने खींची है वह अक्षरशः सत्य है।

मुझे आशा है कि हिन्दी जगत्में इस पुस्तकका स्वागत होगा। मनोरंजनके साथ पाठकोंको इसमें ज्ञानकण भी मिलेंगे। मैं इस पुस्तकके लेखक और प्रकाशकको बधाई देता हूँ।

—कैलासनाथ काटजू
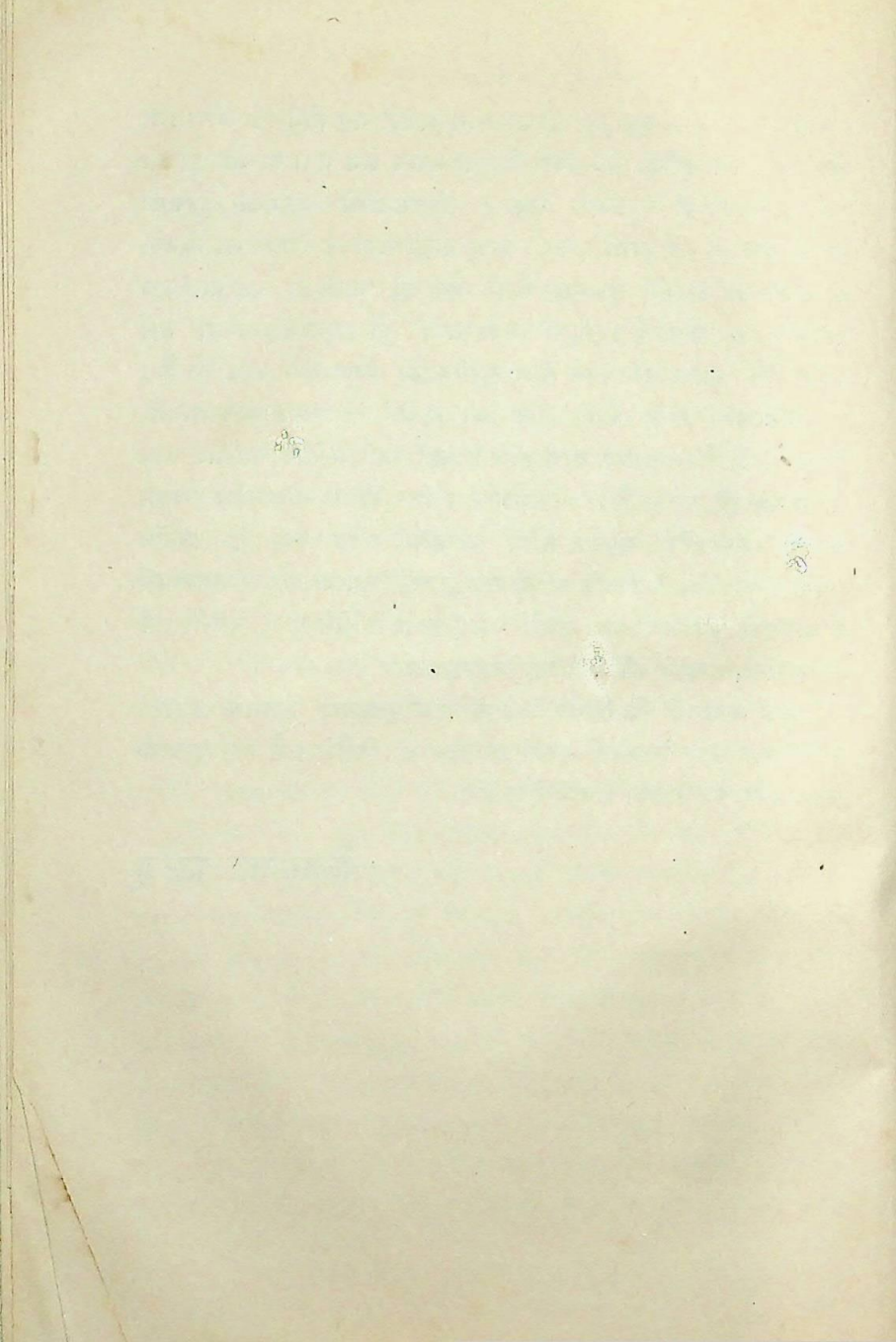
संघर्ष और समीक्षा

आन्दोलनका पूर्वपृष्ठ

सन् १९४२ के आन्दोलनकी गति-विधिको पूरी तरह समझनेके लिए यह आवश्यक है कि उसके पूर्वपृष्ठपर एक नजर डाल ली जाय। जब हम रूस अथवा फ्रांसकी राज्यक्रान्तिका विश्लेषण करते हैं, तब हम उन देशोंकी राज्यक्रान्तियोंके पूर्वपृष्ठका भी भली भाँति अध्ययन करते हैं। बिना ऐसा किए वहाँकी राज्यक्रान्तियोंके बुनियादी तत्त्वोंको ठीक तौरसे समझा नहीं जा सकता। सन् १९४२ के आन्दोलनके सम्बन्धमें भी यही बात लागू है। सन् १९४२ के आन्दोलनके पूर्वपृष्ठसे जो परिचित नहीं हैं, अथवा जो उसे समझनेका कष्ट नहीं करते, वे अगड़म-बगड़म लिखा करते हैं और अपने मनोविकारोंको ही लिपिबद्ध करके दलबन्दीके दल-दलको और बढ़ाते हैं।

यदि हिमालयमें गंगाजीका मार्ग अवरुद्ध हो जाय, तो क्या नतीजा होगा ? पानी रुकेगा और एक विशालकाय झील-सी बन जायगी। पानीका वेग मार्ग अवरुद्ध करनेवाली चट्टानों और शिलाओंको तोड़कर अथवा हटाकर एक भयंकर तूफान पैदा कर देगा। भारतीय जन-आन्दोलन-रूपी सुरसरिके भगीरथ महात्मा गांधीने जन-आन्दोलनको वह गति दी कि ब्रिटिश साम्राज्यशाहीकी सम्पूर्ण शक्ति भी उसकी धाराको न तो अवरुद्ध कर सकी और न कलुषित ही कर सकी। कई आन्दोलन चले। भारतवासियोंने काफी भुगता भी; पर स्वतन्त्रता गुलामीके गर्त्तमें ही रही। और जब गत द्वितीय महायुद्ध सन् १९३९ में प्रारम्भ हुआ, तब तो

भारतीय क्षोभकी सीमा न रही; क्योंकि अंगरेजोंने विश्व-स्वतन्त्रताके नामपर भारतवर्षकी इच्छाके बिना उसे जर्मनी और जापानके आन्दोलन-की नैसर्गिक गतिको अवरुद्ध कर दिया। सितम्बर १९३९ से लगाकर ८ अगस्त १९४२ तककी परिस्थितिका हमें स्थानाभावके कारण यहाँ विश्लेषण नहीं करना है। पर इतना तो हमें लिखना ही पड़ेगा कि युद्ध-कालीन और युद्धोत्तर परिस्थितिकी जो चेतावनी महात्मा गांधीने दी, उतनी और वैसी चेतावनी किसी अन्य भारतीय नेताने नहीं दी। अन्न और वस्त्र-संकटके लिए तो जो बातें महात्माजीने सन् १९३९-४० में कही थीं, वे अक्षरशः सत्य निकलीं। पर उस समय अधिकांश कांग्रेस-जनोंको भी उस चेतावनीपर विश्वास नहीं होता था। सन् १९४१ के व्यक्तिगत आन्दोलनके दिनोंमें जब इन पंक्तियोंके लेखकने सत्याग्रहके लिए आज्ञा चाही, तब बापूजीने आँखें तरेरकर कहा—"इस समय तुम्हारे जेल जानेकी जरूरत नहीं है। क्या मौज करनेके लिए इस समय जेल जाना चाहते हो ? यह देखो, कानपुरसे सत्याग्रह करनेवालोंकी सैकड़ोंकी सूची मेरे सामने है। लोग समझते नहीं हैं कि कितना भयंकर आन्दोलन आ रहा है और उस समय मुझे देखना है कि कितने आदमी टिकते हैं। अभी आन्दोलनमें मत जाओ। आगेके लिए तैयार रहो।" बापूजीकी चेतावनी सुनकर जहाँ दिलको चैन मिला, वहाँ साथ ही साथ इस बातका कौतूहल भी हुआ कि आखिर आन्दोलनकी भयंकरता किस रूपमें हो सकती है। 'आज्ञा शिरोधार्य' कहकर कुटियासे बाहर निकला, तो ऐसा मालूम हुआ कि मन किसी तूफानमें बहा जा रहा हो। पर बापूजी-जैसे भविष्यद्रष्टाके संकेतसे शरीरमें कुछ शक्तिका संचार मालूम हुआ और सहसा दिलने कहा :—

यहाँ तो उम्र गुज़री है इसी मौज़ो-तलातममें,
वह कोई और होंगे सैरेसाहिल देखनेवाले।

मुझे यह लिखनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि सन् १९४२ के आन्दो-लनसे पहले महात्मा गांधीको छोड़कर किसी और बड़े नेताका दिमाग

राजनीतिक दृष्टिसे साफ नहीं था। पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद और महात्मा गांधी तीनोंकी ही विचार-धाराएँ एक-सी नहीं थीं—विशेषकर रूसके महायुद्धमें शामिल हो जानेके बाद। पण्डितजीके दिलो-दिमागकी रस्साकशी उनके उन दिनोंके भाषणोंसे स्पष्ट है। कभी तो वे स्कार्च्‌ड अर्थ पालिसी (Scorched Earth Policy) अर्थात् शत्रुके अपने देशमें बढ़नेपर उत्पादन तथा अन्य वस्तुओंको नष्ट करनेकी नीतिका समर्थन करते थे और कभी उसके विपक्षमें बोलते थे। उनका मंशा कुछ भी रहा हो; पर साधारण कार्यकर्त्ता और जनताका दिग्दर्शन वे नहीं कर रहे थे। मौलाना अबुलकलाम आजादकी भी लगभग वही हालत थी। सुभाष बाबू अपने विचारोंमें बहुत-कुछ साफ थे; पर देश छोड़कर बाहर जानेसे पूर्व वे कुछ विशेष कार्य न कर सके। पर एक ही ज्वालामुखी—महात्मा गांधी—अपने प्रवचनों और लेखोंसे न्याय और उत्साहका लावा उगल रहा था। सन् १९३९ से लेकर ८ अगस्त, १९४२ तकके 'हरिजन'को पढ़ जाइए। लेख क्या हैं, मानो आग्नेय अस्त्र हैं, दिलपर सीधी चोट करनेवाले। जिसने भी वे पढ़े, उसपर जादू-सा हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो स्वर्गसे कोई देवदूत अपनी अमृत-वाणीसे मुर्दोंमें जान डालने आया हो। सम्पूर्ण देशके कार्यकर्त्ता और नेता एक तरफ और महात्माजीकी प्रखर सूझ एक ओर। चारों ओर क्रान्तिका वातावरण था। ऐसा मालूम होता था कि 'हरिजन'का प्रत्येक अक्षर देशमें 'बारूद' बिछा रहा हो। उत्साह और आजादीकी लगन पहाड़ी नदीके समान निनाद करती आ रही थी। चट्टानोंको तोड़कर कब मैदानमें वह प्रवेश करती है, इस बातका किसीको पता न था। सूबेकी कांग्रेस कमेटियाँ और देशके अन्य नेता यह तो समझते थे कि आन्दोलनका कोई भयंकर तूफान आनेवाला है। उसका आभास भी लोगोंको कुछ मिला था। पर स्पष्ट बात न तो कही जाती थी और न कहीं लिखी जाती थी। भारतीय नौकरशाहीकी पूरी तैयारी हो चुकी थी। गिरफ्तारीके लिए लोगोंकी सूचियाँतक तैयार हो गई थीं। उनका वर्गीकरण भी हो

गया था। ऐसे आदमियोंकी भी सूची प्रत्येक जिलेमें तैयार कर ली गई थी, जो कांग्रेससे सहानुभूति रखते थे। युद्ध आरम्भसे पूर्व जिस प्रकार सैन्य-संचालन होता है, उसी प्रकार नौकरशाहीकी ओरसे कांग्रेस तथा आजादीके प्रत्येक आन्दोलनको कुचलनेकी तैयारी थी।

सूबोंके कांग्रेस-जनोंकी अव्यवस्थाका प्रमाण इससे अधिक और क्या होगा कि आन्दोलनसे पूर्व सूबोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विशेष मीटिंगें करनेकी सूचनाएँ सूबेकी ओर से डाक द्वारा भेजी गईं। चिट्ठी-पत्रियोंकी सेंसरशिप जब जारी हो गई थी, तब आवश्यक पत्रोंको डाकसे भेजना कोई बुद्धिमत्ता नहीं थी। इसके अतिरिक्त देशमें ऐसा भी वातावरण था कि कांग्रेस-जन आपसमें किसी प्रोग्रामके विषयमें दिल खोलकर बातें नहीं कर सकते थे। उदाहरणके लिए, यू० पी० सरकारके वर्त्तमान पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी श्री जगनप्रसाद रावतने मेरठ-कमिश्नरीके कुछ कार्यकर्त्ताओंसे चर्चा की, तो कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओंमें काफी मतभेद हो गया। मई, १९४२ में इलाहाबादमें जो अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके दिनोंमें एक गुप्त मीटिंग पं० शिवचरणलाल शर्मा एडवोकेट (जार्ज टाउन, इलाहाबाद) के मकानपर तीन दिनतक हुई उस मीटिंगमें सर्वश्री रफीअहमद किदवई, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, जगनप्रसाद रावत, द्वारकाप्रसाद मिश्र (वर्त्तमान माननीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र, मन्त्री, मध्यप्रदेश), निरंजनसिंह, राधेश्याम शर्मा और इन पंक्तियोंका लेखक शामिल होते थे। मिश्रजी तो केवल एक दिन शामिल हुए थे और निरंजनसिंह शायद दो दिन। इन गुप्त बैठकोंमें आन्दोलनकी रूप-रेखापर विचार हुआ। संगठन, सैनिक-संगठन मय हथियारोंके ध्वंसात्मक कार्यके लिए और आन्दोलनके लिए बजट—इन सब बातोंपर काफी विचार हुआ था। मेरे सुपुर्द ध्वंसात्मक कार्यके अतिरिक्त अन्य प्रबन्धका कार्य भी था। पालीवालजी और रफीअहमद साहबके सुपुर्द बजट तथा अन्य प्रबन्ध भी थे। यों तो काम बँटे-से प्रतीत होते थे; पर वैसे एक-दूसरेके कार्यसे पूरा समन्वय था। रावतजीके सुपुर्द केवल संगठनका ही काम था। राधे-

श्यामजीको आवश्यकतानुसार सबकी सहायता करनी थी। मुझे आशंका इस बातकी थी कि पालीवालजी और रफीअहमद साहब आन्दोलन-सम्बन्धी सक्रिय काम करनेसे पूर्व गिरफ्तार कर लिए जायँगे। उनका फरार रहना मुश्किल-सा हो जायगा। हुआ भी ऐसा ही। यहाँतक कि रावतजी भी बहुत जल्दी ही धर लिए गए। अब कामका जो बोझा मेरे ऊपर आया, उसका पाठक अनुमान लगा सकते हैं। खैर इतनी ही हुई कि राधेश्याम शर्माकी गिरफ्तारी शुरूमें नहीं हुई। पर इलाहाबादकी गुप्त बैठकोंमें जो प्रोग्राम बना, उसकी चर्चा न तो माननीय पंतजीसे की जा सकती थी और न किसी अन्य कार्यकर्त्तासे। ऐसी हालतमें संगठन और कार्यकी रूप-रेखा व्यक्ति-विशेषसे ही कही गई। पालीवालजी, क़िदवई साहब और रावतजीकी गिरफ्तारीके बाद मुझे ऐसा लगा, मानो किसी बीहड़ स्थानमें मैं अकेला पड़ गया हूँ।

जून, १९४२ में बल्का बस्ती-स्थित अपने आगरेके निवासपर एक दिन यू० पी० के एक क्रान्तिकारी महाशय आए, और उन्होंने कहा—"मुझे पता चला है कि आप आनेवाले आन्दोलनके लिए कुछ तैयारी कर रहे हैं। क्यों न हम सब लोग मिलकर काम करें?"

मैंने उत्तर दिया—"आखिर आपका मतलब क्या है? मैं क्या काम कर रहा हूँ?"

असलमें मैं उनसे कोई बात नहीं करना चाहता था और न कोई बात बताना ही चाहता था। वे इस बातको ताड़ गए। उन्होंने कहा—"देखिए, रफी साहबकी ओरसे मुझे पता चला है कि आन्दोलनके लिए कुछ काम शुरू हो गया है और आप संगठनमें लगे हुए हैं।"

क़िदवई साहबका नाम सुनकर मैं समझ गया कि आगन्तुक महाशयको हमारी बातोंका आभास है ही। पर फिर भी मैंने अपनी बात न बताकर उनकी बात जाननी चाही। इसलिए मैंने उनसे कहा—"आपका क्या प्रोग्राम है और आप क्या मिलकर काम करना चाहते हैं?"

वे बड़े निःसंकोच भाव से बोले—"क्रान्ति करनी है, और मैं यह चाहता हूँ कि जो संगठन बने, उसका हेडक्वार्टर्स आगरा हो और आप उसके अध्यक्ष हों।"

मैंने पूछा—"मेरे अध्यक्ष बननेकी बात तो अलग है। आप पहले यह बताइए कि आपके प्रोग्रामकी रूप-रेखा क्या है और आप क्रान्ति कैसे करना चाहते हैं?"

सहज भावसे वे बोले—"पहले हमें चार-पाँच लाख रुपए इकट्ठा करने हैं।"

मैंने कौतूहलवश पूछा—"पहले रुपए आप कैसे इकट्ठा करेंगे और रुपए आपको कौन देगा?"

अन्यमनस्क भावसे उन्होंने कहा—"डकैतियोंसे।"

डकैती शब्दके सुनते ही मैंने निर्णय कर लिया कि मेरी और उनकी दुनियाएँ अलग-अलग हैं। स्कूलके विद्यार्थी-जीवनसे उग्र नीति और क्रान्तिकारियोंसे अपना सम्बन्ध रहा है। 'प्रताप' प्रेसमें जाकर तो स्वर्गीय सरदार भगतसिंह और स्वर्गीय आज़ादसे भी परिचय हुआ था। जो थोड़ा-बहुत बन पड़ा, वह स्कूल और कालेज-जीवनमें अन्य मित्रोंके साथ किया; पर डकैतियोंका मैं सर्वदा विरोधी रहा। सन् १९२० की जन-जाग्रतिके बाद तो राजनीतिक डकैतियोंका कोई महत्त्व नहीं रह गया था। सन् १९४२ में डकैतियाँ डालना निरीह जनता और पूँजीपतियोंको ब्रिटिश सत्ताका आश्रय लेनेके लिए बाध्य करना था। पुलिस और अन्य अनेक कर्मचारी चाहते थे कि डकैतियाँ पड़ें और लोग मजबूर होकर सरकारी सहायता लें। इस लेखमें राजनीतिक डकैतियोंका दार्शनिक विश्लेषण नहीं करना है। बस, इतना ही स्पष्ट करना है कि मैं डकैतियोंका विरोधी था, इसीलिए मैं लगभग २३ डकैतियाँ रोक भी सका।

मैंने क्रान्तिकारी महोदयसे कह दिया—"डकैतियोंमें मेरा विश्वास नहीं है और आप डकैतियोंके भँवरमें पड़कर कुछ डाके भले ही डाल लें; पर काम कुछ नहीं कर सकेंगे।"

आन्दोलनके प्रारम्भ होनेके बाद हुआ भी ऐसा ही। मुझे यह मालूम है कि कौन-कौन व्यक्ति क्रान्तिके नामपर आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, शाहजहाँपुर, अलीगढ़, हरदोई और कानपुरके कई स्थानोंमें डाका डालने गए। शिष्टाचारके नाते मैं यहाँ उनके नाम नहीं दे रहा; पर उन व्यक्तियोंमेंसे, जिनका डाकेमें विश्वास था और जिन्होंने डाके डाले, और जो चाहें कि उनके नाम लिख दिए जायँ, तो अपनेको नाम देनेमें कोई आपत्ति नहीं है। अज्ञानवश कुछ लोग अपनी भूलसे बहकावेमें आ गए थे। वे मेरी बातकी पुष्टिमें प्रमाण देनेको भी तैयार हैं। जो व्यक्ति गलतीसे इस काममें पड़े, उनकी मुझे तनिक भी शिकायत नहीं। लोगोंमें उत्साह था, लगन थी। वे देशके लिए बलिदान होनेको भी तैयार थे। उचित पथ-प्रदर्शन न होनेसे वे बहक गए। बादमें उन्होंने गलती महसूस की। पर अब भी ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका विश्वास डकैतियोंमें है और जिनमें डकैतीसे प्राप्त धनके बँटवारेको लेकर अब भी काफी झगड़ा चल रहा है। आखिर हिसाब कौन दे और किसको दे?

× × ×

वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। असन्तोष, दमन और क्रोधकी लहर-सी देशमें बह रही थी। जून सन् '४२ खत्म होने आया और जुलाईका प्रथम सप्ताह आ पहुँचा। राजनीतिक वातावरण गरम होता ही चला गया। महात्माजीकी विचार-धारा प्रखरताकी उच्चतम सीमापर पहुँच गई। जो बात वे कहते थे, उसके गाम्भीर्यतक हमारे अन्य नेता पहुँच नहीं सक रहे थे। ८ अगस्त, सन् '४२ की तारीख भी अखिल भारतीय कांग्रेसके अधिवेशनके लिए नियत हो गई। ब्राह्म मुहूर्त्तमें सूर्योदयकी कल्पना की जा सकती है। ठीक उसी भाँति आन्दोलन-आगमनका आभास होने लगा था। उत्सुकता इस बातकी थी कि आखिर महात्माजी आन्दोलनको क्या रूप देंगे। जन-श्रुतियोंसे बाजार गरम था। लगभग दो महीने-से उसपर थोड़ा सोचा-विचारा था, इसलिए सेवाग्राम चलकर परिस्थितिका कुछ पता लगानेकी इच्छा प्रबल हुई। सेवाग्राम आश्रममें कभी भी और

कितने ही दिनोंतक ठहरनेकी आज्ञा बापूजीने दे रखी थी। इसलिए और भी आकांक्षा हुई कि सीधे वहाँ जाकर उनसे कुछ आदेश लिया जाय। वहाँ पहुँचकर बापूजीसे कुछ पूछनेका साहस इसलिए नहीं हुआ कि वे स्वयं देशके गण्यमान्य नेताओंसे परामर्श करनेमें लगे हुए थे। ऐसी दशामें उनकी बातें सुनना ही श्रेयस्कर था। आचार्य नरेन्द्रदेवजी उन दिनों वहीं टिके हुए थे। उनसे बस इतनी चर्चा तो हो ही गई कि अमुक क्रान्तिकारीसे भावी आन्दोलनके बारेमें मेरी चर्चा हुई थी। आचार्यजी भी आन्दोलनके विषयमें कोई स्पष्टीकरण नहीं कर सके। यह बात २० जुलाई, १९४२ की है।

सूरतसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके कार्यकर्ता श्री परमेष्ठीदासजी जैनने जुलाईकी अन्तिम तारीखको या २ या ३ अगस्तको होनेवाले उनके एक अधिवेशनके सभापतित्वके लिए आग्रह किया। कई बार उनके आग्रहको मैं टाल चुका था। पर ८ अगस्त, १९४२ को होनेवाले भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनकी प्रेस-गैलरीमें मुझे जाना था, इसलिएं सूरत जानेकी भी स्वीकृति दे दी।

लेकिन सूरत जानेसे पहले सेवाग्राममें २५, २६ या २७, २८ जुलाई-को बापूजीकी कुटियामें बापूजीके मुखसे इतनी गम्भीर और स्पष्ट बातें सुनीं कि यदि बापूजीकी उन बातोंको रेकार्डमें भर लिया जाता, तो वह ऐतिहासिक प्रवचन औरोंको भी सुननेको मिलता। उनकी बातें सुनकर ईसाके 'सरमन आन दी माउण्ट' या बुद्धके अन्तिम उपदेशोंकी साक्षात् झलक मिली। मेरे शब्दोंमें वह जोर कहाँ? भाषामें वह ओज कहाँ? और फिर दिलकी बातको क्या कोई लिपिबद्ध कर सकता है? किसमें शक्ति है, जो भावनाओंको अक्षरोंके व्यवधानमें बाँध सके? अनुभवगम्य बातोंके लिए भाषा एक बहुत ही कमजोर साधन है। उसमें वह शक्ति नहीं, जो एक महापुरुषकी वेदनाको, उसके आदर्श और उसकी कल्पनाको अक्षरोंमें सीमित कर सके। यह मेरा सौभाग्य था कि उस दिन १०-१५ आद-

मियोंके बीच जब बापूजीने अपना दिल श्री आचार्य विनोबा भावेके सामने उनका मत जाननेके लिए खोला, तब मैं वहीं था।

सेवाग्राममें बापूजीकी कुटिया। आसमान मेघाच्छादित। तकिएका सहारा लिए हुए और टाँगे फैलाए वे बैठे थे। उनकी एक भुजा ऊपरको थी। चश्मा लगा हुआ था। जिह्वापर साक्षात् सरस्वती विराजमान थी। सत्य मानो साकार होकर बापूजीके रूपमें बैठा था। सामने श्री विनोबाजी थे। उनसे सटे हुए स्वर्गीय महादेवभाई बैठे थे। एक ओरको श्रीमती जमनालाल बजाज—श्रीमती जानकी बहन—बैठी थीं। सेवाग्रामके दो-चार अन्य सदस्य भी थे। दरवाजेसे आगेको भदन्त कौसल्यायन और मैं बैठे हुए थे। यह हमारा सौभाग्य था कि हम लोग वहाँ पहुँच गए। बापूजीने जो बातें कहीं, वे अक्षरशः तो शायद ही किसीको याद हों; पर उनका सार अत्यन्त सूक्ष्म शब्दोंमें इस प्रकार है—"राजनीतिज्ञोंके सामने मैं सकुचा जाता हूँ। पर अबकी बार तो मैं उनके सामने साफ बातें ही कह दूँगा। अहिंसा और सत्याग्रह यदि व्यक्तिके लिए ठीक हैं, तो वे जन-आन्दोलनके लिए भी ठीक हैं। हिमालय जाकर तपस्या करना मैं अपने लिए श्रेयस्कर नहीं समझता। मैं तो अबकी आमरण अनशन करूँगा और अनशनका रूप यह होगा कि केवल वायु-सेवन ही करूँगा, पानी भी नहीं लूँगा। ऐसा करनेमें चाहे यह शरीर एक दिन चले या दो दिन। लोग स्थितिकी गम्भीरताको नहीं समझते। आज तो मेरे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। मैंने इसीलिए आज (विनोबाजीकी ओर संकेत करते हुए) तुम्हें बुलाया है, ताकि मुझे सलाह दे सको।"

स्मरण रहे कि उपर्युक्त सारमें मूल बातकी ओर ही संकेत है। बापूजी-ने आध घण्टेसे अधिक अपने मतके प्रतिपादनमें लगाया था। अनशनकी बात सुनकर स्वर्गीय श्री महादेवभाई देसाईकी मनोव्यथा उनकी मुखाकृतिपर अंकित थी। बेचैनीसे उन्होंने बापूजीसे कहा—"आप पहले अनशन क्यों करते हैं? मैं क्यों न पहले इस प्रकारका अनशन करूँ।"

उसी मुद्रामें बापूजीने उत्तर दिया—"ऐसा तुम क्यों कहते हो? इसलिए कि मेरा मूल्य अधिक है! यदि जानकी बहनका मूल्य एक पैसा है, परचुरे शास्त्रीका मूल्य चार पैसा है, तुम्हारा चार आने है और मेरा मूल्य तुम सोनेकी मुहर समझते हो, तो मैं देशकी आजादीका मूल्य मुहरसे अदा करूँगा, पैसोंसे नहीं।"

महादेव भाई बापूके इस तर्कसे निरुत्तर हो गए और उनकी मानसिक वेदना उनके प्रत्येक रोमसे प्रस्फुटित होने लगी, मानो उन्होंने बापूजीको वहीं चुनौती दे दी कि वे आजादीकी खातिर बापूके सामने ही महाप्रयाण करेंगे। विनोबाजीसे बापूजीने कहा कि अगले दिन वे विचार कर उत्तर दें। पर विनोबाजीने कहा—"मैंने आपके मतको जैसा समझा है, पहले उसे स्पष्ट कर दूँ और राय जैसी मैं समझता हूँ, दे दूँगा।" विनोबाजीने बापूजीकी बातोंको थोड़ेसे शब्दोंमें दुहरा कर पूछा—"क्या आपका मतलब यही है, जो मैंने कहा है?" बापूजीके 'हाँ' कहनेपर विनोबाजीने अपनी राय प्रकट की कि वे बापूजीके फैसलेसे पूर्णतया सहमत हैं।

सब लोग कुटियासे एक ठंडी साँस भरते हुए बाहर निकले। 'करो या मरो' की फिलासफीका निरूपण एक प्रकारसे मेरे मतसे सेवाग्रामकी कुटियामें ही उस दिन हुआ था :

मैं यह कहता हूँ फ़नाको भी अताकर ज़िन्दगी;
तू कमाले ज़िन्दगी कहता है मर जानेमें है।

× × ×

सूरत-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका अधिवेशन बहुत फीका रहा। कारण परमेष्ठीदासजीकी तैयारीका अभाव न था। उन्होंने तो काफी तैयारी की थी; पर उस दिन सूरतमें सरदार पटेलका भाषण था। गुजरातका दौरा करके अखिल-भारतवर्षीय अधिवेशनके पूर्व बम्बईको छोड़कर उनका अन्तिम भाषण सूरतमें ही था। नदियाँ जिस प्रकार अपने

वक्र मार्गोंको पार करती हुई समुद्रमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार दर्शकोंके पैर राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभाकी तरफ न होकर कांग्रेसके एक स्तम्भ सरदार पटेलके भाषण सुनने जा रहे थे। फल-स्वरूप न मुझसे बोला गया और न भदन्तजीसे। बस, सभापतिके पदसे विद्यार्थियोंको पुरस्कार वितरण कर दिये गये। वैसे सभाकी अन्य कार्यवाही बड़े ढंगसे हो गई। संगीत और गरबा-नृत्य तो अनुपम थे।

सरदार पटेलका भाषण सुननेके लिए एक लाखसे अधिक आदमी मौजूद थे। सरदारके भाषण सीधी चोट करते हैं। उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता। गुजरात और बिहारमें सरदार पटेल और श्रद्धेय डा० राजेन्द्रप्रसादने इतने दौरे किए कि और सूबोंमें इतने नहीं हो सके। यू० पी० में कांग्रेसके बड़े-बड़े दिग्गज नेता हैं। पर क्या कोई बता सकता है कि उन दिनों यू० पी० में डा० राजेन्द्रप्रसादकी तरह जिलोंतकका दौरा किसीने किया हो? इसके मानी यह नहीं कि आन्दोलनमें यू० पी० पीछे रहा हो। पर यह बात भी सच है कि आन्दोलनसे पहले पं० जवाहरलाल नेहरू, पन्तजी, आचार्य नरेन्द्रदेवजी, किदवाई साहब, कृपालानीजी और पालीवालजीने व्यवस्थित रूपसे दौरे नहीं किये।

८ अगस्त, १९४२ के महत्त्वपूर्ण अधिवेशनकी प्रेस-गैलरीमें हमें अपने एक चीनी पत्रकारसे मालूम हुआ कि अधिवेशनकी समाप्तिपर—भारत छोड़ो प्रस्तावके बाद—देशमें दमनका दौरदौरा होगा। चायके समय माननीय पन्तजीसे अपनी मुलाकात हुई और उनसे कुछ बातचीत करनेकी लालसा हुई, तो उन्होंने ९ अगस्तको मिलनेका समय दिया। आचार्य नरेन्द्रदेवजीसे उनके एक लेखका संक्षिप्त कराना था। उन्होंने भी ९ तारीख का समय दिया; क्योंकि वे देशी राज्य सभाके सम्बन्धमें खण्डवा जानेवाले थे। शायद उस समय कांग्रेस हाईकमाण्डको ९ तारीखको होनेवाली घटनाओंका कोई आभास न हो।

थोड़े-से शब्दोंमें सन् १९४२ के आन्दोलनके बड़े कैनवसके पूर्वपृष्ठकी थोड़ी-सी रूप-रेखा दे दी है। तबीयत तो करती है कि और बातें भी

लिखी जायँ। पर अपने इन संस्मरणोंमें मैंने वे ही बातें लिखी हैं, जिनका कि नक्शा अपने दिमागमें अब भी स्पष्ट बना हुआ है। यों तो सन् १९४२ के संस्मरण लिखनेमें बड़ी मनोरंजक बातें सामने आ जाती हैं। आखिर क्या किया जाय :

वह शोख़ भी माज़ूर है मजबूर हूँ मैं भी;
कुछ फ़ितने उठे हुस्नसे कुछ हुस्ने नज़रसे।

दावपेंच

सन् १९४२ के आन्दोलनके दिनोंमें, कई बार सन्देहमें गिरफ्तार होनेपर भी पुलिसको झाँसा देकर जब मैं बच गया, तब कई मित्रोंने और विशेषकर डाक्टर केसकरने कहा कि मुझे पुलिस न पकड़ पायगी। मेरा विश्वास था कि काम करते हुए किसी-न-किसी दिन पुलिसके शिकंजेमें फँसना ही होगा। हाँ, केवल छिपे रहनेकी भावना होनेपर पुलिसकी दाल नहीं गल सकती। सूबेमें काम करना पड़ता था। बम्बई, दिल्ली और अन्य स्थानोंको जाना और आगरा आना पड़ता था। पुलिस और मिलिटरीके चक्रव्यूहमें भी घुसना पड़ता था। लगभग प्रतिदिन पुलिससे आँख-मिचौनी-सी होती थी। जब गोलीसे मारे जानेकी खबर मिली, तब तो सक्रियता और भी प्रबल हो गई। काम करने और लड़ते हुए मरनेकी जुनूँ-सी सवार थी। पर मित्रोंकी इस बातसे हँसी आती थी कि मैं पुलिसकी पकड़में न आऊँगा। 'बकरेकी माँ कबतक खैर मनायगी'वाली बात न थी। उन दिनों बकरे तो वे ही थे, जो पुलिससे मिले हुए थे या जिन्होंने मुखबिरी की थी। हम लोग तो मोर्चेपर डटकर काम करनेवाले थे। फिर रण-क्षेत्रमें बचनेकी गारण्टी किसीकी नहीं होती। काम करते हुए गिरफ्तार न होनेकी बात तो ९० वर्षके उस बूढ़ेकी बातके समान थी, जिसने अपनी मौतके विषयमें पूछे जानेपर कहा—"अब ९० वर्षतक तो मौत आई नहीं, तो अब क्या आयगी?" हाँ, यह बात ठीक है कि अगर अपनी गिरफ्तारीके दिन—७ दिसम्बर सन् १९४२ को—अपनी तन्दुरुस्ती ठीक होती, देहमें इतना दम होता कि दो-चार मील चल सकता और पुट्ठोंमें लोच और तेजी होती, तो पुलिसको धता बता दी गई होती। बम्बईके सात दिनके बुखारने, जिसमें तापमान १०३ डिग्रीसे कम नहीं हुआ और ज्वर अनवरत रूपसे चढ़ा रहा, इतना कमजोर कर दिया था कि सौ गज भी

नहीं चला जाता था ! अस्तु, गिरफ्तारी और ठुकाई-पिटाई, साड़ी पहनने-की बात और अन्य विषय इस संस्मरणके लिए अप्रासंगिक हैं।

हाँ, यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि झाँसा देना मेरे स्वभावमें नहीं। अपनी पूँजी है ईमानदारी और सचाई। मैं इस पूँजीको कंजूस बनिएकी भाँति अक्षुण्ण रखना चाहता हूँ। सन् १९४२ में पुलिसको जो झाँसा दिया, वह किसी स्वार्थकी खातिर नहीं, वरन् एक संघटन—कांग्रेसजनोंके संघटन—द्वारा विशुद्ध ढंगसे चलाये गये नियमोंके अनुसार। विशुद्ध सात्त्विकी भावनासे देशके लिए प्रयोग की गई चालें भले ही ठीक न हों; पर कर्त्तव्य-पालनकी दृष्टिसे बौद्धिक बलका प्रयोग ठीक ऐसे किया, जैसे जंगलमें सशस्त्र व्यक्तियोंसे घिर जानेपर कोई लुक-छिपकर निकलनेकी चेष्टा करता है। जो-कुछ उन दिनों किया, उसको अब भी मैं युक्तियुक्त समझता हूँ।

यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है कि आगरेमें रातको मैं कहाँ रहता था। आगरे शहर, सूबे और सूबेसे बाहरके लोगोंका खयाल है कि मैं रातको वहाँ रहता था, जहाँ मैं अन्य साथियोंके साथ गिरफ्तार हुआ, यानी नारायण-भवन-स्थित आलूके कारखानेमें। आगरेमें मेरी रहनेकी जगह एक ऐसा स्थान था, जिसकी कल्पना पुलिस भी नहीं कर सकती और जिसे बतानेकी अभी आवश्यकता नहीं है। बस, तीन या चार साथियों और मित्रोंको ही उस निवास-स्थानका पता था। यू० पी० पुलिस-का अनुमान था कि मेरा कार्य-क्षेत्र बिहार है, इसलिए उसने पटनेमें किसी-की गिरफ्तारी भी की थी। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि गिरफ्तारशुदा व्यक्ति कोई और है, तब उसे छोड़ दिया गया। पर जब लक्ष्मीनारायण पालीवाल (जो अब लक्ष्मीनारायण शर्मा लिखता है) ने गिरफ्तार होनेपर यह भेद बता दिया कि मैं कहाँ हूँ और क्या करता हूँ, तब फिर पुलिस-का मार्ग बहुत-कुछ साफ हो गया। लक्ष्मीनारायण पालीवाल और भूदेव पालीवालके विषयमें तो फिर कभी लिखा जायगा। यहाँपर इतना ही लिखना पर्याप्त है कि पुलिसने अपनी सतर्कता कई गुनी कर दी। घरकी

निगरानी करनेवाले पुलिसके व्यक्तियोंकी संख्या काफी बढ़ा दी गई। दिन-रात मकानपर पहरा रहता। बाहरवालोंके लिए और खास आगरे-वालोंतकके लिए भुतहे मकानके समान था मेरा घर, जहाँपर कोई जाता न था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वहाँपर जानेसे गिरफ्तारी जरूर हो जाती। मकानके चारों ओर और मकानके दरवाजेपर दो खुफियाके आदमियोंके चौबीसों घण्टे रहनेपर भी मैं स्वयं कई बार रातको अपने घर रहा। आगरेका राजामण्डी स्टेशन खुफिया-पुलिसका खास अड्डा है। एक तो वैसे ही इस स्टेशनपर पुलिस चौकन्नी रहती है, क्योंकि स्टेशन शहरमें है और ग्वालियर, धौलपुर, भरतपुर और राजपूतानेके अन्य स्थानों-के सन्दिग्ध व्यक्ति राजामण्डी स्टेशनपर उतरकर शहरमें लुक-छिप जाते हैं, या फिर यहाँसे बम्बई, पेशावर, कलकत्तेके लिए अपनी यात्रा आरम्भ कर देते हैं। राजामण्डी स्टेशनपर ही पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवालजीकी सरहज श्रीमती रूपराम पालीवालके साथ लक्ष्मीनारायण पालीवालकी गिरफ्तारी हुई थी। गिरफ्तारीके समय और बादमें भी श्रीमती रूपराम पालीवालका रूप एक वीरांगनाका रूप था। और लक्ष्मीनारायण पालीवाल तो कायरता-की सजीव मूर्त्ति ही था। इन दोनोंकी गिरफ्तारी खाली बमोंके साथ हुई थी; पर इस गिरफ्तारीके बाद पुलिसने अपनी चौकसी और भी कड़ी कर दी। एक दिन ग्राण्ड ट्रंक एक्सप्रेससे मुझे राजामण्डी उतरना पड़ा। दिल्ली-से आया था। ग्राण्ड ट्रंक राजामण्डी स्टेशन उस दिन शामके बजाय रातके १० बजे पहुँची। रात बितानेके लिए पहलेसे ही एक स्थान तय था। पर स्टेशनपर ठहरानेवाले महाशय उतरते समय दिखाई न पड़े। इण्टर क्लासका डब्बा आगे था और वे पीछे प्लेटफार्मपर इन्तजार कर रहे थे। इण्टर क्लासका डब्बा जैसे ही खोला, वैसे ही रेलवे पुलके नीचे ठीक सामने दो खुफिया-विभागके आदमी दिखाई पड़े। स्थिति कुछ गम्भीर-सी प्रतीत हुई। कुछ ऐसी आशंका हुई, मानो गिरफ्तारी हो ही जायगी। बचाव केवल एक ही सूरतमें सम्भव था। अगर होश-हवास ठीक रहे और अपनी चाल-ढालसे किसी प्रकारसे कोई सन्देह प्रकट नहीं हुआ, तो

सम्भवतः बचनेकी कोई सूरत किकल आये। यह सब-कुछ फैसला एक क्षणमें ही कर लिया। डब्बेसे इस प्रकार उतरा, मानो किसी प्रकारकी कोई आशंका ही न हो। फिर भी पुलिसवालोंकी तेज नजरोंका फोकस मेरे ऊपर था और वे मेरी ओर बढ़े। वेश-भूषासे मैं व्यापारी लाला प्रतीत होता था। समझ लिया था कि गिरफ्तार तो होना ही है, तब फिर बाह्य रूपसे निर्भय क्यों न बना रहा जाय। साथमें बोझ न था। जरा-सी एक पोटली थी, जिसे लेकर दृढ़तासे आगे बढ़ा। पुलकी पहली सीढ़ीपर पहला कदम रखते ही गुनगुनाना शुरू किया—

बिन सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई।

अगली सीढ़ीपर कदम रखते हुए खासकर थूकनेके प्रयासमें मैंने पीछे-की ओर देखा तो खुफिया-पुलिसके दो आदमी और रेलवे-पुलिसका एक कान्स्टेबिल लगभग तीन गजकी दूरीपर घेरा-सा डाले चले आ रहे थे। मैंने उनकी तनिक भी परवाह न की। रामायणकी चौपाइयाँ गुनगुनाते हुए नपे-तुले कदमोंसे आगे बढ़ा, इस आशंकासे कि किसी भी क्षण गर्दाना जाऊँगा। पुलके दूसरे ओर गुनगुनाते हुए उतरा और पुलिसवालोंका तनिक भी खयाल नहीं किया। स्टेशनके बाहर होते हुए मुड़नेमें पुलिस-वाले दिखाई पड़े। वे चले तो आ रहे थे, पर मेरे और उनके बीच आठ-दस गजका फासला हो गया था। वे कानाफूँसी-सी करते आ रहे थे। शायद उन्होंने समझा होगा कि कोई धर्मभीरु लाला है, जो अपने घर जा रहा है। राजामण्डी स्टेशनसे पं० हरिशंकर शर्माका मकान बहुत करीब है। पर मेरी तलाशमें पुलिसका वहाँ भी पहरा रहता था। इसलिए वहाँ जाना ठीक नहीं था। स्टेशनसे बाहर मुड़कर जो देखा, तो पुलिसवाले दूर खड़े दिखाई पड़े। स्टेशनका मोर्चा तो जीत लिया था। पर रात बितानी थी और उसके लिए यही तय पाया कि अपने घर ही जाना चाहिए। अगर पुलिसवालोंको चकमा दे सका, तो ठीक, वर्ना रात कहीं और बिताई जायगी। गुनगुनाते हुए मकानके दरवाजेपर आ पहुँचा, तो देखा कि

चार आदमी बैठे हुए हैं—दरवाजेके दोनों ओर एक-एक आदमी, मकानके सामने एक, और मकानसे हटकर एक चौथा आदमी।

एक अपरिचित व्यक्तिकी भाँति उनसे पूछा—"क्या भट्टजीका बाड़ा यही है?"

बड़ी बेरुखीसे उन्होंने उत्तर दिया—"हाँ।"

"क्या आप बता सकेंगे कि पं० केदारनाथ भट्ट किस मकानमें रहते हैं और वे यहाँ हैं या नहीं?"

"भट्टजीसे मिलकर क्या करोगे?"—आँखें तरेरकर एकने कहा।

"मैं उनका पुराना मुवक्किल हूँ, मथुरासे आया हूँ। एक सलाह लेनी है। अगर भट्टजी होंगे, तो रात यहाँ काटूँगा, वर्ना धर्मशालामें जाना पड़ेगा।"

"ज्यादा बक-बक मत करो। हम नहीं जानते, भट्टजी कहाँ हैं।"

"आपको तकलीफ तो होगी ही, जरा भीतर चलकर भट्टजीका मकान बता दीजिए।"

पुलिसवाले यह सुनकर फट ही तो पड़े और बीड़ी फेंककर एकने अधिकारपूर्वक कहा—"बक-बक मत कर। तेरी कमबख्ती तो तुझे यहाँ नहीं ले आई। खुद जाकर देख ले या अपना रास्ता नाप। जानता नहीं, हम कौन हैं?"

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—"माफ कीजिएगा, आपको तकलीफ दी। मैं नहीं समझ सका कि आप अफसर लोग हैं। मैं खुद ही जाकर पूछ लूँगा।"

बस, फिर क्या था। भीतर जाकर मकानके पिछले दरवाजेसे अपने घर चला गया और प्रातःकाल अँधेरेहीमें मुवक्किलके रूपमें घरसे बाहर हो गया।

× × ×

आगरेकी विजयनगर कॉलोनीके तिराहेपर जैसे ही मैं एक दिन कॉलोनीकी ओर बढ़ा कि एक सिविक गार्ड और एक खुफियाके आदमीने पकड़ लिया। एक हाथ सिविक गार्डने पकड़ लिया और दूसरा खुफिया-

पुलिसके आदमीने। मैं खाकी कमीज, पाजामा और काली टोपी पहने था। हाथमें एक रजिस्टर था, जिसपर अंगरेजीमें लिखा था 'ठाकुर बहादुरसिंह मिलिटरी ठेकेदार।' आँखोंमें आँखें गड़ाते हुए पुलिसवालेने पूछा—"आपका नाम?"

मैंने हँसकर कहा—"मेरा नाम है बहादुरसिंह। अंगरेजी पढ़े हो, तो देख लो।"

"पर आपको थाने चलना पड़ेगा।"—कुछ सहमते हुए उसने कहा।

"थाना क्या, कहीं भी चलो; पर चलो जल्दी। यदि चलनेमें देर हो, तो करीबसे मेजर रोड साहबको फोन कर लो। देरीसे जो नुकसान होगा, उसकी जिम्मेदारी आप लोगोंपर होगी।" मैंने आत्म-विश्वाससे कहा।

उत्तर सुनकर सिविक गार्ड और खुफिया-पुलिसका आदमी एक-दूसरेके मुँहकी ओर देखने लगे। उनकी मुखाकृतिसे ही मैं भाँप गया कि मेरा दाव काम कर गया। इसलिए मैंने मुस्कराकर कहा—"अच्छा, मैं समझा। पर भाई, आप लोगोंको अभी दोस्त-दुश्मनकी पहचान नहीं। कोई बात नहीं। ऐसी गलती हो ही जाती है। पर आपको कोई शक हो, तो फौरन थाने चलो। वहाँसे साहबको फोन कर लेंगे। अगर कहीं आपने मुझे यहाँ रोका, तो आपकी खैर नहीं। सैकड़ों लारियाँ खड़ी रहेंगी। लाखोंका नुकसान होगा।"

"माफ कीजिए साहब, हमारा काम ही ऐसा है। एक नामी बदमाश श्रीराम शर्माको पकड़ना है। हमें बताया गया है कि वह खाकी कमीज, पाजामा और काली टोपी पहनता है और इस रास्तेसे दिनमें निकलता है। सूबेके अफसर उसकी तलाशमें लगे हैं। आजकल वह आगरेमें है। बुरा न मानिए, जाइए।"

"कोई बात नहीं। जमाना ही ऐसा है, गलती हो ही जाती है।"—कहकर मैं नौ-दो-ग्यारह हुआ। उस दिनके बाद फिर वह पोशाक नहीं पहनी और दिनमें घरसे निकला भी नहीं।

× × ×

एक दिन प्रातःकाल आगरेके मुहल्ले रावतपाड़ेसे किनारी बाजारकी ओर बढ़ा, वैसे ही आगरेके एक बहुत पुराने खुफिया-पुलिसके आदमी अजमेरीसिंहको देखा। अजमेरीसिंह लगभग बीस वर्षसे आगरेमें था और वह आगरेके लगभग प्रत्येक कांग्रेसमैनको जानता था। पर मेरी बदली हुई शकलमें वह शायद मुझे नहीं पहचान सकता था। फिर भी मुझे डर तो था ही। मुझे किनारी बाजार और सेव बाजार पार करके हीवेट पार्कतक जाना था। समय लगभग सुबहके नौके होगा। भीड़ कुछ अधिक नहीं थी, फिर भी सावधानी तो रखनी ही थी। मैं कदम तेज करता हुआ आगेको चला और जैसे ही सेव बाजारमें पहुँचा, वैसे ही ३०-४० गजपर सामनेसे छः-सात कान्स्टेबिलोंके साथ इन्स्पेक्टर रामप्रसादको आते देखा। पीछे अजमेरीसिंह था। बचनेका कोई रास्ता न था। बुरा फँसाव पड़ा था। इन्स्पेक्टर रामप्रसाद मुझे अच्छी तरहसे जानता था। आगरेके 'सैनिक'के मामलेमें, उसके ट्रस्टीकी हैसियतसे, वह मुझसे बहुत बार मिला था। इस समय मेरी गिरफ्तारीके लिए वह प्राणपणसे प्रयत्नशील भी था। भागने या डरनेसे बचाव सम्भव न था। बस, एक ही हरकतने उस समय गिरफ्तारी नहीं होने दी, और वह हरकत ऐसी थी, जो जीवनमें मैंने पहले कभी नहीं की। आगरेके बाजारमें ऊपर सदासुहागिनें रहती हैं। सोचा कि गिरफ्तारी तो होनी ही है। अगर एक मिनट ऊपरकी ओर देखनेसे पुलिस झाँसेमें आ जाय, तो शायद बचत हो। बस, धीरे-धीरे चलते हुए मैंने ऐसा ही किया। भीतरसे दिल तो बैठा जाता था, क्योंकि जीवनमें कभी ऐसी हरकत नहीं की थी। इतनी ही देरमें—एक-आध ही मिनटमें—रामप्रसाद कान्स्टेबिलोंके साथ आ गया और उपेक्षाकी दृष्टिसे मुझे देखता हुआ आगे बढ़ गया। उसने समझा होगा कि कोई लफंगा फौजी है। रामप्रसादने सेशन अदालतमें कहा भी था कि मूँछें मुड़ानेसे मेरी शकल इतनी बदल गयी है कि वह मुझे पहचान भी नहीं सका।

× × ×

सितम्बर सन्'४२ की बात है। मैं पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवालकी कोठीकी बगलकी कोठीमें बैठा आगरेसे निकलनेवाले 'आजाद हिन्दुस्तान'के लिए कुछ लिख रहा था। सूबेके कार्यकर्त्ताओंके लिए एक ड्राफ्ट तैयार था। समय होगा दोपहरके बारह बजेका। खाकी कमीज पहने चारपाईपर बैठा मैं लिख रहा था कि एकदम सादी पोशाक पहने पुलिसके आदमियोंने मकान घेर लिया। मकान कुँवर बैजनाथ-सिंहजी भदौरियाका था। उस समय R. S. P. के ठाकुर मुकुन्दसिंह भी वहीं मौजूद थे। स्मरण रहे, R. S. P. (क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी) से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था और न है। खाँसकर थूकनेके बहानेसे उठा। चौकेमें जाकर मैंने सब कागजात जला दिये और नौकरसे कह दिया कि पूछे जानेपर वह कह दे कि मैं अर्जुनपुरका रहनेवाला हूँ। अर्जुनपुर कुँवर बैजनाथसिंहकी रिश्तेदारी है। मकानके प्रत्येक निकासपर आदमी खड़े थे। सदर दरवाजेपर तो तीन-चार आदमी तैनात थे। यह पूछनेपर कि वे वहाँ क्यों खड़े हैं, उन्होंने उद्दण्डतासे उत्तर दिया कि थोड़ी ही देरमें मालूम हो जायगा कि वे वहाँ क्यों खड़े हैं। ठाकुर मुकुन्दसिंह खाना खाने बैठ गये। इतने ही में १५-२० पुलिसके आदमी —कुछ यूनिफार्ममें और कुछ सादी पोशाकमें—धड़धड़ाते हुए मकानमें घुस आए। आँगनके बरामदेमें चारपाईपर मैं बैठा था। एकदम हरीपर्वत थानेके दारोगा औलाद अहमदने पूछा—"आपका क्या नाम है?"

"लालसिंह।"

"आप कहाँ रहते हैं?"

"अर्जुनपुर।"

"यहाँ क्यों हो?"

"कुँवर बैजनाथसिंह मेरी बुआके लड़के हैं। लड़ाईका वक्त है। अगर यहाँ कोई ठेका मिल जाय, तो कुछ कमा लूँ, इसी खयालसे आया हूँ।"

"कबतक रहोगे?"

"जबतक कोई काम न हो जाय, तबतक रहनेका विचार है। अगर

आपको कोई ऐतराज हो, तो अभी चला जाऊँ।"

"क्या करते हो आजकल ?"

"उर्दू और हिसाब पढ़ाता हूँ देहाती स्कूलमें।"

"हूँ" करके और देखते हुए उन्होंने मकानकी तलाशी ली और यह कहते हुए चले गए कि कितना परेशान कर रखा है हमें।

× × ×

नवम्बर सन् १९४२ की बात है। डाक्टर केसकर, राधेश्याम शर्मा और इन पंक्तियोंका लेखक विचार-विनिमय और उधरके आन्दोलनकी प्रगति जाननेके लिए बम्बई गए हुए थे। श्रीमती सुचेता कृपालानी और दयाभाई पटेलसे बातें हुईं। हम लोग रुपये-पैसोंके लिए नहीं गए थे, वरन् योजना-सम्बन्धी चर्चा करनी थी। अच्युत पटवर्धनजीसे भी बातें करनी थीं। यू० पी० में लगानबन्दी-आन्दोलनका मैं व्यावहारिक दृष्टिसे विरोधी था। हम लोग सैण्डहर्स्ट रोडपर एक डाक्टर मित्रके यहाँ ठहरे हुए थे। डाक्टर साहब गुरुकुल काँगड़ीके स्नातक हैं। उन्होंने जर्मनीसे आँखोंके इलाजकी उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। उनके मकानकी देख-भाल होती थी। हमने भी यही समझ लिया था कि जहाँ कुछ खतरा हो, वहाँ कभी-कभी बचाव भी अच्छा हो जाता है।

बम्बईमें मुझे सात रोज भयङ्कर बुखार आ गया। तापमान १०३ और १०४ डिग्रीतक रहता। चौबीसों घण्टे ज्वर चढ़ा रहता। डाक्टर साहबके घरमें कोई नौकर भी नहीं था। उनके बच्चे हैदराबाद थे। उनके साले थे। डाक्टर साहब बेचारे दवा-दारूमें जुट जाते। पर तीमारदारीके लिए कोई और आदमी न था। डाक्टर साहबने साले साहबसे कह दिया था कि अगर कोई पूछे, तो कह दें कि बनस्थलीका कोई मरीज है। कमरेमें फर्शपर पड़े रहनेसे सारी देह तख्ते-सी हो गई थी। जब कभी राधेश्याम आ जाते, तब देह दबवा लेता। पर खतरा बढ़ रहा था, इसलिए राधेश्यामको यू० पी० भेज दिया। अपनी हालत इतनी खराब थी कि यह पूरी आशंका हो गई कि बम्बईमें ही शरीर छूट

जायगा। तेज बुखार और अर्ध-मूर्च्छामें छोटा बच्चा सामने खड़ा यह कहते दिखाई-सा देता—'बाबूजी, ठीक है जाउगे। मूँड दाबि देऊँ ?' परेशान होकर देखता, तो कोई दिखाई न पड़ता।

ठीक सात दिन बाद भयंकर ज्वर उतरा। सात दिनका लंघन और ज्वरके बादकी कमजोरी। बोला भी न जाता था पर ज्वर उतरनेसे नया जीवन-सा हुआ। कमरा सात दिनोंसे झड़ा नहीं था। गन्दगीसे जी घिनाता था। बैठकर और सरककर कमरा झाड़ना शुरू किया ही था कि दरवाजेके सामने दो टोपधारी व्यक्ति आ खड़े हुए। एक तो था काला-कलूटा और दूसरा था गोरा-चिट्टा। पूर्णिमा और अमावस्या एक ही साथ प्रकट हो गईं। यदि अमावस्याकी कालिमा कुछ सावधानीसे आती, तो पूर्णिमा और अमावस्याके साक्षात्से गिरफ्तारी हो जाती। दोनों व्यक्तियों-में एक था खुफ़िया-पुलिसका पारसी इन्स्पेक्टर या सब-इन्स्पेक्टर बरूचा और दूसरा था शायद गोआनीज़ पुलिस-अफ़सर। दोनों ही साफ़ हिन्दु-स्तानी बोलते थे। अगर गोआनीज़ने पुलिसके ढंगसे पूछा होता कि ऐ तुम्हारा क्या नाम है, तो मुझे भ्रम होता कि शायद सुचेताजीने मेरे पास भेजा है। पर उन उँगलियोंने पुलिसवालोंको पहचनवा दिया। जैसे ही मुझे मालूम हुआ कि वे पुलिसवाले हैं, वैसे ही मुझे मूर्च्छा-सी आ गई और मैं एक ओर लुढ़क गया। बजाय उत्तर देनेके मैंने हाथसे इशारा किया कि वे अन्दर आ जायँ। वे आए और कुर्सियोंपर डट गए। लेटे-लेटे मैंने कहा—"मुझसे बोला नहीं जाता, आप लोग करीब आ जायँ।" गोआनीज़ बिलकुल पास बैठ गया और बातें होने लगीं। यह मुझे बादमें मालूम हुआ कि उन लोगोंको डाक्टर साहबके साले साहबसे मालूम हो गया था कि मैं बनस्थलीका कोई मरीज हूँ।

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम श्यामलाल है।"

"यहाँ क्यों आए हो ?"

"मेरी आँखें ख़राब हैं। इलाजके लिए आया हूँ।"

"कहाँ रहते हो ?"

"अगर आप वाक़िफ़ हों, जयपुरमें एक जगह बनस्थली है। शुमाली हिन्दुस्तानमें है वह।"

"आच्छा। बनस्थलीसे दिल्ली क़रीब है या बम्बई ?"

"डाक्टर साहब पं० हीरालाल शास्त्रीके दोस्त हैं और तबीयतसे मुफ़्तमें इलाज कर देंगे। आप जानते हैं, जान-पहचानसे इलाज ठीक होता है।"

"मुरदा क्यों हो रहे हो ?"

"अभी तो मुरदा नहीं, जिन्दा हूँ। सात दिनसे तेज बुखार आ रहा था। अभी-अभी उतरा है।"

"किसका इलाज किया ?"

"मैं अंगरेजी इलाज करता ही नहीं।"

"कबतक बम्बई रहोगे ?"

"जान बची और लाखों पाए। मैं तो चलने लायक हो जाऊँ, तभी यहाँसे चल दूँ। मर जाता, तो यहाँ कौन पूछता ?"

"बम्बई कितनी बार आए हो ?"

"पहली बार।"

"अच्छा, बनस्थलीसे यहाँतकके बड़े-बड़े स्टेशन बताओ।"

रुक-रुककर बड़े-बड़े स्टेशनोंके नाम गिना दिए। कुछ जान-बूझकर छोड़ दिए और कहा कि रातमें सब स्टेशन देख नहीं पाया। पर उन्होंने बीस मिनटतक जिरह की और सवाल-जवाब होते रहे।

"अंग्रेजी पढ़े हो ?"

"दस्तखत कर लेता हूँ। चौथी रीडरतक पढ़ी थी। कोई धीरे बोल-चालकी बातें करे, तो कुछ-कुछ मतलबकी बात समझ लेता हूँ। जल्दी बोलने और कड़ी अंग्रेजी नहीं समझता।"

"क्या काम करते हो ?"

"हिन्दी-उर्दू पढ़ाता हूँ। अब ठेका लेना चाहता हूँ।"

"कौन-से अखबार पढ़ते हो ?"

"उर्दूका 'रियासत' और हिन्दीका 'हिन्दुस्तान' जब मिल जायँ।"

जिरहकी झड़ीसे थककर मैं आँखें बन्द करके एक ओरको लेट गया और हाथसे इशारा किया कि थक गया हूँ।

"Leave the wretched fool alone otherwise he is likely to collapse." (कमबख्त मूर्खको छोड़ दो, वर्ना उसके मर जानेकी सम्भावना है) कहते हुए वे चले गए।

मूर्ख कौन था, यह पाठक समझ ही गये होंगे।

गिरफ्तारी

'विशाल भारत' कार्यालयसे 'विशाल भारत बुक डिपो' जाते समय, मार्गमें, विवेकानन्द रोडपर पं० शम्भूनाथ चतुर्वेदीका घर पड़ता है। गत सितम्बर १९४७ के प्रथम सप्ताहमें उनसे मिलने गया, तो मालूम हुआ कि उनके पिता पं० राधेलाल चतुर्वेदी भी मौजूद हैं। पं० राधेलाल चतुर्वेदीसे अपना परिचय सन् १९२० से है और वह परिचय यू० पी० सेक्रेटेरिएटमें और भी घनिष्ठ हो गया, जब मैं ग्राम-सुधार-अफसर था और वे सहयोग-समितियोंके रजिस्ट्रार थे। वार्तालाप-कलामें चतुर्वेदीजी सिद्धहस्त हैं। वे अगर नौकरीके जंजालमें न फँसे होते, तो सूबेके एक विशेष व्यक्ति होते। स्वभावसे हँसमुख, दिमागके सुलझे, कदके लम्बे, वर्णके गौर और देखनेमें रोबदाबके आदमी हैं। बहुत बढ़िया मजाक करते हैं। सन् १९४२ के बाद उनसे यह पहली मुलाकात थी। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो इन पाँच वर्षोंमें उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया हो। गरदन झुक गई है और उनको देखते ही गालिबका यह शेर याद हो आया—

कर दिया ज़ौफ़ने आजिज़ ग़ालिब,
नंगे पीरी है जवानी मेरी।*

मिलते ही बड़े प्रसन्न हुए। स्नेहपूर्ण उल्लासको व्यक्त करनेमें वे संयमसे काम ले रहे थे। कुछ वार्तालापके बाद वे मुसकराकर बोले—"आखिर गिरफ्तारीके वक्त आपने क्या किया था? सुना है कि दो-चार बेलन भी आपने पुलिसवालोंके मारे थे।" मैंने कहा कि यह बिलकुल गलत बात है। बेलन मैं क्यों मारता? बेलन मारनेका मौका तो था ही

---

* नंग = शर्म। यद्यपि मैं जवान हूँ; लेकिन मुसीबतोंने ऐसा बुड्ढा कर दिया है कि मेरी जवानी भी बुढ़ापेको शरमा रही है।

नहीं। यों अगर पुलिसवालोंको मारनेका इरादा होता, तो मैं चाहे भले ही मारा जाता; पर आध घंटेसे ज्यादातक तो गोलियाँ चलतीं और मैं ही बहुतोंको पहले मार देता।

असली बात चतुर्वेदीजीको बता दी; पर 'विशाल भारत'के अनेक पाठकोंका आग्रह है कि आखिर मैं अपनी गिरफ़्तारीका रहस्योद्घाटन क्यों नहीं करता ? क्या यह ठीक है कि मैंने साड़ी पहनी थी और यदि पहनी, तो मेरे लिए साड़ी पहनना कहाँतक युक्ति-युक्त था ? फिर यदि साड़ी पहनी, तो अदालतमें ऐसा बयान क्यों नहीं दिया ? मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि अपना निजी विचार तो यह था कि अदालतमें सब बातें साफ़-साफ़ कह दी जायँ और यह बयान दे दिया जाय कि जो-कुछ किया, सो ठीक किया और उनके लिए मुझे और मेरे साथियोंको गर्व है। कहीं डकैती नहीं डाली, उल्टी डकैतियाँ रोकीं। कहीं कत्ल नहीं किया और न किसीसे द्वेष निभाया। जो-कुछ किया, कांग्रेसजनों द्वारा संगठित आन्दोलनके भीतर किया। अदालतमें तो एक प्रकारसे कानूनी कुश्ती थी। अदालतमें तो कानूनी दृष्टिसे हर एक बात देखी जाती है। कानूनी दाँव-पेंच और नैतिकतामें बहुत अन्तर है। यह ठीक है कि कानूनकी बुनियाद नैतिकता है और होनी चाहिए; पर नैतिकताको जब कानूनके शिकंजेमें कसा जाता है, तब कानूनी कुश्तीके जीतनेके लिए बड़े दाँव-पेंच करने होते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि नैतिक दृष्टिसे हमारे ऊपर और भी संगीन दफ़ाएँ लगाई जा सकती थीं। जो दफ़ाएँ लगी थीं, वे कौन कम संगीन थीं ? एक बात हमारे पक्षमें यह पड़ गई कि जिन पुलिसवालोंके हाथमें मुकदमा था, उन्होंने अपने जीवनमें पहले कभी कोई इतना संगीन राजनीतिक मुकदमा नहीं लिया था। चक्रवर्तीने तो हमेशा गिरोहबन्दी और डकैतियोंके मुकदमे चलाए थे। चक्रवर्ती-जैसे नीच, अशिष्ट और बेहूदा पुलिस-अफसर कम ही होंगे। हिन्दुस्तानीपनका उसमें नाम नहीं, बेहूदगीका कुछ शुमार नहीं और बुद्धिकी प्रखरता तो उसमें है ही नहीं। रामप्रसाद इन्स्पेक्टरकी

जिन्दगी कान्स्टेबिली करते बीती और वास्ता पड़ा जुआरियों, इक्के-ताँगेवालों और ऐसे ही टुटपुँजिए फौजदारी मुकदमोंसे। इन लोगोंके उन दिनोंके बड़े दिमाग थे। समझ रखा था कि रामप्रसाद तो सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस हो ही जायगा। पता नहीं चक्रवर्तीके क्या मंसूबे थे।

गिरफ्तारीके बाद हमारा जो झूठा मुकदमा बनाया गया था, वह इतना निकम्मा था और इस ढंगसे बनाया गया था कि कानूनी दृष्टिसे वह चल नहीं सकता था। गवाह जो पेश किए गए थे, वे बादमें लाए गए। तलाशीके वक्त कोई गवाह मौजूद न था। पाँच घण्टे नारायण-भवनकी तलाशी हुई थी; पर पुलिसवाले इतने मूर्ख थे और हमारी गिर-फ्तारीके कारण इतने मदान्ध भी हो गए थे कि साधारण-सी बात जो वे कर सकते थे, वह उन्होंने नहीं की। गिरफ्तारीके बाद उन्होंने हममेंसे अधिकांश लोगोंको मेरे साथ ही कोतवालीमें रख दिया। रातभरमें सब साथी तैयार हो गए कि अगले दिन पूछ-ताछके समय कौन क्या बयान दे और बयान ऐसा होना चाहिए, जो पुलिसके बयानसे टकरायँ नहीं। एक ही पटरीपर अगर आमने-सामनेसे रेलें तेज गतिसे चलेंगी, तो वे टकरायँगी। यदि वे समानान्तर पटरियोंपर मिलती हुई चलें, तो बचकर निकल जायँगी। एक तो यह बात समझा दी गई। तलाशीकी बड़ी मजे-दार बात यह है कि नारायण-भवनमें अपने पास कई मन बारूद थी। पाँच सौ डाइनामाइट स्टिक्स थीं। पिस्तौलें और रिवाल्वरें थीं। मेरे खुद लाइसेन्सी हथियार—रेमिंगटन रायफल और १२ नम्बर बन्दूक—भी वहीं थे। प्लासें और पुलोंमें छेद करनेके बरमे भी थे। पुलिसको वहाँ कुछ मिला नहीं। बने हुए कुछ बम भी थे। गिरफ्तारीके समय और कोतवाली ले जानेके बाद हमने समझ लिया था कि पुलिसके पल्ले सब सामान पड़ गया है, बचनेकी कोई सूरत हो नहीं सकती। पर बचनेकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। खयाल था कि कुछ तो पुल तोड़ने, इंजन बरबाद करने और युद्ध-प्रयत्नमें लगे कारखानोंको बरबाद करनेमें मार दिए जायँगे। मेरे लिए जब जिन्दा या मुरदा पकड़नेकी आज्ञा थी, तब गिरफ्तारीके

समय भी मेरे मारे जानेकी आशंका थी। पुलिसको यह बात कि वहाँ इतना सामान था, हमें सेण्ट्रल जेल भेजनेके बाद मालूम हुई और तब क्रोधित होकर जिस मूर्खतापूर्ण ढंगसे डाइनामाइट स्टिक्स और हथियारोंके वहाँ रहनेकी बात अदालतमें पेश की, वह इतनी हास्यास्पद थी कि साधारण व्यक्तिके सामने भी टिक नहीं सकती थी।

असलमें बात यह हुई थी कि हमारी गिरफ्तारी ७ दिसम्बर, '४२ को हुई। घरकी तलाशी भी उसी दिन हुई और ८ तारीखकी सुबह मेरे लड़के रमेश और कुँवर बैजनाथसिंहके भतीजे भूपेन्द्रसिंहने नारायण-भवन-स्थित आलू फैक्टरीसे सब समान हटा दिया। लाइसेन्सी हथियार घर भेज दिए। श्री प्रभुदयाल भार्गवकी सहायतासे बारूद तालाबमें फेंक दी गई। भूदेव पालीवालने लगभग ३०० डाइनामाइट स्टिक्स गोपीलाल पालीवालके यहाँ जा पहुँचाये, जिन्हें गोपीलालजीने यमुनाकी बढ़ती धारमें फेंक दिया। भूदेवने कुछ डाइनामाइट स्टिक्स और अन्य सामान एक दूसरी जगह रख दिया और जब भूदेव मुखबिर बना, तब वह सामान पुलिसके पास पहुँचा। इस सामानको वहाँसे लाया साबित करनेके लिए जो जोड़-तोड़ पुलिसने भिड़ाए, वह पुलिसके खिलाफ ही पड़े। टोपीदार बन्दूकें जो पुलिसने दिखाईं, वे हमारे पास थीं नहीं। गुना (ग्वालियर) के श्री सागरसिंहकी तलाशीसे लाकर वे दिखाई गई थीं। पुलिसने डायरीमें काफी काट-छाँट की थी। इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती और रामप्रसाद यह चाहते थे कि अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र आगरेमें चले, जिसके लिए बीस लाखका बजट बने। अपना खयाल है कि अगर हमारा मुकदमा खुफिया पुलिसके रायबहादुर पं० शम्भूनाथ दुबे या रायबहादुर पं० टीकाराम मिश्रके हाथोंमें होता, तो अपनेराम तो फाँसीके तख्तेपर झूल ही जाते। अगर दुबे या मिश्र महोदयके हाथोंमें हमारा मुकदमा होता, तो मैं तो सब बात साफ-साफ ही कह देता। पर जब यह देखा कि इतना संगीन मुकदमा भैंसबुद्धि चक्रवर्तीके हाथमें है, जब साथियों और अनेक मित्रोंने ताने दिए, तब; जैसा पहले लिखा जा चुका है, हमने कानूनी लड़ाई लड़ी।

यह बात लिखनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि उस तरहकी कानूनी लड़ाई लड़नेमें मुझे और दो-तीन साथियोंको, जिसमें श्री पीताम्बर पन्त और विजयशरण चौधरी खास हैं, कोई मानसिक आनन्द नहीं मिला। अब भी एक टीस दिलमें है कि आखिर दोस्तोंके आग्रह और उस कानूनी लड़ाईको लड़नेके लिए राजी होना कोई विशेष अच्छी बात नहीं थी। पर संस्मरणकी मुख्य बात है गिरफ्तारी और गिरफ्तारीके रहस्यका उद्घाटन करनेकी। कई बार विचार हुआ कि जो बात वास्तवमें थी, उसको लिख क्यों न दिया जाय। अदालतमें डा० काटजू (अब हिज एक्सीलेंसी डा० काटजू)ने पूछा कि आखिर इसमें क्या रहस्य है कि पुलिसने आपका पीछा किया और आप साड़ी पहने बैठे हुए थे? पुलिसने जब पीछा किया, तब साड़ी पहननेका मौका कैसे लगा? असलियत इस मामलेकी क्या है? जब असलियत मित्रोंको मालूम है और जब डा० काटजूको सब बात बता दी, तब फिर लिखनेमें क्या संकोच? हाँ, न लिखने और अदालतमें साफ न कहनेका कारण था:—

ईमा मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ्र ;
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे।

पर सच्ची बातको लिखनेसे एक तो रहस्योद्घाटन हो जायगा और दूसरे साफ और सच्ची बात लिखनेसे आत्माको कुछ चैन ही मिलेगा।

गत ५ दिसम्बर, १९४२ को अलीगढ़में सफल मीटिंग करनेके बाद मैं ६ दिसम्बरको शामकी गाड़ीसे आगरे पहुँचा। स्टेशनसे उतरकर मैं बेलनगंजमें अपने ठहरनेके स्थानपर पहुँचा। बीमारीसे काफी कमजोर था, पर काम करना ही था। वहाँसे मैं नारायण-भवन सीधा नहीं गया। आगरेमें मेरे आनेकी खबर केवल एक साथीको ही मालूम थी। उसके अतिरिक्त और किसीको पता नहीं था कि मैं कब आगरे आऊँगा। गलती उस साथीसे यह हुई कि उसने जान-बूझकर नहीं, अज्ञानवश शेखीखोरीके कारण एक कम्युनिस्टसे चर्चा कर दी कि मैं ७ तारीखको आ रहा हूँ। नतीजा यह हुआ कि पुलिसको उन कम्युनिस्ट महाशयसे पता चल गया।

फिर पुलिसको मेरी गिरफ्तारी करना आसान था। काफी नाकेबन्दी कर ली। मुझे ऐसा लगा कि आगरेमें कुछ गड़बड़ जरूर है। मैंने सावधानीसे काम लिया। ७ दिसम्बरको प्रातःकाल न पहुँचकर लगभग १० बजे नारायण-भवन पहुँचा। वहाँ पहुँचकर आगरा-कमिश्नरीके कार्यकर्त्ताओंकी समस्याओंको सुलझाया। श्री पीताम्बर पंत जी० आई० पी० से आगरे पहुँच गये थे। उनके पास आन्दोलनके हिसाबका १५००) रु० था। लगातार तीन-चार घण्टे मीटिंग की और समस्याओंको सुलझाया और दिल्लीमें गवर्नमेण्ट इंस्टीट्यूट, मेरठके एलकोहलके कारखाने और रुड़की और ज्वालापुरके बीच बहादुराबाद बिजलीघरको नष्ट करनेका पक्का प्रोग्राम बना लिया। अलग-अलग रेलें तै कर दीं कि किसको कहाँ मिलना है। कार्यकर्त्ताओंमें मतभेद हो गया था, वह भी दूर कर दिया। लगभग ४ बजे सबको वहाँसे अलग कर दिया और कह दिया कि उस दिन दुबारा मुझसे वे न मिलेंगे। मेरा प्रोग्राम था आगरेसे अलीगढ़, बदायूँ होकर बहादुराबाद पहुँचना। दिन-भर कुछ तो कहनेसे और कुछ अपने-आप ही मेरे बड़े भाई पण्डित बालाप्रसाद शर्माने चीजें हटाना शुरू कर दी थीं। वे वहींपर आलू फैक्टरीमें नौकरी करते थे। उन्होंने कार्य-कर्त्ताओंकी सेवा करनेमें कुछ छोड़ा नहीं। उन्हें कुछ ऐसा महसूस होता था कि पुलिसकी कोई खास नजर वहाँपर है। इसलिए मेरे आनेपर उन्होंने भरे हुए बम, बारूद और हथियार इधर-उधर हटाना शुरू किया। दो-चार बार तो रूमालमें बाँधकर बमोंको वे ले गये, जब कि नीचे पुलिसके इन्सपेक्टर और कई खुफियाके आदमी भी प्रभुदयाल भार्गवसे बातें कर रहे थे। असलमें वे मौका देख रहे थे कि वहाँपर तलाशी लेने और गिरफ्तारीके लिए नाकाबन्दी कैसे की जाय। सब स्थानोंको देखना था, इसलिए वे सादी पोशाकोंमें इधर-उधरकी बातें करते हुए आए थे। यदि वे उस वक्त तलाशी ले बैठते या सामान उठानेमें देख लेते, तो उन्हें पूरी सफलता मिल जाती। लगभग ४ बजेतक बहुत-सा सामान भाई साहबने इधर-उधर स्थानोंमें रख दिया था। पुलिसने तलाशी ली।

परमात्माकी कृपासे वे उस सामानतक पहुँचे ही नहीं। उन्होंने यह कहते हुए अपना काम बन्द कर दिया कि बदमाशोंके पास कोई भी चीज तो नहीं निकली। उन्हें क्या मालूम था कि दो-तीन मिनट और वे तलाशी लेते, तो वहींपर कूड़े-करकटमें उन्हें इतनी चीजें मिलतीं कि उतनी चीजें यू० पी० भरमें कहीं और न मिलतीं। उस सामानसे उन्हें यह भी पता चल जाता कि आगरा हथियारोंके वितरणका केन्द्र था—मध्य-प्रान्त और पश्चिमी यू० पी० और अन्य स्थानोंके लिए। पर यह तो हुई पुलिसकी मूर्खताकी बात सामानके न पकड़ पानेके विषयमें। अस्तु, ४ बजेके करीब जैसे ही मैं श्री पीताम्बर पंतके साथ अपने टिकनेकी जगहको चलने लगा, वैसे ही बनारसके रामानन्दाचार्य, मनोहरलाल शर्माको लेकर मेरे पास आये। यह उनकी गलती थी। फौजी हुक्मके अनुसार सबको आज्ञा दे दी गई थी कि मुझसे कोई न मिले। पर आचार्यजी, मनोहरलाल शर्माके कहनेसे चले आये, क्योंकि मनोहरलालजीको कुछ अपनी दिक्कतें और कठिनाइयाँ मेरे सामने रखनी थीं। मुझे बैठना पड़ा और बातोंके सिलसिलेमें करीब डेढ़ घण्टा हो गया। भीतरसे कुछ आशंका थी कि कहीं हम फँस न जायँ, इसलिए मैं चुपचाप उठा। खतरा तो था ही कि कहीं पुलिस धावा न कर दे। सब लोग वहीं बैठे हुए थे। मैंने कमरेके बाहरकी ओर देखा, निकलनेके लिए नजर डाली। बाहर जो देखा, तो बिजलीकी रोशनीमें, जो उधर पड़ रही थी, पुलिसकी वर्दी पहने एक व्यक्ति नजर आया। पीछे हटकर मैंने खबर दी कि हम लोग घिर गये हैं। पुलिसका काफी इन्तजाम होगा। अब जिस किसीके पास कोई कागज हो, बरबाद कर दिया जाय। शोरगुल जरा भी न हो और यदि सम्भव हो, तो सब आदमी एक ही जगह गिरफ्तार न हों। कोई किसी किस्मकी छेड़-छाड़ न करे, बल्कि शान्तिसे गिरफ्तार हो जाना चाहिए, क्योंकि बचनेकी कोई सूरत नहीं। कोई चार सौ पुलिसवालोंसे हम घिरे हुए थे। चार-पाँच जगह पुलिस कान्स्टेबिल तैनात थे उन मोड़ोंपर, जहाँसे कोई निकल सकता था। वे सब नीचे सड़कपर थे और हम लोग दुछत्तेपर। कूद सकते नहीं

थे। एक ओर बराण्डेमें अँधेरा था। इतनी ही बात मैं कह पाया था कि सामने बराण्डेमें फौजी बूटोंकी आवाज सुनाई दी। मैंने समझा कि कोई पुलिस-अफसर आ रहा है। शिकार खेलनेका आदी होनेके कारण मैंने शिकारकी खोजकी कलासे काम लिया और जैसे ही फौजी बूटोंकी आवाज कमरेसे होकर आगे आई, यानी आखिरी कमरेतक, वैसे ही पीताम्बर पंत और मैं चुपचाप कमरेसे निकल आये। हम लोग जबतक जीनेतक आये, तबतक फौजी बूटवाला आदमी आखिरी कमरेतक जाकर कुछ हुक्म-सा देने लगा।

स्मरण रहे, यू० पी० भरके लिए ध्वंसात्मक योजनाका ड्राफ्ट उस समय मेरे पास था। उस ड्राफ्टमें जो संशोधन थे, वे यू० पी० के मित्रों द्वारा किए गए थे। दिल्लीमें वह ड्राफ्ट बना था और उस ड्राफ्टकी स्वीकृति देनेवालोंमें डा० केसकर, श्रीमती सुचेता कृपालानी, श्री राधेश्याम शर्मा, आचार्य जुगुलकिशोर, श्री पीताम्बर पंत तथा अन्य मित्र थे। पूरे हिसाबकी डायरी श्री पंतजीके पास थी। रुपए भी उनके पास थे। जीनेतक जैसे ही मैं आया कि कान्स्टेबिलने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—"आगे नहीं जा सकते।" बिना किसी भयके और बड़ी शान्तिसे मैंने पूछा—"आखिर क्या बात है? हम लोग तो यहीं रहते हैं, आज यह रोक कैसे लग गई?" कान्स्टेबिलने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"आज बहुत बड़ी दबिश दी गई है, तलाशी होगी और गिरफ्तारियाँ होंगी। मुझे हुक्म नहीं है कि किसीको जीनेसे नीचे उतरने दूँ।" सँभलकर मैंने कहा—"अच्छी बात है, तो हम वापस तो अपने घर जा सकते हैं? उसमें क्या हर्ज है।" कुछ सोचकर कान्स्टेबिलने कहा—"हाँ, ऐसा कर सकते हो।" बस, फिर क्या था। हम लोग बड़ी सावधानीसे पीछे लौटे और पासके कमरेकी ओर नजर डाली, तो उसमें एक महिला आटा गूँध रही थी। दीपक टिमटिमा रहा था। कमरेके आगे दरवाजेपर एक दुबला-पतला आदमी खड़ा था। यह आदमी दरवाजेसे सटा एक ओर खड़ा था। भीतर कमरेमें घुसकर मैंने

कहा--"देखिए, मेरा नाम है श्रीराम शर्मा। पुलिसने इस भवनको घेर लिया है। मैं बीमार हूँ, नहीं तो आगेकी दीवारपर चढ़कर पेड़पर होकर जा सकता था। पर एक मौका है। अगर आप मदद करें और वह यह कि मुझे आप साड़ी दे दें और मैं आटा गूँधने लगूँ और आप इस तरह बैठ जायँ कि मेरा पूरा शरीर दिखाई न पड़े। एक ओरके मेरे शरीरको ढँकते हुए यह महिला बैठ जायँ और आप दरवाजेपर यों ही खड़े रहें। किवाड़ खुले रहें, ताकि पुलिसको कोई शक ही न हो।" स्त्री-पुरुष दोनों ही राजी हो गये। पुरुषका नाम था कामताप्रसाद, जो मेरे साथ मुक-दमेमें घसीटे गये और महिला थीं उनकी पत्नी। कोट उतारकर मैंने एक ओर रख दिया और सबसे पहला काम किया, वह यह था कि योजनाका ड्राफ्ट और जितने भी कागज थे, उनको आगके सिपुर्द कर दिया। पंतजीसे हिसाबकी डायरी तथा अन्य कागज भी लेकर अंगीठीमें जला दिए। बातकी बातमें वे कागज जलकर खाक हो गए। ऐसा मालूम हुआ, मानो अग्नि-स्फुलिंग विहँसते हुए व्योमाकाशमें विलीन हो गए। यह कहते हुए कि अब तुम्हारे लिए अधिक खतरा नहीं। १५००) पंत-जीसे लेकर अपने पास रख लिए और धोतीके ऊपर साड़ी पहन ली। जीवनमें पहली बार साड़ी पहनी थी। यों लहँगा तो सरदार भगतसिंहको एक बार पहनाया था। दिमागमें वह बात थी कि अर्जुन भी तो द्वापरमें बृहन्नला बने थे। तब घोर कलियुगमें एक कार्यकर्त्ता सचाई और ईमान-दारीके साथ कुछ विश्वासको लेकर यदि साड़ी पहन लेता है, तो उसे कोई कलियुगी बृहन्नला कहे तो क्या हर्ज है? बस, आटा गूँधने बैठ गया। पंतजीसे कह दिया कि वे दूसरी जगह टरक जायँ और वहाँ गिरफ्तार न हों।

दसों षड्यन्त्र केसोंको पढ़ रखा था। एक-आधकी अदालती कार्य-वाही भी देखी थी। यह आदेश तो था ही कि यथासम्भव सब लोग एक साथ गिरफ्तार न हों। बस, इतनी ही बात दिमागमें थी। शोरगुल दूसरी तरफ हो रहा था। मालूम हुआ, फौजी बूटोंकी खटाखट आवाज करते

हुए जानेवाला रामप्रसाद था। उन बाकी साथियोंको रामप्रसाद गिरफ्तार कर रहा था। मेरी ओर अब चक्रवर्ती, वीरेन्द्रसिंह और एक गढ़वाली इन्सपेक्टर आए। खुला दरवाजा देखकर वे कुछ सहमे। दरवाजेपर खड़े कामताप्रसादको पकड़ लिया और वे जपाटे रसीद किए कि शायद कामताप्रसादको छठीका दूध याद हो आया। दूसरा व्यक्ति जो खड़ा था, वह था राजबहादुर श्रीवास्तव। उसने हमारी बातें सुनी थीं। जैसे ही एक दुहत्तड़ उसपर पड़ा कि वह फौरन बोल उठा—"मुझे क्यों पकड़ते हैं, मैंने क्या किया है? पं० श्रीराम शर्मा साड़ी पहने वह बैठे है।" बस, फिर क्या था। पुलिसवाले कमरेकी ओर मुड़ पड़े। फिर भी उन्हें यह आशंका थी कि शायद इतनी मोटी-ताजी कोई महिला ही हो। इसलिए वे कुछ चौंके और झिझककर खड़े हुए। पर जैसे ही वे करीब आए, वैसे ही चक्रवर्तीने सन्देहके स्वरमें कहा—"यह तो आदमी मालूम होता है।" पर्दाफाश हो गया। फौरन ही मैं खड़ा हो गया और घूँघटके पट खोल दिये। गिरफ्तारीके बाद जो उन्होंने किया, हाथ पीछे बाँधकर जो ठुकाई की, उसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ। उसकी पुनरावृत्ति ठीक नहीं। हाँ, राजबहादुर श्रीवास्तव हमारे साथ जेल भेजा गया और वह हमारे खिलाफ पुलिसकी ओरसे गवाह भी बना।

९ तारीखको जब पुलिसने बड़े व्यंग्यसे कोतवालीमें कहा—"आप जैसे ख्याति-प्राप्त व्यक्तिको जनाना वेश धारण करना कहाँतक उचित है", तो गोलीकी तरह उन्हें फौरन उत्तर मिला—"बेहूदगीसे वेश बदलकर, कुली बनकर, भिखमंगा बनकर और अन्य धोखेबाजीसे पुलिसवालोंका काम करना कहाँतक आपको जेबा देता है? मैंने साड़ी पहनी। फिर आवश्यकता पड़े, तो फिर पहनूँगा। निजी स्वार्थके लिए तो ऐसा नहीं किया। जीवनभर ठगी करनेवालोंको क्या अख्तियार है ऐसी बात करनेका?" पुलिसवालोंसे कुछ जवाब न बन पड़ा। लगे हाथ यह भी जवाब श्री गोविन्द सहाय (यू० पी० के एक पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी) को दे दूँ कि हजरतकी तिकड़मों और अन्य बातोंकी अपेक्षा साड़ी पहनना, और

वह भी देशके लिए, साधारण-सी बात है। हजरतने जेलमें कहा था कि मेरा वह कार्य कायरतापूर्ण है। किसी कायर या दब्बूको कोई हक न था, जो हमारे मामलेमें दखल देता। पुलिसवाले साड़ीके मामलेको अदालतमें न रखते और यह कह देते कि हम सबकी गिरफ्तारी एक ही कमरेमें हुई, तो उनके लिए हमें फँसाना आसान हो जाता। चलते समय उन्होंने राजबहादुरके कहनेसे मेरे भाईको भी पकड़ लिया। पुलिसके लिए मुझे और पंतजीको सबके साथ गिरफ्तार करनेकी बात कहना बहुत आसान था। इसके अतिरिक्त जैसा कि डा० काटजूने बहसमें कहा कि पुलिसने जब उस कमरेपर दबिश दी, तब दो आदमी वहाँसे भागे यानी पीताम्बर पंत और मैं, और पीछा करनेवालोंमें पुलिसके अफसर और कान्स्टेबिल थे। पुलिसने यह नहीं कहा कि मैं वहाँ साड़ी पहने था। उन्होंने यह कहा कि कमरेमें जाकर उन्होंने मुझे साड़ी पहने पाया। तब कैसे यह मुमकिन था कि एक आदमी कई आदमियों द्वारा पीछा किए जानेपर बात-की-बातमें साड़ी पहन ले? क्या बिजलीकी सहायतासे रास्तेमें यह काम सम्भव था? रास्तेमें पुलिसके कान्स्टेबिल भी तो थे। नीचेकी अदालतमें यह कहवला लिया गया था कि कान्स्टेबिल कहाँ-कहाँ रखे गये थे। अगर हम लोग भागते, तो पहले तो कान्स्टेबिल ही पकड़ लेते और कमरेतक जानेकी नौबत ही कैसे आ सकती थी? इसके अतिरिक्त यह भी सोचना है कि अगर साड़ीकी बात अदालतमें नहीं कही होती, तो पुलिसका मुकदमा इतना कमजोर नहीं होता। वहाँ भी नारी-रूपने हमारी रक्षा की। फिर यदि पुलिसको यह ठीक पता होता कि साड़ी पहने मैं ही हूँ, तो गोली मारनेका उन्हें पूरा हक था। सम्भवतः सन्देहके कारण उन्होंने गोली नहीं मारी। स्वार्थ और परमार्थकी दृष्टिसे मेरी और मित्रोंकी साड़ीने इतनी सहायता की, जितनी बृहन्नलारूपने अर्जुनकी नहीं की। तब शिकायत किस बातकी और शोरगुल किस बातका? यह है रहस्य साड़ी पहननेका और गिरफ्तारीका। पुलिसको यह क्या मालूम कि उसके आनेके बाद मुझे १५ मिनट इस सब कामके लिए मिल गए

थे। पुलिस कान्स्टेबिलने जान-बूझकर नहीं, वरन् सिधाईके कारण हमें वापस लौटनेकी आज्ञा दे दी थी। अगर पुलिसको मेरे पास कोई भी कागज मिल जाता, तो उनके मुकदमेकी कितनी मजबूती हो जाती। वैसे फाँसीके लिए तो वह ड्राफ्ट ही काफी था।

मैं आस्तिक हूँ। मुसीबतोंने आस्तिकवादको और भी दृढ़ कर दिया है। मेरा यह विश्वास है कि ये सब बातें किसी अदृष्ट शक्ति द्वारा ही हो सकती हैं, आदमीकी शक्ति तो ऐसे मामलोंमें नगण्य है—

मुद्दई लाख बुरा चाहें तो क्या होता है;
वही होता है जो मंजूर खुदा होता है।

सूबेदार जुम्मनखाँ

७ दिसम्बर, सन् १९४२ को जब पुलिसवालोंने हम लोगोंको गिरफ्तार किया, तब उन्होंने समझा कि नौकरशाही और ब्रिटिश सरकार गिरफ्तार करनेवालोंको ऊँचे दर्जे देगी और उन्हें पुरस्कृत भी करेगी; क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध लड़ने और उसकी जड़ उखाड़नेवालोंको उन्होंने गिरफ्तार ही नहीं किया, वरन् उनमेंसे कई एकको कसकर पीटा और अपमानित भी किया था। इसके अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और पुलिस अफसरोंने खुल्लमखुल्ला कहा था कि इन पंक्तियोंके लेखकको तो फाँसी होगी और शेष अभियुक्तोंको सात वर्षसे लगाकर बीस वर्षतककी कड़ी कैद। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अधिकारियोंने हमें हवालाती कैदी (Under-trial prisoner) नहीं बनाया बल्कि नजरबन्दी कैदी (Security prisoner) बनाकर आगरा सेण्ट्रल जेल भेज दिया। विशेष अदालतों (Special Courts) का जमाना था। सोचा था कि शीघ्र ही फैसला हो जायगा और अधिकारियोंकी अभिलाषा पूरी हो जायगी। पर अधिकारियोंके मन तो आवश्यकतासे अधिक गन्दे थे। शनाख्तके समय कोर्ट-इन्सपेक्टरसे पता चला कि आगरा षड्यन्त्र केस अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र-केस होगा, जिसमें मध्यप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, बिहार और यू० पी० के पचपन व्यक्तियोंपर मुकदमा चलेगा और उसमें सर्वश्री रफ़ीअहमद क़िदवई, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, जगनप्रसाद रावत, शम्भूनाथ चतुर्वेदी, आचार्य जुगलकिशोर, राधेश्याम शर्मा, गोपीनाथसिंह, डाक्टर केसकर, निरंजनसिंह इत्यादि अभियुक्त होंगे।

इतने आदमियोंके साथ रहनेमें जो आनन्द रहेगा, उसकी कल्पनामात्रसे ही सबको बड़ी प्रसन्नता थी। अधिकारियोंने बड़ा लम्बा-चौड़ा

जाल विछाया था। उनकी दशा उन उन्मत्त लोगोंकी-सी थी, जो अपनी सत्ताके नशेमें बौखला जाते हैं। जितना ही अधिक उन्होंने ऊधम किया, उतना ही अधिक हमको आशाकिरण-आलोकका आभास होने लगा। हमें युद्ध-हवालाती कैदी इसलिए नहीं बनाया, ताकि हम अपने मुकदमेकी पैरवीके लिए अपने मित्रों और घरवालोंसे न मिल सकें। हमारे ऊपर दफा २६ भी लगी हुई थी और हम हवालाती कैदी भी थे। जोरो-जुल्म, बेहूदगी और नीचता करनेमें अगुआ थे—खुफिया पुलिसके डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर चक्रवर्ती और खुफियाका इन्सपेक्टर (आजकल देहरादून स्थित सर्किल-इन्सपेक्टर) रामप्रसाद। लगभग एक वर्षतक तो पुलिसवाले मुहलत ही लेते रहे और इस बीच स्पेशल अदालतें खत्म कर दी गईं। पहली मात तो पुलिसने यही खाई। सुना था कि अन्तर्प्रान्तीय षड्यन्त्र केसके लिए लगभग बीस लाख रुपयेकी माँग की गई थी। मुकदमा चलाना था पचपन आदमियोंपर; पर बादमें बड़े नामी वकीलोंके परामर्शसे केवल चौदह व्यक्तियोंपर ही मुकदमा चलाया गया।

सेण्ट्रल जेल आगरेके अन्दर ही मजिस्ट्रेटकी अदालत लगती थी। सबसे दुःखकी बात यह थी कि कुटुम्बी लोगोंको अदालतमें आनेकी आज्ञा तो थी; पर हम लोग किसीसे बात नहीं कर सकते थे। अधिकारियोंकी ओरसे इस बातकी कड़ी ताकीद थी कि अभियुक्त घरवालोंसे बोल न पाएँ। अभियुक्तोंके कुटुम्बी जनोंके लिए एक ओर स्थान रक्षित था। वे वहीं बैठते थे। जेलके वार्डर और पुलिसके लोग कड़ी नजर रखते थे कि कहीं कोई अभियुक्त घरवालोंसे बात न कर ले। अभियुक्त और उनके कुटुम्बी निकट होते हुए भी दूर थे। बच्चे बिलखते रहते, हम लोगोंके पास आनेके लिए; पर कोर्ट-इन्सपेक्टर जमुनाप्रसाद और खुफियाका इन्सपेक्टर रामप्रसाद इस बातमें मजा लेते कि हम लोग बच्चोंको दुलार-भरे हाथोंसे गोदीमें न ले सकें। पर स्थानकी दूरीसे दिलकी दूरी थोड़े ही हो सकती थी। निकट तो हमारे पुलिसके नरपशु थे; पर दिलो-दिमागसे वे हमसे हजारों कोस दूर थे।

मजिस्ट्रेटके यहाँसे चौदह आदमियोंमेंसे तेरह आदमी सैशन सुपुर्द कर दिये गये। इस बातके लिए, हमने सुना था कि प्रयत्न किया गया था कि सैशनका मुकदमा भी जेल ही में हो, पर न जाने क्यों अन्तमें यही तय पाया कि हमें जेलसे बाहर सैशन अदालत जाना पड़ेगा, तब हम र खुशीका ठिकाना न रहा। जेलकी चहारदीवारियोंसे तबीयत ऊब गई थी। चारों तरफ नहूसत दिखाई पड़ती थी। वही बैरकें, वही जंगले, वही पेड़ और वही एकरस जीवन और रातमें उन्हींमें बन्द होना। मुक्ताकाश देखनेके लिए तड़पते थे। जेलके फाटकसे बाहर हथकड़ियाँ पहने पुलिसके पहरेमें दुनियाके आदमी देखनेको मिलेंगे, सड़कपर नये आदमी दिखाई पड़ेंगे, कुछ चहल-पहल होगी, अर्थात् एक प्रकारसे जीवनमें कुछ सरसता आयेगी—ऐसे विचारोंसे हम कथित भयंकर विद्रोही और आतंकवादी बड़े ही प्रसन्न थे।

जेलके फाटकपर हमें थोड़ी-बहुत परेशानी जेलर उम्मेदहसनकी धूर्तता-से होती थी। उसने स्पष्ट रूपसे कहा भी था कि उसकी पूरी सहानुभूति पुलिसके साथ है। हम लोग उससे कोई रियायत नहीं चाहते थे। हममेंसे एक साहब थे, जिनकी वह 'तिकड़म' किया करता था। इसका भी हम बुरा नहीं मानते थे। हमें तो उसके अन्यायसे ही चिढ़ थी।

हथकड़ियाँ पहनकर जब हम लोग फाटकसे बाहर होते, तब सशस्त्र पुलिस दोनों ओर खड़ी हो जाती और हम लोग पेट्रोलकारमें जा बैठते। अदालत ले जानेवाला पुलिसका दस्ता एक अफसरके अधीन रहता। सशस्त्र पुलिसके आदमी प्रायः दो-तीन ही रहते। अफसरोंमेंसे एक सूबे-दार थे, नाम था जुम्मनखाँ।

जुम्मनखाँके प्रति हम लोगोंका आकर्षण स्वाभाविक था, क्योंकि उनके साथ दो बच्चे भी आया करते थे। बच्चोंकी उमर क्रमसे आठ-दस वर्षकी होगी। सम्भव है, वे और भी छोटे हों। जेलकी चहार-दीवारीमें बच्चोंकी बड़ी याद आती है। इसलिए जब हम दो बच्चोंको पेट्रोल-कारमें आगे बैठे देखते, तब इन पंक्तियोंके लेखकको अपने बच्चोंकी

याद आ जाती। कितनी भोली और सरल आकृतिं थी उनकी ! बच्चोंके चेहरोंपर कुछ सूनापन दिखाई देता था। पेट्रोल-कारके भीतर इन पंक्तियोंका लेखक, ड्राइवरकी सीटसे सटकर बैठा करता। एक दिन बच्चोंको देखकर न जाने क्यों दिल भर आया और सूबेदार जुम्मनखाँसे पूछ बैठा—"आप इन छोटे बच्चोंको इस तेज लूमें अपने साथ क्यों लाते हैं ?"

"मेरे ऊपर खुदाका क़हर नाज़िल हुआ है, पण्डितजी।" जुम्मनखाँने ठण्डी साँस खींचकर कहा और बच्चोंकी ओर संकेत करके बोला—"इनकी माँका इन्तकाल हो गया है। अब इनके मैं ही माँ, और बाप हूँ। यदि दूसरी शादी करता हूँ तो नई बीवी इनकी जिन्दगी खराब कर देगी। पुलिस लाइनमें किसके पास इन्हें छोड़ें। इसलिए ये मेरे साथ ही रहते हैं।"

जुम्मनखाँकी बातोंसे एक धक्का-सा लगा और दिलने झुककर सहानुभूतिके दो फूल—अश्रुकण; दिवंगत आत्माके प्रति चढ़ा दिये। पेट्रोल-कार रास्तेको नापती हुई सैशन अदालतकी ओर बढ़ी। उस दिन इन पंक्तियोंके लेखकसे नारे नहीं लगाये गये। अदालतमें पहुँचनेपर हम लोगोंको दर्शकों और घरवालोंसे बातें करनेकी सुविधा थी। पुलिसने बहुत चाहा कि हमें खाना वगैरह न दिया जाया करे। कारण यह था कि मि० चक्रवर्ती और रामप्रसादने जीवन-भर इखलाकी कैदियोंके ही मुकदमे चलाये थे। शायद पहली बार ही इतना बड़ा राजनीतिक और संगीन मुकदमा उनके पल्ले पड़ा था। उनकी दिमागी हालत तेलीके बैलके समान थी। अस्तु, सैशन अदालतमें हम लोगोंको घरवाले और मित्र खाना देते। हम लोग भी जुम्मनखाँके बच्चोंको बिना खिलाए कुछ नहीं खाते। मातृहीन बच्चोंको देखकर हमें बड़ी तकलीफ होती। जुम्मनखाँसे और अन्य पुलिसवालोंसे हमने कह दिया था कि यदि बच्चे खाना नहीं खायँगे तो हमसे भी खाना नहीं खाया जायगा। बदलेमें हमें कुछ रियायत नहीं चाहिए थी। हम तो नियमोंका पालन करते थे। इन्सपेक्टर रामप्रसाद और कोर्ट इन्सपेक्टरकी आँखें उनके दिलके द्वेषको प्रकट करतीं और यदि उनका

वश चलता, तो वे न जाने क्या करते। वैसे अपनी करनीमें तो वे चूके न थे।

अदालतसे जेल जाते समय और जेलसे अदालत आते समय हम केवल तीन नारे लगाते और वे नारे थे—'भारत माताकी जय,' 'महात्मागांधीकी जय' और 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद'। इन नारोंको सुनकर इन्सपेक्टर रामप्रसाद और जमुनाप्रसाद कुढ़ ही नहीं जाते, बल्कि ऐसा प्रतीत होता मानो उनकी सम्पत्ति छिनी जा रही है।

एक दिन हम लोग डौकमें खड़े बातें कर रहे थे; लंचका समय था। जज साहब लंचको गए हुए थे कि एक आदमीने आकर पूछा—"आपका नाम क्या है?"

"आप नाम क्यों पूछते हैं? आप कौन हैं?"

"मैं हरिपर्वत थानेका दारोगा हूँ और एक तहकीकात करने आया हूँ।"

"हम लोग अदालतके अधीन हैं। आप बिना अदालतकी आज्ञाके कोई तहकीकात नहीं कर सकते।"

"मैंने तो जज साहबसे पहले ही इजाजत ले ली है।" दारोगा साहबने कहा।

"अच्छी बात है। आप क्या तहकीकात करना चाहते हैं पूछिए। मेरा नाम है श्रीराम शर्मा।"

"जेलसे अदालत और अदालतसे जेल जाते समय आप नारे लगाते हैं?"

"जी हाँ।"

"आप कौन-से नारे लगाते हैं?"

"हम केवल तीन नारे लगाते हैं, और वे हैं—महात्मागांधीकी जय, इन्क़लाब ज़िन्दाबाद और भारतमाताकी जय।"

"'अँगरेजी सल्तनतका नाश हो' और 'फौजमें भरती होना पाप है' ये नारे आप नहीं लगाते?"

"हम चाहते तो यही हैं; पर ये नारे हम नहीं लगाते और न लगानेका कारण यह है कि इन नारोंके लगानेसे आप केवल भारत-रक्षा-कानूनकी दफा ३८ में ही मुकदमा चला सकेंगे। जो मुकदमा चल रहा है,

उसमें ही फाँसी हो सकती है। तो फिर दफा ३८ के कोई मानी नहीं हैं। और इस तरहकी छेड़खानी करनेसे कोई फायदा नहीं है।"

अन्य साथियोंसे भी पूछ-ताछ करके दारोगा चला गया। सैशन अदालतसे हम लोग सभी दफाओंसे बरी कर दिये गये। हममेंसे केवल एकको—इन पंक्तियोंके लेखकके बड़े भाईको—एक गैरकानूनी नम्र परचा रखनेके जुर्ममें, ३ महीनेकी कड़ी सजा हुई।

हमारी रिहाईसे तत्कालीन सरकार, खुफिया-विभागका स्पेशल विभाग, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और खुफिया पुलिसके अन्य लोग इतने बौखलाए कि हमको आंतकवादी क्रान्तिकारी करार देकर फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल भेजनेका हुक्म हुआ। २ सितम्बर, १९४५ को जब हम लोग सेण्ट्रल जेलके बारह तालेको छोड़ जेलके फाटकपर आये, तो देखते हैं कि सूबेदार जुम्मनखाँ सशस्त्र पुलिसके साथ खड़े हैं। देखते ही वे आश्चर्यसे बोले—"वल्लाह पण्डितजी, आप हैं? शुक्र है खुदाका कि आप लोग रिहा हो गये। आपको अदालत ले जानेमें मुझे बड़ी शर्म लगती थी। आप लोगोंकी रिहाईकी खबर सुनकर बड़ी खुशी हुई। तोबा, तोबा! सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब मि० वुडने मुझे कितना डराया कि आप लोग सूबेके खास खतरनाक आदमियोंमेंसे हैं। पुलिस गारदपर हमला कर सकते हैं। रास्तेमेंसे भाग सकते हैं। इसलिए मुझे हुक्म मिला है कि आप लोगोंको लाकर पुलिस-लाइनमें रख दिया जाय और लोगोंको यह न बताया जाय कि आप लोग किस स्टेशनसे बैठेंगे और गाड़ी आनेमें सिर्फ ५ मिनट रहे, तभी आपको स्टेशनपर ले जाया जाय। स्टेशनतक तो कोई बात नहीं, पर आप यकीन रखें कि मैं आपको बड़ी सहूलियतके साथ ले चलूँगा। कोई तकलीफ आपको नहीं होगी। बस, मैं एक बात चाहता हूँ कि कोई साहब रास्तेसे किसीको कोई चिट्ठी न डालें।"

लाइन-इन्सपेक्टरने अपनी कोठीसे सिगनल दिया और हम लोग ईदगाह स्टेशन लाये गये। इण्टर क्लासका डब्बा हमारे लिए पहले ही रिजर्व था। मजेसे बैठे। ऐसा मालूम होता था मानो एक नई दुनियामें

आ गये हैं। रास्तेमें सूबेदार जुम्मनखाँसे बातें हुईं। बड़े कौतूहलसे जुम्मन-खाँने पूछा—"सैशन अदालतमें क्या कोई आपसे तहकीकात करने गया था कि आप क्या नारे लगाते हैं?"

जब जुम्मनखाँको सब बातोंसे अवगत करा दिया, तब इन पंक्तियोंके लेखकने उनसे पूछा—"आखिर यह सवाल आपने क्यों किया? क्या इसमें कोई रहस्य है!"

जुम्मनखाँ—"कुछ न पूछिए पण्डितजी। आप लोगोंकी मदद खुदाने की है, वर्ना रामप्रसाद और जमनाप्रसाद तो अपनी करनीसे चूके नहीं।"

"यह तो ठीक है, पर आपका मतलब क्या है?"

जुम्मनखाँ—"बात असलमें यह है कि इन लोगोंने मुझे भी बहुत परेशान किया।"

"आपको कैसे परेशान किया?"

जुम्मनखाँ—"रामप्रसाद और जमनाप्रसादने यह कोशिश की कि आप लोगोंपर दफा ३८ और चलाई जाय, ताकि किसी-न-किसी तरह आप लोगोंको फँसाया जाय। यदि संगीन मामलोंमें न सही, तो दफा ३८ में ही कई वर्षोंकी सजा हो जाय। इन लोगोंने एक मुकदमा गढ़ना चाहा। मौकेके फर्जी गवाह भी तैयार कर लिये थे। बुलाकर मुझसे कहा गया कि मैं लिखकर रिपोर्ट कर दूँ कि आप लोग 'अंगरेजी सल्तनतका नाश हो' और 'फौजमें भर्ती होना पाप है'—नारे लगाते हैं। फिर किसी दिन रास्तेमें पेट्रोल-कारको रोककर आप लोगोंपर हमला किया जाय। कोई भी नारा आप लोग लगाएँ तो खूब पीटा जाय। किर्चें भी इस्तेमाल की जायँ, और गोली भी चलाना पड़े, तो कोई हर्ज नहीं; सब भुगत लिया जायगा। मैंने उससे कह दिया कि मेरे ऊपर खुदाका कहर है। अभी बीबी फौत हुई है। बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। मुलजिमान भले घरके आदमी हैं और बाल-बच्चेदार हैं। वे ये नारे नहीं लगाते। मुझसे यह गुनाह नहीं होगा। मुझसे यहाँतक कहा गया कि वुड साहबकी भी इसमें रज़ामन्दी है। मैंने कहा कि मुझे लिखकर यह हुक्म दे दिया जाय

कि मैं ऐसी रिपोर्ट कर दूँ, तो मैं ऐसी रिपोर्ट कर दूँगा और खुदाके सामने गुनहगार नहीं ठहराया जाऊँगा। पर बिना लिखे हुक्मके पाये, मैं ऐसा हर्गिज न करूँगा—चाहे मेरी नौकरी चली जांय। मेरे ऊपर रामप्रसाद और जमनाप्रसाद बहुत नाराज हुए। उन्होंने धमकी दी कि वे मुझे देख लेंगे। मेरे इस प्रकार मना करनेपर भी मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने तहकीकात तो करा ही ली। पर मेरी गवाहीके बिना वह मुकदमा कारगर न होता इसलिए वे चुप पड़ गये।"

जुम्मनखाँकी बात सुनकर इन पंक्तियोंका लेखक दंग रह गया। रास्ते-भर हम लोग बड़े आरामसे गये। फतेहगढ़ स्टेशनपर हम लोग सुबह उतरे। लगभग दो वर्षके बाद श्री पीताम्बर पन्त और इन पंक्तियों-का लेखक एक मील टहलते हुए शौचके लिए गये। हमारे साथ कोई पुलिसका आदमी नहीं था। पर हम मनुष्यत्व और नैतिक बन्धनमें बँधे हुए थे। कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और उसके प्रति जुम्मनखाँकी श्रद्धा हजार पुलिसवालोंसे ज्यादा प्रतिबन्धके रूपमें थी।

हम लोग पैदल ही फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेलतक गये। जेलवालोंको चालान देकर जब जुम्मनखाँ चलने लगे तब हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा, "माफ कीजियेगा पण्डितजी, अगर हम लोगोंकी ओरसे आप लोगों-को कोई तकलीफ हुई हो।"

इन पंक्तियोंके लेखकने जुम्मनखाँके दोनों बच्चोंके लिए प्यार भेजा। पता नहीं जुम्मनखाँकी तैनाती आजकल कहाँ है। एक बार जुम्मनखाँको उनके दो बच्चों सहित चायके लिए बुलाना है। यू० पी० में कांग्रेस सर-कार है और तिकड़मी पुलिसवालोंकी जो धमा-चौकड़ी मची हुई है उसमें सूबेदार जुम्मनखाँ जैसे शरीफ आदमियोंकी शायद पूछ न हो। तबीयत करती है कि कभी जुम्मनखाँकी चर्चा यू० पी० के गृह-मंत्री श्री रफ़ी अहमद क़िदवई साहबसे की जाय।

ठुकाई-पिटाई और अपमान

सन् १९४२ में सरकारी कर्मचारियोंने जो जुल्म ढाए, जो अमानुषिक अत्याचार किये और लोगोंने देश-हितकी खातिर उन्हें सहन किया, उसका वास्तविक चित्र लोगोंके सामने अभीतक नहीं रखा गया। ऐतिहासिक दृष्टिसे भी सन् १९४२ के आन्दोलनपर अभी कोई प्रामाणिक पुस्तक नहीं निकली। एक महाशयने कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा जुटाकर भानमतीका कुनबा जोड़ा है। उन महाशयका न तो आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध था और न लिखनेमें ही उन्होंने परिश्रम किया। हाँ, बिहारके श्री बलदेवनारायणने बिहार-सम्बन्धी घटनाओंपर एक सुन्दर पुस्तक जरूर लिखी है। लोग अपने कामोंमें लगे हैं। अवकाशकी कमी है। स्वयं हमें सन् १९४२ की क्रान्तिपर पुस्तक लिखनेका समय नहीं मिल रहा, इसीलिए हमने अपने संस्मरणोंकी यह लेखमाला प्रारम्भ की है।

ठुकाई-पिटाई और अपमानकी इतनी घटनाएँ हैं कि उन्हें लेखबद्ध करनेमें पोथेके पोथे तैयार हो जायँगे। हमें दुःख एक बातका है। कुछ लोग अपनी शान जतानेके लिए ही मार-पीटके मामलोंको बढ़ाकर लिखते हैं। वर्णनमें अतिरंजन एक भयंकर दोष है। नैतिक दृष्टिसे वह साहित्यिक व्यभिचार है और पतनोन्मुखी है। आज हम जो अपनी ठुकाई-पिटाईकी बात लिख रहे हैं, वह किसी शान या दिखावेके लिए नहीं और न किसी प्रकारकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी इच्छासे ही। ओखलीमें सिर देकर मूसलोंके प्रहारसे क्या डर? रणक्षेत्रमें जाकर मौत या चोटसे डरना कायरता है और उसके बदलेमें कुछ चाहना तो पथभ्रष्ट होना है। यातनाएँ और कष्ट तो स्वयं पुरस्कार हैं। उनका बदला हो ही क्या सकता है? और कष्ट और दुःख जिसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हों, उसे तो उनकी कोई शिकायत होनी ही नहीं चाहिए। स्वर्गीय गुरुदेवके शब्दोंमें—'दुःख

आमार घरेर जिनिस', तब फिर नैतिक दृष्टिसे अपने कष्टों और दुःखोंके बदले किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा अलंकृत और पुरस्कृत होना कोई वांछनीय बात नहीं है।

अपनी गिरफ्तारी आगरेमें ७ दिसम्बर १९४२ को हुई। ठुकाई-पिटाईके बारेमें लोगोंमें अफवाहोंका एक तूफान-सा खड़ा हो गया। अपने गाँवमें तो एक आतंकित व्यक्तिने यह खबरतक पहुँचा दी कि पुलिसने हमें इतना पीटा कि पिटाईसे मौत भी हो गई। पड़ोसके गाँवमें भी यह खबर फैल गई। थोड़ी-बहुत मातमपुरसी भी हुई। पर असल बात यह है कि अपनी ठुकाई-पिटाई जो हुई, वह बस गिरफ्तारीके समय हुई और इतनी कसकर हुई कि हथकड़ियों और डण्डोंकी चोटसे कन-पटियाँतक सूज गईं और बायाँ कान तो बिलकुल ही फूट गया। यह कौन कम सन्तोषकी बात है कि दाहिने कानके भीतर चोट होनेपर भी वह ठीक हो गया। मजाकके लिए यह कहनेको तो हो गया कि अब एक कानसे बात सुनकर दूसरे कानसे निकालनेका अवसर नहीं रहा। ठुकाई-पिटाईके लिए तो अपनेको तनिक भी अफसोस नहीं है। हमने दसों गोरोंको पीटा था। उस दिनसे पहले कोई हमें पीट नहीं सका था। खुद ही लोगोंको हमने पीटा था। उस दिन भी अगर कांग्रेसके अनुशासनका खयाल न होता और अगर हमने पुलिसवालोंको मारनेकी सोची होती, तो हमारे साथी इस बातको समझते हैं कि हमारे पास इतनी शक्ति और साधन उस समय थे कि हम उन धूर्त्त पुलिसवालोंकी लाशें बिछा देते। पर कांग्रेसकी प्रतिष्ठाकी बात थी। अपनेको जो बुरा लगा और अब भी लग रहा है, वह था पुलिसवालोंका दुर्व्यवहार। दुर्व्यवहारमें हम मार-पीटको नहीं गिनते। पीठ-पीछे हाथ बाँधकर खुफिया-विभागके डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० चक्रवर्त्ती, खुफियाके इन्सपेक्टर वीरेन्द्रसिंह और अन्य पुलिसवालोंने ठोकरों, हथकड़ियों और डण्डोंसे जो धुनाई की, उसका अपनेको तनिक भी अफसोस नहीं। हाँ, हमारे साथी श्री पीताम्बर पन्तको हमारी वह हालत देखकर बड़ा ही क्लेश हुआ। पर हमें जिन बातोंसे

क्लेश हुआ, वे थीं पुलिसवालोंकी बेहद गन्दी गालियाँ। हमने अपने जीवनमें कभी किसीको गाली नहीं दी, और हमको जब दो-चार बार गालियाँ दी गईं, तब गजब ही हो गया। एक बार एक डिप्टी-कलेक्टरने अदालतमें गाली दे दी थी और हमने उस डिप्टी-कलेक्टर और पेशकारकी अदालतमें ही बेहद मरम्मत की। वर्तमान महाराज डुमराँवको हमने अपमानित होनेपर गोलीसे उड़ा दिया होता। पर उन्होंने गालियाँ नहीं दी थीं। यदि वे गालियाँ देते, तो न मालूम कौन जीवित रहता, यह कहा नहीं जा सकता। अपनी पिटाईके बारेमें और लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। आखिरी वक्तमें तो पिटाईके कारण बेहोशी-सी आ गई थी; क्योंकि बम्बईकी बीमारीकी कमजोरी बहुत काफी थी। यदि कमजोरी न होती, तो पुलिस पकड़ न पाती। कोतवालीमें अपनी पिटाई नहीं हुई। वहाँ तो ५५ मिनटतक वे सवाल ही करते रहे। जवाब देनेमें मेरी ओरसे काफी उग्रता थी। ठुकाई-पिटाईसे डरके स्थानमें साहस और बढ़ गया था। अनुमान यह था कि कोतवालीमें भी पिटाई होगी; पर कोतवालीमें अपनी पिटाई नहीं हुई। कोतवालीमें तो अपने साथी सर्वश्री रामानन्द आचार्य, गोपीनाथ शर्मा और मोहनलाल शर्माकी पिटाई हुई।

पाठकोंको एक बात बतानेमें हमें कोई संकोच नहीं। पुलिसने अपने साथ जो दुर्व्यवहार किया और मेरे बड़े लड़के रमेशके साथ जो अमानुषिक अत्याचार किए, उनके कारण दिलमें एक ऐसी चोट लगी है कि अपने विचार कुछ ऐसे हो गए, जिनकी वजहसे अपनी सरकारमें भी तबतक काम करनेकी इच्छा नहीं रही, जबतक कर्मचारियोंके ऊपर अपना पूरा अधिकार न हो। दार्शनिक दृष्टिसे अपमानका प्रभाव टाइफाइड ज्वरके समान होता है। बिना उसकी अनुभूतिके ऐसा प्रतीत होता है, मानसिक विकास ठीक मार्गपर हो नहीं सकता। इसलिए उस अपमानको भी हम अपने नैतिक और मानसिक विकासके लिए परमात्माकी एक देन समझते हैं और कानूनी दृष्टिसे अपना यह खयाल अब भी है कि कुछ कर्मचारियोंपर अपनी ओरसे मुकदमा दायर करें। अब हम पाठकोंके लिए

अपने लड़के रमेशपर बीती घटनाओंका वर्णन उसीके शब्दोंमें नीचे देते हैं। स्मरण रहे, रमेशपर किए गए अमानुषिक अत्याचारोंके विषयमें पूज्य बापूजीने हमें आज्ञा दी थी कि उन बातोंको हम समाचारपत्रोंमें अवश्य दें। इसीलिए हमने 'प्रताप', 'योगी' और 'सैनिकों'में उसीका लिखा वह लेख दिया था। दिल्लीके 'अर्जुन'ने उसको उद्धृत किया था। लेखमें वर्णित बातें न केवल अक्षरशः सही हैं, वरन् जो कुछ भी बातें हुईं, उनको हमने घटाकर उनकी उग्रता कम कर दी। सन् १९४२ में रमेशकी उमर १५ वर्षकी थी। अब रमेशपर बीती बातोंको उसीके शब्दोंमें पढ़िए—

गत २६ जुलाई, १९४३ को सवेरे करीब ९ बजे आगरा जिलेके खुफिया-विभागका शिवशरन नामक एक व्यक्ति आया और मुझसे कहा कि डिप्टी साहब (खुफियाके डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० चक्रवर्ती) ने बुलाया है। कुछ काम है। अभी दो घण्टेमें लौट आना। खाना खातेसे उठकर मैं उसके साथ हो लिया। बालूगंज (आगरेका एक मुहल्ला) में प्रायः दो घण्टेके बाद चक्रवर्ती आया और मुझसे कहा—"तुम्हारे पास जो रिवाल्वर हैं, वे मुझे दे दो। भूदेव और सूरजभान वगैरहके बयानोंसे और हमारी खबरोंसे यह साबित होता है कि तुम्हारे पास दो रिवाल्वर हैं। हमें यह भी बता दो कि आगामी ९ अगस्तको तुम क्या करनेवाले हो? हमें सब प्रोग्राम बता दो; मय नामोंके। वैसे तो हमें मालूम है, किन्तु बिना तुम्हारे बताए तुम्हारा छुटकारा नहीं है।" मैंने जब इन बातोंसे अनभिज्ञता दिखाई, तो क्रोधसे वह उबल पड़ा—"मैं तुम्हारा चालान उस मनहूस मुकदमेमें करूँगा, जिसमें तुम्हारे बापको फाँसी होनेवाली है।"

शामको वहाँसे मुझे कोतवाली ले आया गया। वहाँसे भूदेव पालीवालसे बातें करवाईं। उसने बाबूजी (मेरे पिताजी) की राइफल और बन्दूक इत्यादिके बारेमें पूछा। वहाँसे मुझे लोहामण्डी-थाने और फिर घर ले गए। मेरा घर बल्का बस्तीमें है, जो लोहामण्डी-थानेके हलकेमें है। मेरे घरकी तलाशी शामसे लेकर रातके डेढ़ बजेतक होती रही और उसमें

भूदेव पालीवालने मेरी माँको काफी परेशान कराया। मुझे रातको दो बजे कोतवालीकी हवालातमें बन्द कर दिया गया।

आरम्भके छः दिनोंमें तो मुझे जो मैंने खानेको माँगा, वही दे दिया गया। बीचमें भूदेव, चक्रवर्ती, रामप्रसाद, वीरेन्द्रसिंह आदि मुझे बयान देनेको समझाते रहे। पर जब मैंने कोई बयान देनेसे इनकार कर दिया, तब रामप्रसादने कहा—"बेटा, मैंने तेरे बापसे ४९ पन्नेका बयान ले लिया है। तू क्या चीज है।" मैं यह जानता था कि यह बात झूठ है और मुझे बहकानेके लिए कही गई है, इसलिए मैं और सावधान हो गया। उसी दिनसे मुझे हवालाती खुराक अर्थात् तीन आने रोजका खाना मिलने लगा। खानेमें शुरूमें पाँच पैसेका पौन पराठा प्रातः और सायं मिलता था। बादमें सुबह और शाम चार पैसेके चने और दो पैसेका गुड़ मिलने लगा। सितम्बरके आरम्भ अथवा अगस्तके अन्तमें जब सरकारने हवालाती खुराक पाँच आने रोज कर दी थी, तब छः पैसेके चने और चार पैसेका गुड़ मिलने लगा। यह सामान भी दोपहर १२॥ से १॥ बजेके बीच और रातको कभी ८ बजे और कभी १२ या १ बजे मिलता था। एक बार तो २ बजेके कुछ बाद भी मिला था। बहुधा वे मुझे पीटने तथा सवाल करनेके लिए कमरेमें ले जाया करते थे। इस कारण भी खानेमें देर हो जाती थी। कमसे कम आठ या दस बार तो शामके चने अगले दिन दोपहरको मिले। सितम्बरके बीच और अन्तमें तो ज्वरके कारण मुझसे खाया भी नहीं जाता था। चना और गुड़ एक कोनेमें पड़े रहते थे। पीनेके लिए एक अधफूटी सुराही हवालातके बाहर रखी थी, जिसमें पीने और पाखाने जानेको पानी रहता था। भीतर ही पाखाना जाता था तथा फिर भीतर ही हाथ धोनेको पानी दिया जाता था। ५९ दिनोंमें केवल दो या तीन बार ही मेहतरने हवालात साफ की थी और सो भी तब, जब शराबियोंके वमन, पेशाब और मलके कारण करीबके कमरेमें दीवानजीका बैठना मुश्किल हो गया था। कभी-कभी तो पेशेवर बदमाशोंकी संख्या हवालातमें मेरे साथ

१९-२० तक हो जाती थी।

स्नान तो उन्होंने मुझे करीब सितम्बरके आरम्भमें—प्रथम सप्ताहके अन्त अथवा द्वितीय सप्ताहके आरम्भमें—कराया था। सो भी तब, जब मैंने खाना खानेसे—जो कुछ मिलता था—मना कर दिया और आमरण अनशनकी ठानी थी। भूख-हड़ताल चार दिन चली। पाँचवें दिन उन्होंने मुझे स्नानके लिए पानी दिया और निकर तथा एक तौलिया, जो मेरे जमा थे, दिये। कपड़ोंमें मेरे पास केवल एक जाँघिया रह गया था। ऐसा मालूम होता था, मानो वह जुओंका बना हुआ हो। अन्य कपड़े मैंने जुओंके मारे पाखानेमें फेंक दिये थे। नंगे बदन रहता था। यदि नींद आती थी; तो मूँजके फट्टेपर सो रहता था।

आगरा-कोतवालीके नीचेसे नाली जाती है। अतः उसमें सदा सील रहती है। एक बार मेह बरसनेके पहले काफी उमस थी और लाल चीटियों तथा वेमतोंने घर बदलना आरम्भ कर दिया था। उनमें स्पेनिश फ्लाईज भी थीं, जिनके काटनेसे जो फफोले पड़े वे छोटी जेलतक मेरे साथ गये! एक दिन मैंने खुफियाके इन्सपेक्टर रामप्रसादको फफोले दिखाये। उसने लाल मिरचोंका मिला मसाला उनपर डाल दिया। दर्द और टीससे मैं तड़पता रहा। मेरा बैठना और खड़े होनातक उस हवालातमें असम्भव हो गया था। नीचेसे वे भयंकर कीड़े हजारोंकी संख्यामें निकल पड़े थे। कीड़े खड़े होते ही पैरोंपर चढ़ते और काटते थे। ऊपरसे साठ कैंडिल पावरके बल्बसे कीड़े गिरते थे। मैं तो सुबहतक बराबर टहलता ही रहता था। करीब साढ़े तीन बजे उपद्रव कम होता था और उस समय मुझे ऐसा लगता था, मानो मैंने हजारों बैठकें की हों।

एक दिन मैंने उस सिपाहीसे जो ड्यूटीपर था, बत्ती बुझानेको कहा। उसने अपनी जिम्मेदारीपर ९॥ बजे बत्ती बुझा दी, यह कहते हुए—"आखिर हम भी आदमी हैं। दीवानजी स्वयं देखकर बत्ती बुझानेपर एतराज न करेंगे।" पर लगभग १० बजे बत्ती एकाएक जल उठी। पूछनेपर मालूम हुआ भूदेव साहब (भूदेव पालीवालको कोतवालीमें साहब

कहकर ही पुकारा जाता था) सिनेमासे लौटे थे। उन्होंने सिपाहीसे पूछा—"मुलजिम कहाँ है? बत्ती क्यों बन्द है?" सिपाहीके कारण बतानेपर भूदेव साहबने कहा—"यह हवालात है, घर नहीं। बत्ती जला दो।" और दीवानजीको हिदायत करवा दी कि बत्ती न बुझाई जाय। उन दिनों कोतवालीमें भूदेव पालीवालका बोलबाला था। वह अपने पिता जीवाराम पालीवालकी इज्जतपर बट्टा लगा रहा था।

ठोकने-पीटने और अन्य अत्याचार करने तथा मेरी भूख-हड़ताल और शारीरिक कमजोरीसे कोई सम्बन्ध न था। भूख-हड़तालके दिनोंमें और कमजोरीके दिनों मेरे ऊपर जो मार पड़ी, कोड़ों और बूटोंकी ठोकरोंसे जो मेरी गत बनाई गई, उसे मैं झेल न सका और वे चोटें अब भी बुखार आनेपर उभर आती हैं।

एक दिन रामप्रसादने अपने ड्राइंग-रूममें मुझे बुलाया। वहाँ चक्रवर्ती भी था। मुझे आई० ए० एफ० में कमीशनपर भेजनेको कहा गया, अगर मैं उनका कहा मान लूँ। मेरे मना करनेपर धमकाया भी मुझे काफी। एक चोरको, जो अमेरिकन डिपोके मामलेमें पकड़कर लाया गया था, मेरे सामने पीटा गया और मुझसे कहा गया कि दो दिनका वक्त दिया जाता है। सोच लो, वर्ना इससे भी बुरी हालत कर दी जायगी।

दो दिनके अल्टीमेटमकी ठीक समाप्तिपर मुझे फिर बुलाया गया। मैं कमरेमें पैर भी नहीं रखने पाया था कि चक्रवर्तीने एक बड़े जोरका चाँटा मेरे मारा। दीवारसे टकराकर मैं कुरसीके सहारे खड़ा हो गया। गन्दी गालियाँ देता हुआ चक्रवर्ती फिर मेरी ओर बढ़ा कि बीचमें राम-प्रसादने आकर कहा—"डिप्टी साहब, खफा मत होइए। अभी बच्चा है, मैं समझा दूँगा। बापको तो फाँसी होगी ही। इसे तो मैं राजी कर लूँगा और बादमें आप छोड़ दीजिएगा।" चक्रवर्ती बड़ा गरम था। रामप्रसाद मुझे समझाने लगा और फिर हवालातमें भेज दिया। दो घण्टे बाद फिर बुलाया। इस बार मारा नहीं, केवल समझाया ही था। भूदेव पालीवाल वहाँ मौजूद था। उसकी ओर संकेत करते हुए चक्रवर्तीने मुझसे कहा—

"तुम भूदेवके बूटोंकी धूलके बराबर भी नहीं। उसके बराबर सच्चा लड़का ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलेगा।" बस, उसी दिनसे नियमित रूपसे मेरी मार-पीट आरम्भ हो गई। शुरूके पाँच या छः दिन तथा आखिरके चार-पाँच दिन मार-पीट नहीं हुई। बाकी दिनोंमें मैं लगातार पीटा गया—एक-एक दिनमें कई बार।

नीचे लिखी खास-खास यातनाएँ हैं, जो मुझे दी गईं। इनमें हवालातमें मिलनेवाली यातनाएँ शामिल नहीं हैं।

१. लात, घूँसे, थप्पड़ और चाँटोंकी मार तो इतनी और ऐसी पड़ी कि हवालातके अन्तिम दिनोंमें इनका मेरी आत्मापर कोई असर नहीं था, वैसे शरीरपर चोट तो लगती ही थी।

२. एक बार जब मैं भूख-हड़ताल कर रहा था, कुरसीके एक टूटे पायेसे मेरी मरम्मत की गई। यह ऐसी पिटाई थी, जिसमें मैं तीन बार बेहोश हुआ था—डेढ़ घण्टेमें। मैं बाईं करवट गिर पड़ा था और बेहोश हो गया था। होश आनेपर उन्होंने मेरे दायें तरफके जोड़ोंकी खबर ली। जबड़ा, कलाई, टखना, कोल्हूके जोड़ अबतक खराब हैं। डिस्ट्रिक्ट जेलमें मैंने दवा-दारूकी कोशिश की थी; पर कोई सुनवाई नहीं हुई।

३. ऊपर हाथ करके खड़ा कर देते थे और नीचे करनेपर बूटोंकी ठोकरें मारते थे। शुरूमें तो मैं हाथ ऊपर तबतक किये रहता था, जबतक कि वे सुन्न न हो जाते थे। पर अन्तमें मैंने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया। जानता था पिटना है ही, फिर और एक कसरत क्यों की जाय।

४. एक बार चक्रवर्तीने मेरी कनपटी, पीठ और पिंडलीमें भी बूटकी ठोकरें मारी थीं। उसकी चोटकी सूजन तो कम थी; किन्तु क्रोध, लज्जा और क्षोभ अधिक था।

५. पूज्य पण्डित जवाहरलालजी, बापूजी, मौलाना आजाद और कांग्रेसके अन्य नेताओंको गन्दी गालियाँ देते थे। मेरे पिताजीको तो उन्होंने इतनी और ऐसी गालियाँ दीं, जो मैंने कभी सुनी भी नहीं। गालियाँ हमारे घरमें कोई भी नहीं देता और न किसीको भी वे सह्य हैं।

एक बार बाबूजीने अदालतमें एक डिप्टी-कलक्टरको इसलिए पीटा था कि उसने गालियाँ दी थीं, यह बात मुझे मालूम थी।

६. दो बार उन्होंने मेरी अँगुलियोंपर कुरसीके पाये रखे। ऊपरसे एक घुँघराले बालोंवाले सिविल गार्डको बैठा दिया जाता था। कुचली हुई अँगुलियाँ लिये मैं छोटी जेल ले जाया गया था। वे नीली पड़ गई थीं।

७. एक बार मुझे रातके १२ बजे सोतेसे गाली देकर उठाया और ले गये। ५९ दिनोंमें मैंने सूर्यके दर्शन तो किये ही न थे। उन्होंने मेरा तमाशा बना रखा था। खाना खा रहे हैं। मुझे बुला लिया। चने-गुड़ खानेवालोंको पकवानोंका लोभ देते थे। हाँ, तो उठाकर ले गये और उस दिन उन्होंने मुझे सबसे अधिक मारा था। उस दिन मुझपर कोड़ोंकी मार पड़ी। कुछ घोड़ोंकी रासके समान ऐंठा हुआ रस्सा था। उससे उन्होंने मुझे एकदम नंगा करके मारा था। मैं एक जाँघिया पहने हुए था। उसे भी उतरवा दिया। कोड़े पड़ रहे थे कि कोतवाल आगाके यहाँसे बुलावा आ गया। कोतवाल मि० आगाका मेरे प्रति मनुष्यताका व्यवहार था, यद्यपि उनके हाथमें कुछ था नहीं। मैं खुफिया-विभागका मुलज़िम था।

८. एक बार मेरे पैरों और हाथोंको इतना कसकर बाँध दिया कि वे नीले पड़ गये। मैं अधिक सह न सका और अचेत हो गया।

अन्तमें जब उन्होंने अपना सारा प्रयत्न बेकार-सा पाया और यह देखा कि मैं उनके चने-गुड़ भी नहीं खा पाता, रोज मारके समय बेहोश हो जाता हूँ तथा मेरी खकारसे खून आने लगा है, तब उन्होंने पीटना बन्द कर दिया। शायद मेरी माँजीके अथक परिश्रमसे भी। अदालतमें उन्होंने बड़ी दौड़-धूप की थी और वे चौकन्ने हुए थे। माँजीने कई जगह तार भी दिये थे। १९ या २० सितम्बरसे मुझे तेज बुखार आने लगा और २१ की रातको हालत खराब हो गई। पानी पीनेको घिसट-घिसटकर हवालातके जँगलेके पास जाता था। जँगलेके पास बैठने नहीं दिया जाता

था और खाना तो खाता ही नहीं था।

२२ सितम्बरको भूदेवने कहा—"अब भी बयान दे दो, वरना अभी तीन मास और रखेंगे। तेरी माँ रगड़-रगड़कर मर जायगी।" मैंने भी समझ लिया था कि तीन मास और रहकर तो जी नहीं सकता। एक मास और जीवित रहनेकी आशा न थी। फिर क्यों अपना, अपने खानदान तथा अपने पिताका नाम बदनाम करूँ। भूदेवसे कह दिया—"अपने माता-पिताको बदनाम करनेकी अपेक्षा मैं मरना पसन्द करूँगा। अपने देशपर भी मैं कलंक न लगाऊँगा। सब तेरे-जैसे ही नहीं होते। तू तो ईदका बकरा है, जो पाला जा रहा है।" "तो ठोकरें खाते-खाते कुत्तेकी मौत मर"—कहता हुआ भूदेव चला गया। उसके बाद मुझे कोई भी नहीं मिला। २३ सितम्बरको मुझे छोटी जेल पहुँचा दिया—अपने किसी भी कामका न समझकर।

२३ सितम्बरको मुझे काफी बुखार था। डाक्टरने देखा और अस्पतालमें भरती करना चाहा; किन्तु जेलरका खास हुक्म आया कि भरती न किया जाय, वरना सबूत हो जायगा कि मैं कोतवालीकी हवालातसे बीमार होकर आया था। दो दिन बैरकमें पड़ा-पड़ा कराहा किया। न दवा थी, न खाना। पाँच रोटी जेलकी मिलीं, जो बुखारमें खाई ही नहीं जा सकती थीं। २५ या २६ सितम्बरको अस्पतालमें भरती किया गया। अस्पतालमें ही मेरी पहली मिलाई अपनी माँ तथा बहनोंसे ५९ दिनों बाद हुई थी। जीजीसे तो मैं छः मास बाद मिला था। मेरी गिरफ्तारीके बाद छूटकर आई थीं। ज्वर १०६ प्वाइण्ट २ डिगरी था। कम्बलोंमें डाल मरे जानवरोंकी तरह लटकाकर अस्पतालमें पहुँचाया था, जहाँ सिवाय कुनैनके कोई भी दवा न थी। कह नहीं सकता था कि अब फिर उस परिस्थितिमें मैं क्या करूँगा। मुझे उस समय केवल एक-दो बातोंका बल था।

जब मैं गिरफ्तार होकर चला, तब माँजीके पैर छूनेको बढ़ा, तो मुझे आशीर्वादकी जगह एक मंत्र उन्होंने आज्ञा देकर कहा था—

"गिरफ्तारीकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। तेरे बाबूजीको भी न होगी। बस, मेरा मुँह काला न होने देना। मेरे दूधकी इज्जत रखना। भूदेवकी खबरोंसे बड़ी चिन्ता है।"

इन्हीं चार वाक्योंकी बदौलत मैंने हवालात, मार-पीट और सब यन्त्रणाएँ सहीं। मेरी माँने एक ऐसी स्त्री होकर जिसका एक पुत्र अभी मरा हो, पति जेलमें हो और जिसे फाँसीकी सजा करानेका पुलिस दम भरती हो और दूसरा पुत्र भी जा रहा हो, मुझे ऐसा उपदेश दिया, तो क्या मैं फिर भी अपनी जननीका मुँह काला करूँगा, यह भावना मुझमें थी?

पाठक उपर्युक्त वर्णनसे समझ सकते हैं कि ठुकाई-पिटाई और अपमानकी रूप-रेखा क्या थी। जेलमें जब हमें खबर लगी कि रमेशको बुरी तरह पीटा जा रहा है झूठा बयान देनेके लिए और कुछ आदमियोंके नाम लेनेके लिए, तब दिल इस बातसे काँप जाता था कि लड़का कहीं कलंक न लगा दे। पर भगवान्‌की कृपासे उसने मान-मर्यादाकी रक्षा ही नहीं की, वरन् उसको बढ़ाया ही।

कताई

सन्, १९४२ के आन्दोलन और कताईसे क्या सम्बन्ध ? पर 'विशाल भारत' के पाठकों और अपने मित्रोंको यह बतानेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि अपनी गिरफ्तारीके बाद यदि जेलमें कताई न की होती, तो मानसिक सन्तुलन नहीं रहता और आवेशमें आकर किसीको बुरी तरह ठोक-पीट दिया जाता, या अपने साथ मुकदमेमें फँसे उस व्यक्तिको मार भी दिया जाता, जिसने देहरादूनके हमारे मित्र श्री ओमप्रकाशजीसे यह कहा था कि अपने बचावके खातिर वह भी एक मुखबिर हो जायगा। दुःख है कि उस चुनौतीका उत्तर हमने श्री मिश्रजीकी मार्फत यही भिजवा दिया था कि ऐसा होनेसे उस व्यक्तिके जानसे मारे जानेकी पूरी आशंका है। कताई न करनेसे एक खतरा पागल हो जानेका भी था। अपना ऐसा विश्वास है कि कताईके कोमल धागोंके सहारे परमात्माने वह सब-कुछ नहीं होने दिया। जिन आशंकाओंकी ओर इंगित किया गया है, वे जेलके वातावरणमें मुँह बाये सामने खड़ी रहती थीं; पर चर्खेकी बदौलत यह सब-कुछ नहीं हुआ। भगवान्‌की कृपा तो उसमें थी ही।

असलमें षड्यन्त्र-केसके साथियोंको एक सूत्रमें बाँधना मेढ़कोंको तौलनेके समान था। परेशानियों और मुसीबतोंसे घबरानेकी बात न थी; पर कुछ व्यक्तियोंका सवाल जरूर था, जो स्वार्थवश अथवा मूर्खतावश मनमानी करना चाहते थे। उन सब व्यक्तियोंकी चर्चा तो फिलहाल नहीं करनी; पर इतना लिखनेमें हमें तनिक भी संकोच नहीं कि हमको और अधिकांश मुकदमेवालोंको श्री गोविन्द सहायसे बड़ी तकलीफ पहुँची। हम उन सब बातोंको लिखना नहीं चाहते; पर आवश्यकता पड़नेपर मय सबूतके हम सब बातें लिख भी देंगे।

आगरा सेण्ट्रल जेलके 'बारहताले'में १९ नम्बर बैरकके पीछे इमली-

का जो पेड़ है, वही एक तरहसे अपनी ठाहर थी। रातको सोनेके समयके अतिरिक्त खेल-कूद और भोजनके समयके अलावा जो समय मिलता था, उसमेंसे अधिकांश कताईमें ही जाता था। इक्कड़ हिरन या इक्कड़ सुअर या कोई दूसरा इक्कड़ जंगली जानवर जिस तरह अपने थानपर रहता है, उसी तरह इमलीके आसपास ही कतुओंके हिसाबसे अपनी ठाहर थी। यों तो आगरा सेण्ट्रल जेलमें चर्खा-क्लास ही नियमसे चलता था। उस चर्खा-क्लासकी जान थे देहरादूनके दास बाबू और उनकी शिष्यमण्डली। अन्य कातनेवालोंमें हर बैरक और हर जिलेके व्यक्ति थे। १९ नम्बरसे लगाकर २६ नम्बरतककी बैरकें 'बारहताले'में थीं। पर जितने कातनेवाले १९ नम्बर बैरकमें थे, उतने किसी और बैरकमें नहीं थे। एक घण्टेतक तो नियमित रूपसे चर्खा-क्लास चलता। चर्खा-स्कूलके आचार्य एक प्रकारसे दास बाबू ही थे। चर्खेकी मरम्मत, धुनाई, तुनाई और अन्य आवश्यक बातोंके लिए दास बाबूके पास पुर्जे और सामानके अतिरिक्त रचनात्मक कार्यकर्ताकी एक सधी तबीयत थी, जिसके बल-बूते प्रत्येक नौसिखिया अपनी सुविधानुसार उससे लाभ उठा सकता था। दास बाबू २० नम्बर बैरकमें रहते थे। १९ नम्बर बैरकमें तो कताईके अनेक घड़ियाल रहते थे। सर्वश्री मिश्रीलाल गुप्त, प्रकाशनारायण शिरोमणि, गोपालनारायण शिरोमणि, बालमुकुन्द बल्ला, डा० देवीप्रसाद और दीनदयालु शास्त्री १९ नम्बरमें ही रहते थे। पं० दीनदयालु शास्त्री नियमित रूपसे जेलमें ही नहीं, जेलसे बाहर भी कातते हैं। अपने लोग जब जेलमें पहुँचे, यानी ९ दिसम्बर १९४२ को, तब शास्त्रीजीके पास तथा अन्य मित्रोंके पास दर्जनों गुण्डियाँ थीं। अपने पास तो चर्खा भी नहीं था। मार्च, १९४३ के आखीरमें बड़ी कठिनाईसे चर्खा मिल सका। चर्खे और पौनियोंकी प्राप्तिमें सेवाग्रामके मैनेजर श्री कृष्णचन्द्र अग्रवालने बड़ी सहायता और कृपा की। मुकदमेवालोंमेंसे वहाँ नियमित रूपसे कातनेवाले थे, सर्वश्री विजयशरण चौधरी, रामसरनसिंह, नेमीचन्द जैन, लेखकके बड़े भाई पं० बालाप्रसाद शर्मा और स्वयं लेखक। अप्रैल, १९४३ से जो कताई शुरू

की, तो उसमें प्रगति बढ़ी।

अपने लोगोंमें कुछ-एकका यह निर्णय था कि अदालतके सामने सब बात साफ-साफ कह दी जाय और यह बयान दे दिया जाय कि गुलाम देशको विद्रोह करनेका हक है देशकी आजादीके लिए—स्वार्थके लिए नहीं। आजादीके दुश्मनोंसे भिड़ जाना पाप नहीं, वरन् धर्म है। उसके दण्डस्वरूप फाँसीके तख्तेपर भी लटकना पड़े, तो कौन-सी बेजा बात है। जेलमें काफी अच्छे फौजदारीके वकील थे। पर षड्यन्त्र-केसको जो केवल कानूनी दृष्टिसे ही देखते थे, उनकी सद्भावनासे भी हमें तकलीफ होती थी। मुकदमेको केवल कानूनी संकीर्ण मापदण्डसे नापनेवाले व्यक्तियोंमें प्रमुख थे एटाके श्री बाबूराम वर्मा और आगरेके श्री जस्पतराय कपूर। उनके परामर्शके पीछे सद्भावना ही थी, स्वार्थ नहीं था; पर वे मुकदमेकी बातोंको अदालती और कानूनी दृष्टिकोणसे ही देखते थे। एक बात जो खटकती थी, वह यह थी कि वर्माजी कानूनी मामलोंमें अपने-आपको बहुत ही बढ़ा-चढ़ा समझते थे। उन्हें क्या मालूम कि हम अपने मुकदमेके कानूनी रूपको अति तुच्छ और हेय समझते थे। हमारे सामने तो सन् १९४२ के आन्दोलनका नैतिक और राजनीतिक रूप ही था। मुझे इस बातका पता था कि सन् १९४२ के अगस्त-प्रस्तावके सम्बन्धमें वर्माजीकी व्यक्तिगत राय क्या थी और कपूर साहब भी १९४२ के आन्दोलनके सम्बन्धमें क्या राय रखते थे। पर १६-१७ कठिन शनाख्तोंके संचालनमें वर्माजी और कपूर साहबने जिस तत्परता और स्नेहसे काम किया, वह तो चिरस्मरणीय है।

असलमें किसी उच्च राजनीतिक दृष्टिकोणकी आशा भी मुझे उपर्युक्त दोनों महानुभावोंसे नहीं थी। वैसे ही खुर्शेद लाल, झाँसीके श्री कुंजविहारीलाल शिवानीजी, देहरादूनके दास बाबू और सोमप्रकाश मिश्र वकील होनेपर भी अपने दृष्टिकोणके पोषक थे। कहीं चैन नहीं मिलता था, जहाँ सबसे अलग रहकर अपने मतका प्रतिपादन किया जाय। व्यक्तिगत रूपसे कुछ साथी तो ऐसे थे ही, जो यह चाहते थे कि अदालतके सामने कानूनी

दाँव-पेंच न बर्ते जायँ। सर्वश्री पीताम्बर पन्त, विजयशरण, गोपीनाथ शर्मा, वसन्तलाल झा और शायद रामसरनसिंह भी अदालतके सामने मेरे साथ यह कहनेको तैयार थे कि जो-कुछ हमने किया, उसपर हमें गर्व है और देशकी आजादीकी खातिर अवसर पाने और आवश्यकता पड़नेपर हम फिर वही कर सकते हैं। कान्फ्रेन्सें होती थीं। बहसमें बहुत कड़ी बातें भी कह दी जाती थीं। पर कोई किसीको सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाता था। मुकदमेवालोंमेंसे कई-एककी हुलिया तंग थी। अन्तमें मुझे इस बातसे झुकना पड़ा कि मेरा उन साथियोंके प्रति क्या कर्तव्य है, जो मरना नहीं चाहते। यदि ठीक ढंगसे मुकदमा नहीं किया गया, तो जो बचना चाहते हैं, वे भी फँस जायँगे। सबसे ज्यादा क्लेश तो इस बातसे हुआ कि तीन-चार व्यक्तियोंने यह उलाहना दिया—"आपको तो हर हालतमें फाँसी होगी ही, चाहे मुकदमा किसी तरह लड़ा जाय। पर ठीक ढंगसे मुकदमा लड़नेमें एक सूरत हो सकती है और वह यह कि जिन लोगोंको लम्बी-लम्बी सजाएँ होनेकी आशंका है, उनको थोड़ी सजाएँ होंगी या वे छूट भी जायँगे। पर यह कहाँकी शराफत है कि आप अपनी फाँसीकी सजाके साथ और लोगोंको भी लम्बी सजा दिला दें?" इस तर्कसे पहले क्रोध तो इतना आया कि दलील करनेवाले व्यक्तिके मुँहपर एक रहपट रसीद कर दिया जाय। कड़ा-सा उत्तर देकर मैं चला आया और इमलीके नीचे कताई शुरू कर दी। लोग कहते थे कि मुझे कताईका रोग लग गया है। जब देखो, तब चर्खा ही चलता दिखाई देता है। पर उन्हें क्या मालूम कि उत्तेजित मस्तिष्कके लिए कताईसे बढ़कर और कोई दवा नहीं। चर्खेकी गतिके साथ और पौनीसे धागा निकलनेकी ध्वनिके साथ गरम दिमागमें कुछ ठण्डे छींटे-से पड़ते थे। उचित तर्क और विश्लेषणकी धारा स्रवित होने लगती थी। एक-आध घण्टेकी कताईके बाद इसी नतीजेपर आना पड़ा कि जीवनमें कर्तव्य-भार, सहयोग-भार और कभी-कभी क्लेश-भार लेकर ही चलना पड़ता है। बात यह न थी कि मुझे कोई शहीद होनेकी लालसा थी। भगवान्‌की कृपासे शुरूसे ही कुछ ऐसा ही स्वभाव

रहा है कि उसूलके ऊपर मरनेमें अबतक कोई डर नहीं लगा है। लोगोंको क्या मालूम कि मेरे भी स्नेही बच्चे हैं—ऐसे बच्चे, जिन्होंने मुसीबतमें किसीके सामने हाथ नहीं पसारा है। लोगोंको क्या मालूम कि ऊपरी किलेबन्दीके भीतर मेरे पास भी एक ऐसा दिल है, जो दूसरेके दुःखसे दुखी होता है; पर उसूलके लिए वह अबतक वज्रके समान रहा है। कताईकी कृपासे दिमागको यह निर्णय करना पड़ा कि अपनी खातिर न सही, तो साथियोंकी खातिर उसूलकी रक्षा करते हुए हलाहल पीनेमें भी कोई हर्ज नहीं। कताईकी कृपासे ही ऐसा फैसला किया।

आगरा सेण्ट्रल जेलमें कभी-कभी इस बातकी बड़ी कोफ्त होती थी कि अकेलेमें आकर जब समझदार कहलानेवाले लोग भी यह कहते—"आपको तो फाँसी जरूर ही हो जायगी। क्या किया जाय? भगवान्‌की ऐसी ही इच्छा है। घरके लिए जो प्रोग्राम हो, उसपर अच्छी तरह विचार कर लीजिए और हमारे लिए सेवा बताइए।" ऐसी बातें सुनकर बड़ी ग्लानि होती थी। एक बार तो मैंने उन्हें यह उत्तर दे दिया—"आपको तो फाँसी नहीं होगी, आप क्यों परेशान हैं? मुझे जो करना होगा, मैं करूँगा।" असलमें इस प्रकारकी बातें अशिष्टतापूर्ण थीं। आखिर मैं भी तो हाड़-मांसका बना हूँ। मेरे भी बाल-बच्चे हैं। साथमें स्नेही मित्र थे। पुलिसकी घोषणा और अधिकारियोंके रवैयेसे यह सबको मालूम था कि फाँसी होगी। पर घरवालोंसे उसकी चर्चा करना कहाँतक ठीक था, यह विचारणीय था। कई मित्र तो कापियाँ लेकर आ घेरते थे कुछ लिखानेके लिए, ताकि उनके पास स्मृति-स्वरूप कुछ वाक्य बने रहें। ऐसे व्यक्तियोंमें श्री राधामोहन अग्रवाल प्रमुख थे। इन सब बातोंसे तबीयत झल्ला जाती थी। चर्खा चलाने और धागे निकालनेसे दिमागी घावपर मरहम लग जाती थी। कताईके धागे कवचका काम करते थे।

जब मेरा सूत ३५ हजार गजके करीब पहुँचा, तब पं० दीनदयाल शास्त्रीके पास ७५ हजार गज सूत था। मैंने दो-दो हजार गज रोज कातना शुरू किया और यह चर्चा चली कि कौन पहले लखपती बनता है। पं०

दीनदयालु शास्त्री नियमित रूपसे कातते थे; पर वे ज्यादा कताई न करते थे। फिर भी सर्वप्रथम लखपती बननेका चस्का उनको भी लगा। अनेक मित्रोंके चर्खे दिन-भर भर्राया करते। किसी-किसी दिन तो मैं तीन हजार गजतक कातता और बड़ी तेजीसे एक लाखकी ओर बढ़ा। पर शास्त्रीजी मुझसे दो-एक दिन पहले ही लखपती बन गये। दूसरे नम्बरपर मैं रहा। बादमें तो मैंने शास्त्रीजीको लाखों गज पीछे छोड़ दिया। १९ नम्बरकी बैरकमें इतने लखपती बन गये थे कि १९ नम्बर बैरकके कातनेवालोंकी कताईका मुकाबला शेष सात बैरकोंके नजरबन्द भाई मिलकर भी नहीं कर सकते थे।

आगरा सेण्ट्रल जेलमें कताईका क्रम बड़े नियमसे चलता था। पौनियोंकी कमी थी। स्वदेशी बीमा कम्पनीके श्री श्रीचन्द दौनेरियाने अपनी मिलकी पौनियोंको बिना मूल्य वितरण करनेका प्रयत्न किया। कई मित्रोंके परामर्शसे हम इस निष्कर्षपर आये कि चर्खा-क्लासमें मिलकी पूनियोंका व्यवहार न किया जाय। यह एक वैधानिक बात थी और खादीके उसूलसे मिलकी पूनियोंका प्रयोग करना गलत भी था। खादी-आन्दोलनमें मिलकी पूनियोंका प्रयोग करनेके मानी हैं मिलोंके व्यवसायको बढ़ाना, जो देशके लिए और आजादीको कायम रखनेके लिए घातक हैं। श्री श्रीचन्द दौनेरियासे यह बात कह दी गई। उस दिनके बादसे वे फिर कभी चर्खा-क्लासमें नहीं आये, और उन दो-चार मित्रोंने भी चर्खा-क्लासमें आना बन्द कर दिया, जो मिलकी बनी पूनियोंका प्रयोग करना उसूलन बुरा नहीं समझते थे।

वहाँ गांधी-सप्ताह और राष्ट्रीय सप्ताहके दिनोंमें कताई और जोरोंसे चलती थी। झाँसीके श्री सेठजी और गांधी-आश्रमके श्री मुक्तिनाथ उपाध्याय इस काममें बड़ा सहयोग देते थे। यहाँ अनेक व्यक्तियोंने कातना सीखा। यह ठीक है कि कुछ फसली कातनेवालों अर्थात् केवल जेलके दिनोंमें कातनेवालोंकी संख्या अधिक थी। फिर भी वहाँ नियमपूर्वक कातनेवालोंकी संख्या काफी थी। पौनियोंके मिलनेमें अन्य लोगोंको बड़ी

कठिनाई रहती। पर दास बाबू रजाइयों और गद्दोंके नामेको निकालकर और तुनकर कताई करनेवालोंकी जरूरतको पूरा करते।

यहाँ कताई करनेवालों, चर्खेकी पतली माल बनानेवालों, तकलेको सीधा करनेवालों और दम कड़ा बाँधनेवालोंको श्री कामताप्रसादसे काफी सहायता मिलती। दम कड़ा बाँधनेमें तो हममेंसे अनेक श्री कामताप्रसादके ऊपर ही अवलम्बित रहते। कुछ लोग कातकर दूसरोंसे अटिरवाते और गुण्डी बनवाते। जितनी गुण्डियाँ मैंने बनाई, उतनी किसी दूसरेने नहीं बनाई होंगी। इस बातको चर्खा-क्लासमें विशेषकर नये कातनेवालोंको समझाया जाता कि गतिचक्र, बड़े चक्र और मोढ़ियोंमें रखे तकलेके ओंगनेमें कंजूसी नहीं करनी चाहिए। कताई समाप्त करनेके बाद चर्खेकी सफाई अत्यन्त आवश्यक है और कताई शुरू करनेके पहले भी चर्खेको ओंग लेना चाहिए। बीच-बीचमें भी मोढ़िये और चक्रोंमें तेल देना चाहिए। ओंगनेके लिए आधा मिट्टीका तेल और आधा कड़वा तेल मिलाकर रखना चाहिए। चर्खेके लिए सबसे अच्छा और सबसे सस्ता ओंगका तेल यही है। मोढ़ियेपर जहाँ तकला रहता है, बँटकर सूत लगा देते हैं। इस तरहका बँटा हुआ सूत ज्यादा कातनेवालेके लिए विशेष लाभका नहीं, क्योंकि वह बहुत जल्दी कट जाता है। इसलिए मोढ़ियेपर जहाँ तकलेके लिए खाँट बने रहते हैं, चमड़ा लगा लेना चहिए, ताकि तकुआ चमड़ेपर चला करे। ये चमड़े भी एक-आध महीनेमें कट जाते हैं, इसलिए कसे हुए चमड़ेके छोटे-छोटे टुकड़े चर्खेमें रखने चाहिए।

एक दूसरी परेशानी तकलोंके बारेमें यह थी कि तकलोंकी गिरियाँ छोटी मालके घर्षणसे घिसकर कट जाती थीं। इसका उपाय एक मित्रने यह बताया कि तकलेसे थोड़े कच्चे धागेको तोड़कर उसमें गोंद लगाना चाहिए और उसको गिरींपर लपेट देना चाहिए। दूसरे तकलेसे उसे कड़ा करके सुखा लेना चाहिए। फलस्वरूप तकलेकी गिरीं नहीं घिसेगी; पर मेरे ऊपर इसका यह असर हुआ कि बिना गोंद लगी गिरींके मुझसे काता ही नहीं जाता। इस प्रकार तकुएकी गिरींकी रक्षा तो बहुत

हो गई; पर प्रत्येक तकलेकी जिन्दगी है। अगर गिरीं नहीं घिसेगी, तो तकला किसी और जगहसे घिसेगा। मेरे पास एक ऐसा तकला है, जिसपर मैंने जेलमें ६॥ लाख गज सूत काता। एक ओरसे यानी तकलेकी गिर्रीसे सिरेकी ओरको वह काफी घिस गया है; पर अब भी वह बहुत ही बढ़िया तकुआ है। पाठकों और कातनेवालोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ६५ नम्बर सूतके दो हजार गजतक मैंने उसपर चढ़ाये हैं। ५० नम्बर सूतकी दो गुण्डियाँ उतारना उसपर साधारण-सी बात थी। यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि तकुएको इतना भरनेकी प्रवृत्ति बुरी है; क्योंकि चर्खा भारी चलता है और सूतकी समतामें भी फर्क पड़ता है। आगरा सेण्ट्रल जेलमें यह बात बहुत कमको मालूम थी कि कताईके शास्त्रीय ढंगसे एक गुण्डी ६४० तारकी होनी चाहिए। वहाँपर लोग प्रायः १०० गजकी गुण्डी बनाते थे। वहाँ लोगोंको यह बात भी नहीं मालूम थी कि अमुक नम्बरके सूतसे ५ गज लम्बी ४५ इंच चौड़ी साड़ीके लिए कितनी गुण्डियाँ देना आवश्यक होगा। इन सब बातोंके होनेपर भी वहाँके अधिकांश नजरबन्द लोग एक कुटुम्बकी भाँति रहते थे सिवा कुछ व्यक्तियोंके, जिनकी बेहूदगियोंके कारण परेशानी हो जाया करती थी। मुझपर लोग फब्तियाँ कसते और परोक्षमें मुझे गांधीवादी भी कहते थे—विशेषकर कताईके कारण। पर उन्हें इस बातका आश्चर्य था कि ध्वंसात्मक कार्य और कताईका समन्वय कैसे हो रहा था? मेरे मित्रोंको इस बातका पता नहीं था कि कताईसे मुझे कितना चैन मिलता था और उसने मेरी कितनी रक्षा की। जितना ही अधिक मैंने काता, उतना ही अधिक मैं कताईका मूल तत्त्व समझनेमें सफल हुआ। यह मैं मानता हूँ कि कताई-शास्त्रका मेरा ज्ञान अपरिपक्व और अधूरा था; पर उसकी बुनियादी बातोंका रहस्य मेरी समझमें आ गया था—अन्धेको आँखें मिल गई थीं। नियम कताई-का मेरा यह था कि प्रतिदिन एक हजार गजसे कम न कते। मुकदमेकी पेशीमें चाहे जाना पड़े, चाहे बीमारी भुगतनी पड़े, औसत कताई प्रति-दिन एक हजार गजसे कम न हो। हुआ भी ऐसा ही। पहली अप्रैल

सन् १९४३ से लगाकर मार्च १९४४ के अन्ततक मैंने १२५० गज प्रतिदिनके हिसाबसे काता। किसी-किसी दिन तो मैं तीन-तीन गुण्डियाँ तैयार करता था, तो किसी दिन बीमारीकी वजहसे नागा हो जाता था। मुकदमेकी पेशीके दिन तो नागा होने ही नहीं दिया। लगातार एक-एक महीने ढाई-ढाई गुण्डियाँ रोजाना कातीं। पहली अप्रैल १९४४ से लगाकर मार्च १९४५ के आखिरतक ११५० गज प्रतिदिनके हिसाबसे काता और पहली अप्रैल १९४५ से ३० नवम्बर १९४५, यानी अपनी रिहाईके दिनतक ११०० गज प्रतिदिनके हिसाबसे काता। बस, गिरफ्तारीके बाद ३॥ महीनेतक चर्खेके अभावमें कताई नहीं हुई। बाकी दिनोंमें कताईका ठिकाना ही नहीं था। मुझे आजतक इस बातका पता ही नहीं चल पाया कि इतनी कताई जेलमें किसी औरने भी की या नहीं। अखिल भारतीय चर्खा-संघके वर्तमान प्रधान-मन्त्री श्री कृष्णदास गांधीसे मैंने जब यह बात पूछी, तो उन्होंने कहा कि श्री चाँदीवालाने शायद २५ सेर सूततक जेलमें काता था। पर श्री चाँदीवालाको मैं—कलमवाला और बन्दूकवाला—यह बताना चाहता हूँ कि मेरी कताई उनसे शायद ज्यादा ही हो। मेरी जेलकी कताईसे कितने कपड़े बने, उनका ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) एक थान १२ नम्बर का—१२ गज लम्बा ३२ इञ्च चौड़ा।

(२) चार थान १८ नम्बरका—तीन थान खादी १० × ४५″ और एक थान १२ × ३२″।

(३) दस साड़ियाँ २५ नम्बर ५ × ५०″।

(४) तीन साड़ियाँ (बिजली) २७ नम्बर ५ × ४५″।

(५) चार साड़ियाँ १८ नम्बर ५ × ४५″।

(६) दो साड़ियाँ ४० नम्बर ५ × ४५″।

(७) सात वाफ्ता साड़ियाँ ६५ नम्बर ५ × ४५″।

(८) चार धोतियाँ २५ नम्बर ४ × ५०″।

(९) चार धोतियाँ ४० नम्बर ४ × ५०″।

मीज़ान ५ थान, २६ साड़ियाँ और ८ मर्दानी धोतियाँ। इस प्रकार सब सूतकी तौल २६ सेरसे कुछ ऊपर बैठती है। वस्त्र-संकटके दिनोंमें जेलकी कताईसे कपड़ोंका जो काम चला, वह एक साधारण बात नहीं।

फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलमें हम लोगोंके जानेसे पहले कातनेवालोंको कोई अच्छा नहीं समझता था। फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलके फाटकके भीतर सात-आठ चर्खोंके साथ हम लोगोंका दल जैसे ही घुसा, वैसे ही वहाँके दलोंके दलालोंने भौंहें सिकोड़कर कहा कि हम लोगोंके साथ तो मशीनगनें हैं। भूत-प्रेतकी बाधासे बचनेके लिए जिस प्रकार लोग गंडा बाँध लेते हैं या तिलक-छाप लगाते हैं, उसी प्रकार फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलके नजरबन्दोंके दलोंकी ओरसे छोड़े हुए दलालोंके लिए एक चर्खा बिजूका ही नहीं, वरन् वास्तवमें एक ऐसी ढाल था, जिसके अस्तित्वसे ही किसी पार्टी-विशेषका प्रचार असफल रहता था। वहाँके कुछ लोग तो चर्खेको प्रतिक्रियावादियोंका प्रतीक समझते थे। अपनेको उन लोगोंकी बातपर हँसी आती थी। ५ नम्बर बैरकके पीछे मैदानमें हम लोगोंकी कताईका अड्डा जमता था और नियमित रूपसे हम लोग कातते थे। वहाँ हम कताईका प्रचार नहीं करते थे; पर बिना किसी प्रचारके ही कई नये कातनेवाले पैदा हो गये। रमेश-दत्त पालीवालपर तो देखने-मात्रसे ऐसा असर पड़ा कि उसने नियमित रूपसे कातना शुरू किया और जेलके बाहर भी रमेशदत्त पालीवाल और उसकी पत्नीकी कताई नियमित रूपसे चलती है। हमीरपुरके श्री रामगोपाल गुप्तने भी कातना शुरू किया।

कताईके इस आर्थिक रूपके अतिरिक्त उसके शास्त्रीय रूपपर भी प्रायः विचार होने लगा और यह बात बड़ी आसानीसे समझमें आ गई कि यदि भारतवर्षको अपनी आजादी कायम रखनी है और संसारको एक सन्देश देना है अग्रदूतकी भाँति, तो सर्वसाधारणके लिए कपड़ेकी मिलें खड़ी करना विघातक होगा। हम गुलामीकी तंग गलियोंसे निकलकर आजादीके उस प्रशस्त चौराहेपर खड़े हुए हैं, जहाँसे हम अपने इच्छा-नुसार साम्राज्यवादी मार्गकी ओर जा सकते हैं अथवा विश्व-कल्याणके

लिए वास्तविक स्वतन्त्रताका मार्ग पकड़ सकते हैं। आज हममें इतनी क्षमता है और इतनी सम्भावना है कि हम बर्मा, मलाया, स्याम, सुमात्रा और जावाके व्यापारको हथिया सकते हैं और पूँजीवादी प्रथाजन्य व्यापार द्वारा हम उन देशोंको गुलाम भी बना सकते हैं। हमारे यहाँ कोयला है, लोहा है और कपास भी है। बड़ी-बड़ी मिलें खड़ी करके हम अपने पड़ोसी देशोंका साम्राज्यवादी मनोवृत्तिसे गला घोंट सकते हैं। ऐसा करनेकी शक्ति तो हममें है, ठीक उसी तरह जिस तरह एक पौरुषपूर्ण पुरुषमें व्यभिचारकी शक्ति होती है। पर क्या व्यभिचार किसीका गुण है? वह तो कलंक और दोष है। इसी तरह यदि भारतवर्षने अंगरेजों या जापानियोंका मार्ग ग्रहण किया—अपने वस्त्र-व्यवसायमें तो, मजबूरन हमें साम्राज्यवादके मार्गपर जाना ही पड़ेगा, ऐसा होनेपर भारतकी आजादी विश्व-कल्याणके लिए गौरवकी वस्तु न होकर एक निन्दा और कलंकका कारण होगी और हमारी आजादीकी इतनी लम्बी लड़ाई फजूल ही रहेगी। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे वस्त्रसंकटको दूर करनेके लिए ही नहीं, वरन् अपनी स्वतन्त्रता तथा विश्वके अन्य देशोंकी आजादोके स्थायित्वके लिए हर घरमें कमसे कम एक तकुएकी मिल यानी चर्खा जरूर कायम किया जाय। बड़े दुःखकी बात यह है जब इस देशमें मिलें नहीं थीं, तब यहाँसे कपड़ा विदेशोंमें बिक्रीके लिए जाता था और आज जब कपड़ेकी मिलें कायम हैं, और की जा रही हैं, तब वस्त्र-संकट बढ़ रहा है! संसारकी और भारतवर्षकी वास्तविक आजादीकी रक्षाके लिए जबतक भारतमें हाथके कते सूतका प्रयोग न होगा, तबतक आजादीको कायम रखना बड़ा ही कठिन होगा। पर यह तो खादीका बाह्य रूप है, उसकी वास्तविक शक्तिके निरूपणके लिए काफी स्थान चाहिए और वह उस आजादीकी ओर ले जाती है, जो अपने ही लिए नहीं, वरन् दूसरोंके लिए भी शक्तिवर्द्धक होती है। इसके मानी यह नहीं कि हम बड़े-बड़े कल-कारखानोंके विरोधी हैं। अनेक उद्योगोंके लिए तो हम कल-कारखाने चाहते हैं; पर कपड़ा, तेल,

चीनी और अन्य दो-चार उद्योगोंके लिए बड़े कल-कारखाने खोलना हम आजादीके लिए बहुत घातक समझते हैं ।

कताई स्वावलम्बन और चरित्र-निर्माणके लिए भी एक बहुत अच्छा साधन है । चोरबाजारी और जीवनकी कई अनेक विषमताओंके लिए वह अमोघ औषध है । अपनी तो यह भी धारणा है कि बिना रचनात्मक कार्यके आर्थिक और सामाजिक आजादी प्राप्त ही नहीं हो सकती और खादी रचनात्मक कार्यक्रमका केन्द्र-बिन्दु है । आज इस बातसे हमें प्रसन्नता है कि हमारे घरके सब लोग—बच्चेतक—अपने ही हाथके कते सूतका कपड़ा पहनते हैं । यदि इसी प्रकार १५ करोड़ आदमी कपड़ेके लिए स्वावलम्बी हो जायँ, तो फिर कोई भी शक्ति हमारी आत्माको कलुषित नहीं कर सकती और न हमारी आजादीको छीन ही सकती है ।

रामकली

पुराणोंमें जहाँ नरकोंका वर्णन आता है, वहाँ कुम्भीपाक और रौरव नरकोंको बहुत बुरा कहा गया है। रौरव तो घोरतम नरक है और उससे कुछ घटकर कुम्भीपाक है। मनुष्य स्वर्ग और नरक अपने विचारों, व्यवहार और दूषित परिस्थितियोंसे अपने चारों ओर बना लेता है। विचारोंके ताने-बानेसे वह एक ऐसा जाल तैयार करता है कि उसके सान्निध्यसे ही अपरिचित और तटस्थ आदमियोंको तकलीफ होती है। उनका दम-सा घुटने लगता है और उनका जीवन दुखी और क्लेशपूर्ण हो जाता है।

यू० पी० का फतहगढ़ सेण्ट्रल जेल सन् १९४२ के नारकीय जेलोंमें-से था। पंजाबके जेलोंकी कड़ाईकी बात सुनी है; पर वहाँ अपेक्षाकृत खाने-पीनेकी कोई तकलीफ न थी। बरेली जेलके जोरो-सितम भी कम नहीं थे। जेलवालोंने वहाँपर देशके प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित व्यक्तिका अपमान किया। पर वहाँ राजनीतिक बन्दियोंमें सौहार्द था। विरोधियोंके मुकाबलेमें उनका संगठन था। भोजन-सामग्री और अन्य खानेकी व्यवस्था यहाँ अपेक्षाकृत अच्छी थी। लेकिन फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलके राजबन्दियोंकी दशाका चित्रण यदि किया जाय और वहाँकी बातें सीधे-सादे ढंगसे भी लिखी जायँ, तो उनपर कोई विश्वास नहीं करेगा। जो फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलमें सन् १९४२ के आन्दोलनके सिलसिलेमें नहीं रहा, वह वहाँकी स्थिति और वहाँके वतावरणका अनुमान नहीं लगा सकता। एक मूल कारण उस परिस्थितिका यह था कि भारतवर्षके जितने भी सच्चे और बनावटी दल हैं, उनका वहाँ प्रतिनिधित्व था। उदाहरणके लिए, एक दलके वहाँ एक ही महाशय थे—फोर्थ इण्टरनेशनलिस्ट और जब कोई समस्या सुलझानेके लिए वहाँ मीटिंग होती थी, तब अपने दलका प्रतिनिधित्व वे करते थे। जेलवालोंने इस पारस्परिक फूट और दलबन्दीका

लाभ उठाया। क्रान्तिकारियोंके कैम्पमें तबलेकी-सी दुलत्तियाँ चला करती थीं। इस वातावरणका मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि बहुत-से लोगोंने १०-१० और १५-१५ वर्ष जेलमें बिताये थे और वे अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे थे। एक दूसरी बात यह थी कि अपने दलकी संख्या बढ़ानेके लिए अधिकांश दलोंके लागू दलाल जुटे रहते थे। खाने-पीनेकी सुविधा, शब्दाडम्बर और नीचतम बुराईकी बातें करके नये और सीधे व्यक्तियोंको फुसलाकर दल-विशेषमें लाया जाता था। जिसकी संख्या अधिक होती, वही दल कैम्पकी शक्तिमें बलशाली मनवाया जाता। कुछ लोगोंने तो यह समझ लिया था कि जेलकी ऊधमबाजीसे ही वे देशकी शासन-बागडोर अपने हाथोंमें ले लेंगे। अखाड़े भी दलबन्दीके दलदलमें दब गये थे। मांस खानेका प्रचार, सिगरेट पीनेका प्रचार और अशिष्टता-अहेरीकी आराधना-सी होती थी। गांधीजी और नेहरूजीको एक दल तो तू-तड़ाकसे सम्बोधन करता था और फौश गालियाँ देता था। एक बार वहाँपर ईंटों, घूँसों और गालियोंके प्रहारसे समाजवादी दल और क्रांति-कारी समाजवादी दल (R. S. P.)में जो जंग हुई थी, उसकी चर्चा जहाँ गर्हित है, वहाँ बुनियादी समस्याओंको ठीक ढंगसे समझनेके लिए एक साधन भी है। पेशेवर डकैतोंको अपने दलमें भर्ती करनेकी सरगर्मी, कई क्रान्तिकारियों द्वारा तिकड़मसे चीजोंको मँगाकर बाकायदा दुकानदारी चलाना, कांग्रेसके विरुद्ध प्रचार और अन्य ऐसी ही लज्जास्पद बातोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

मेरा अपना जुदा मामला है ;
औरके लेन-देनसे क्या काम।

हाँ, फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलके एकाकीपन, नहूसत और दिमागी परे-शानीको दूर करनेके साधनों और अपने एक सफल प्रयोगपर कुछ लिखने-को तबीयत करती है और अगर वे साधन और प्रयोग न होते, तो फिर 'ग़ालिब'के स्वरमें स्वर मिलाकर यही कहना पड़ता—

हस्तीका ऐतबार भी ग़मने मिटा दिया;
किससे कहूँ कि दाग़े जिगरका निशान है।

पर तोतोंके पालने, बिल्लियों और उनके बच्चोंकी देखभाल, फूलोंकी तैयारीकी तल्लीनता और पुष्पमण्डित वाटिकाओंने अधिकांश राजबन्दियों-को शान्ति और स्फूर्ति दी और उन्हें समझाया कि जीवन-संघर्षमें भलों और बुरोंका साथ होता ही है। खलको श्वानकी भाँति छोड़ना पड़ता है और फिर—

गुलिस्ताने जहाँमें, फूल भी हैं और काँटे भी;
मगर जो गुलके जोया हैं, उन्हें क्या ख़ारका खटका।

चर्खेकी चर्चा और कताईके महत्त्वपर मैं लिख चुका हूँ। आज फतहगढ़ जेलकी एक ऐसी संगिनका जिक्र करना है, जिससे वात्सल्य और सद्भावनाका उद्रेक होता था और जो जेलकी दुनिया और बाहरकी दुनियामें संयोजक थी। अनेक राजबन्दियोंने तोते और मैना पाल रखे थे। पर कैदीकी हैसियतसे मुक्ताकाश-विहारी पक्षीको कैद करना मुझे पसन्द नहीं था। जिस बातकी हमें स्वयं शिकायत हो, उसी बातको हम करें—यह बात कुछ अच्छी नहीं थी। पर हृदयकी शून्यता आदमीके लिए विघातक है। अपने स्नेहको उँड़ेलनेके लिए कोई पात्र चाहिए। भावनाओंके प्रदर्शनके लिए कुछ साधन और साध्य होना आवश्यक है। इसीलिए राजबन्दी पक्षियोंको पालते थे। मेरी तबीयत चिड़ियोंके फँसानेकी कभी नहीं थी। उनसे निकटतम सम्बन्ध—अपनापन—स्थापित करनेकी अवश्य रही है। जेल-जीवनमें भी ऐसा किया। आगरा-जेलमें एक पण्डुकका जोड़ा पाला था—पिंजड़ेमें कैद नहीं किया गया था। फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलमें एक गलगल पाली थी और उसका नाम रखा था रामकली।

छोटी गलगल मैनाके वंशकी है और बड़ी मैनाकी अपेक्षा जल्दी हिल जाती है। स्टेशनों और खेतोंमें झुण्डके झुण्ड कीड़ों और उच्छिष्ट

भोजनके टुकड़ों या कणोंकी तलाशमें वे उड़-फिरकर घूमती हैं। फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलकी रसोईघरवाली बैरकके आसपास तो सर्वभक्षी कौओं और छोटी गलगलोंके झुण्डके झुण्ड आते थे। जिस स्थानपर राशन बँटता, वहाँपर तो गलगलें आतुर बनी कातर दृष्टिसे मँडराया करतीं। रोटीका टुकड़ा या राँधे चावल मिल जाते, तो उन्हें वे गपक लेतीं। मक्खनपर तो वे मुग्ध थीं। मक्खन कहीं जरा-सा भी मिलता, तो वे उसे बड़े स्वादसे सटकतीं। यदि कहीं मक्खनका परिमाण कुछ अधिक हुआ, जिसे कोई गलगल एकदम न निगल पाती, तो उसे हथियानेके लिए और गलगलें उसकी ओर बढ़तीं और दुष्ट कौआ अवसर पाते ही उधर झपट्टा मारता। कौएसे बचनेके लिए गलगलें बैरकमें उड़ जातीं, तो कौएसे अवश्य बच जातीं। कभी-कभी बैरकमें गलगलें बिल्लियोंका शिकार बनतीं। रसोई-घरोंके अतिरिक्त वे बैरकों और बैरकोंसे लगे खेलने या बैठनेके मैदानमें रोजीकी तलाशमें आतीं। बैरकोंमें खानेकी खोज होती। पालतू न्योलोंको देखकर वे कैं-कैं करके खतरेका सिगनल देतीं और रोशनदानों या जँगलों-पर बैठकर स्थितिका अवलोकन करतीं और आवश्यकतानुसार बैरकसे बाहर दूर उड़ जातीं। बैरकों और रसोईघरोंमें आनेका उनका समय नियत-सा था। विभिन्न ऋतुओंमें वे विभिन्न समयपर आतीं।

पाँच नम्बर बैरकके पीछेवाले मैदानमें अपना अड्डा रहता चर्खा कातने और बैठनेका। बैरकमें तो मैं रातको बन्द होनेपर और दिनमें थोड़ी देरके लिए जाता। कम्बल बिछाये बाहर ही डटा रहता—गर्मियोंकी दुपहरीको छोड़कर। खानेकी खोजमें वहाँ भी कभी-कभी गलगलें आतीं। सोचा, क्यों न उनको लपकाया जाय और हिलाया जाय। मक्खनपर तो वे जान देती थीं। मक्खनका डब्बा चर्खेके पास रख लिया और जैसे ही तीन-चार गलगलें कीड़े-मकोड़े या अन्य खानेकी चीजोंकी खोजमें निकलीं कि मैंने मक्खनकी एक गोली उनकी ओर फेंकी। बस, फिर क्या था। टोलीकी टोलीमें धमा-चौकड़ी-सी मच गई। एक गलगलने वह मक्खन धर पाया और फिर उससे छीननेके लिए उसकी साथिन

गलगलें पिल पड़ीं। मक्खन लेनेवाली गलगल—रामकली—उड़कर पासके आमके पेड़पर जा बैठी। फिर उसने मक्खन सटकनेका प्रयास किया; पर अन्य गलगलें उसके पीछे लगी थीं। शाखों और पत्तोंमें उड़कर उसने बचनेकी कोशिश की; पर उसकी पिछाई नहीं छोड़ी गई। अवसर पाते ही रामकली मक्खन सटक गई और फिर एकदम नीचे उड़ आई और चर्खेसे कोई दो गजकी दूरीपर आ बैठी और अपनी भाषामें कच-कच और खिच-खिच करने लगी, मानो कहती थी—देखता क्या है। तेरे द्वारपर मँगते खड़े हैं। भिक्षा दो। माँग-सी काढ़े और सिर झुका-झुकाकर वह माँग रही थी। उसकी साथिनें भी याचनाकी मुद्रामें खड़ी थीं। उनकी भावभंगी इस बातकी द्योतक थी कि उन्हें इस बातकी शिकायत थी कि मक्खन उन्हें क्यों नहीं दिया गया। रामकलीमें ही कौन-से सुरखाबके पर लगे हैं, जो उसे मक्खन दिया गया। उन्हें कौन समझाये कि मैंने तो यों ही मक्खनकी गोली फेंक दी थी। निकटतम बैठनेवाली गलगलने उसे उठा लिया और मैंने उसका नामकरण कर दिया। मक्खन औरोंको भी डाला गया। छीना-झपटीमें सबकी पैंतरेबाजी बड़ी भली मालूम होती थी। करीबके नीमपर बैठे कौओंने मक्खन-वितरण क्रियाको देखा, तो फौरन उस ओरको वे लपक आये। गलगलें जितनी सरल और सच्ची होती हैं, उतना कौआ तो होता नहीं। कौएकी धूर्तता प्रसिद्ध है। हंस और कौएकी कथाको सभी जानते हैं कि सोते हुए यात्रीके ऊपर हंसने अपने डैने फैलाकर ऊपर पेड़से छाया करके यात्रीको आराम पहुँचानेकी चेष्टा की और कौएने यात्रीके मुँहमें बीट कर दी। यात्रीने जागकर देखा कि हंस ठीक उसके मुँहपर पंख फैलाये बैठा है। यात्रीने आवेशमें आकर तीरसे हंसको मार दिया। फतहगढ़ जेलमें एक बार एक राजबन्दी दोनों हाथोंमें रखे चायके गिलास लिये जाते थे कि एक कौआ उड़ता आया और उड़तेमें ही गिलासोंमें बीट कर दी। कौएके स्वभाव और उसकी चालाकीसे मैं परिचित हूँ। इसलिए कौओंको भगानेके लिए कंकड़ियाँ इकट्ठी करके रख लीं। जब कभी वे गलगलोंकी ओर बढ़ते,

में ताककर उनपर कंकड़ियाँ मारता। फलस्वरूप गलगलें समझ गईं कि उनकी माँगपर मक्खन मिलता है और कौओंकी धृष्टता और इच्छाके लिए पत्थर बरसाये जाते हैं उनपर। चार-पाँच मिनटोंके सत्संगसे हम एक-दूसरेको समझ गये। पाठक कह सकते हैं कि 'खग समझे खगहीकी भाषा'; पर तुलसीदासके ही शब्दोंमें मैं कहता हूँ कि 'हित अनहित पशु पक्षिहु जाना।' सौजन्य और स्नेहकी सीमा नहीं है। पागल, स्वभावसे क्रूर और पिशाचोंकी बात दूसरी है।

उस दिनके बादसे रामकली अपनी सहेलियों और कुटुम्बके साथ प्रतिदिन आती। मेरे मक्खनकी हिस्सेदार वह अकेली ही नहीं बनी थी, वरन् उसके साथी-संगी भी हिस्सेदार बन गये थे। मक्खन खिलानेमें मैं बड़ी आत्मीयता अनुभव करता। एक ऐसा प्राणी तो था जेलमें, जो स्नेह और सहानुभूतिका सन्देश लेकर विहार करता हुआ जेलसे बाहरकी दुनिया-को ले जाता था। गलगलकी भाषा तो मैं नहीं समझता था; पर उसकी बोलीसे—उनके भिन्न-भिन्न स्वरोंसे—उनके उल्लास, आतंक और चिन्ताको तो मैं समझता था। दिलकी भाषा स्वरोंमें नहीं बाँधी जाती। वेदना और क्लेशके रेकार्ड नहीं भरे जाते। हमारा पारस्परिक स्नेह और आत्मीयता बढ़ी और रामकली कुछ ही दिनोंमें यह समझने लगी कि उसका मेरे ऊपर पूरा अधिकार है। सुबह होते ही वह मेरे बैठनेकी जगहपर आ जाती। मेरी अनुपस्थितिमें वह वहीं बैठकर अपने पंख फुलाती और सिर नीचा करके—झटके-से देकर—किच-किच-किच-किच्चका स्वर अलापती। परमात्माने गलगलके सिरपर विशेष प्रकारके बाल दिये हैं और ऐसा मालूम होता था, मानो रामकली माँग काढ़कर और शृंगार करके आई हो। पर शृंगार देखनेके लिए भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ होती हैं। माता, बेटी और बहनके शृंगार देखनेकी दृष्टिमें सात्त्विकी वृत्ति होती है। मादकता और कामुकता वहाँ होती ही नहीं। रामकलीका रूप मेरे लिए एक दिव्य रूप था। जैसे ही मैं चर्खा और मक्खनका डब्बा लेकर अपने स्थानकी ओर बढ़ता, रामकली अपनी सहेलियोंके साथ मेरे स्वागतको बढ़ती। बैठकर चर्खा

खोलना मुश्किल हो जाता। चारों ओर शोरगुल मचातीं और मक्खन पाकर ही चैन लेतीं। कई सप्ताहतक यह प्रयोग चला और तब मैंने टहल-कर मक्खन खिलाना आरम्भ किया। मैं आगे-आगे बढ़ता और वे सब तीतरकी भाँति पीछे-पीछे चलतीं और आवाजें करती चलतीं मक्खनके लिए। बैरकमें जाकर रामकलीने यह भी मालूम कर लिया कि मेरा ढूला (seat) कौन-सा है। दोपहरीमें आराम करनेके लिए वह मेरे ढूलेके ऊपर दीवारसे सटी पौनियोंकी पोटलीपर आकर बैठ जाती और घण्टों वहीं बैठी-बैठी गाया करती। गीतकी स्वर-लहरी तो समझमें नहीं आती थी; पर उसका गाना उल्लास और आनन्दका द्योतक था। वहाँ बैठी-बैठी वह चैनकी बंसी बजाती और मैं पड़ा-पड़ा अपने बाल-बच्चोंसे समन्वित हो जाता। बस, परेशानी यह हो जाती कि वह बीट इतनी करती कि ढूलेपर बिछी साफ चद्दरोंपर बीटके धब्बे पड़ जाते। बीट दिनमें दसों बार उठाकर फेकनी पड़ती।

होते-होते रामकलीसे इतना अपनापन कायम हो गया कि मेरी सीटीको वह पहचान गई। वह उड़ी चली जा रही है और मेरी सीटीके सुनते ही वह फौरन लौट पड़ती और नीचे आ बैठती। उसके प्रति अपने प्रेम-प्रयोगमें मैं आगे बढ़ा। मक्खनके डब्बेको उसे दिखाता और मक्खन नीचे नहीं डालता। उँगलीपर ही मक्खन लगा रहने देता। रामकली उड़कर हाथपर बैठ जाती और चोंच मारती। मक्खन निकालकर मैं उँगलीपर लगा लेता और वह मजेमें उसे खा लेती। धीरे-धीरे वह इतनी अभय और ढीठ हो गई कि यदि मैं उसे मक्खन नहीं देता, तो चर्खेमें चोंचकी ठोंकें मारती। चर्खेके मोढ़िएपर बैठकर अपना अलाप प्रारम्भ करती—अन्य साथी कातनेवालोंके चर्खोंकी ओर घूम आती। अपना तो वह मेरे ऊपर पूरा अधिकार समझती थी। सिरपर बैठना, कन्धेपर बैठना, चर्खेके मोढ़िए और चर्खेके सामने बैठकर अपना तराना अलापना—यह सब-कुछ वह करती। पर मेरा अनुमान यह था कि उसे यह असह्य था कि कोई उसे छुए। एक दिन

एक साथीने अपनी मूर्खतासे उसे पकड़ लिया : उफ़ ! किस वेदनापूर्ण स्वरमें वह चीखी; मानो किसी दुष्टात्माने किसी कुलवधूको अपमानित करनेका प्रयास किया हो। वह चीखी और चिल्लाई। फौरन ही तो उसे छुड़ाया। छूटते ही तेज गतिसे वह उड़ गई और दो दिनोंतक वहाँ आई ही नहीं। बहुत दिनों बाद उसे पता चला कि आदमी मिलकर मारता है। क्या आवश्यकता थी उसके पकड़नेकी ? हमने अपनी अक्षुण्ण कीर्तिमें क्यों बट्टा लगाया ? सौन्दर्य और सुषमा मानसिक आनन्दके लिए हैं; नष्ट करनेके लिए, भोंड़ेपनसे बर्तने और खिलवाड़के लिए नहीं हैं। तीसरे दिन आई, तो दूर-ही-दूर रही। सीटी बजाई। उसे पुचकारा। मक्खन फेंका। पर वह काफी डरी हुई थी। उसने दूर पड़े मक्खनको खाया। टूटे सम्बन्धको फिर जोड़ना पड़ा और पहली स्थितिके आनेमें पूरा एक सप्ताह लगा।

एक नया प्रयोग रामकलीके साथ और किया। जेलमें दो आने रोजके फल प्रति बी क्लास नजरबन्दीको मिला करते थे। मैं किशमिश और मुन्नके मँगाया करता। एक दिन मक्खनके अभावमें रामकलीको किशमिश डाली। किशमिशको तो वह यों ही गपकने लगी। मक्खन तो कभी-कभी उसकी चोंचकी बगलमें लग जाता और उसको ठीक करनेके लिए उसे अपनी चोंचको प्रायः इधर-उधर लकड़ीसे; चर्खेसे या किसी सूखते कपड़ेसे पोंछना पड़ता। किशमिशें थीं कि बस फौरन ही तो सटक ली जातीं। किशमिशोंका स्वाद तो उसे इतना लगा कि उनके मुकाबले मक्खनकी कोई कदर ही नहीं रही। और फिर किशमिश खिलानेका मेरा तरीका भी दूसरा हो गया। प्रति प्रातःकाल मुट्ठीमें किशमिशें भरकर मैं निकलता और रामकली अपने साथियोंके साथ जमीनपर बराबर या पीछे चलती। मुट्ठी खोलकर मैं आगे बढ़ता और वह उड़कर हाथपर बैठ जाती और किशमिशें निगलने लगती। कभी-कभी एक किशमिशको चुटकीमें पकड़कर उसे दिखाता और वह उड़कर अपने पंजे मेरी उँगलियोंमें जमाती और किशमिश ले लेती। यदि मैं किशमिशको मजबूतीसे पकड़

लेता, तो कई बार चोंच मारकर वह कैं-कैं करके अपना रोष प्रकट करती कि आखिर यह क्या बेहूदगी थी कि मैं उसे किशमिश नहीं लेने देता। किशमिशें खिलानेका एक और प्रयोग बढ़ा। अपने मुँहमें, होठोंसे दाबकर, मैं किशमिश रामकलीको दिखाता। वह फौरन उड़कर मेरी ठोड़ीपर बैठती और किशमिश ले जाती। मुझे कितना सुख होता रामकलीकी आजादी और उसके पालतूपनेपर! दिन-भर वह अपने पास रहती और शामको बसेरा लेने वह जेलके बाहर चली जाती। आखिर पिंजड़ोंमें कैद पक्षियोंकी अपेक्षा रामकली अधिक सुखी और अधिक पालतू थी। उससे एक कौटुम्बिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। सुखका आदान-प्रदान था। स्वार्थकी भावना उच्च स्तरपर आधारित थी।

फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलमें खटमलोंकी भरमार थी। शेर, शैतान और गुण्डेसे मैं नहीं डरता; पर मच्छरों और खटमलोंसे घबराता हूँ। दीवारों और दूलोंके छेदों और दरारोंमें वे लुके-छिपे रहते और रातको खून पीते। नींद हराम हो जाती। मैं दरारों और छेदोंमें मिट्टी और कडुआ तेल मिलाकर डालता। एक दिन सिरहाने पौनियोंका बण्डल रख दिया सुविधाके लिए। अगले दिन प्रातःकाल जो बण्डल खोला, तो बीसों खटमल उसमें छिपे पाये। सोचा, क्यों न रामकलीको कुछ बढ़िया भोजन दिया जाय। बण्डल लेकर बाहर गया। सीटीसे रामकलीको बुलाया। वह आई। पौनियाँ खोलकर जैसे ही उसे दिखाईं, वैसे ही तिरछी नज़रसे उसने एकटक देखा और फिर वह उनपर जुट गई। शायद किशमिशोंसे अधिक स्वाद उसे खटमलोंके खानेमें आ रहा था।

बैरकसे पीछे वालीबालके मैदानसे लगी दीवारमें बड़ी गलगलका एक जोड़ा अपना घोंसला बनाया करता था। छोटी गलगलोंकी देखादेखी उन्हें भी मेरे पास आनेकी सूझी। बड़ी गलगलें मुनक्कोंको अधिक पसन्द करतीं। मुनक्का यदि छोटी गलगलोंके पल्ले पड़ जाता, तो उन्हें उसके खानेमें बड़ी तकलीफ होती। साबित उनसे वह निगला नहीं जाता। जमीनसे पीट-पीटकर टुकड़े करके वे खातीं। इस बीच बड़ी गलगलें या कौए उनपर टूट

पड़ते । रामकली तो वैरकमें उड़ आती और मुनक्का खाती । बड़ी गल-गलोंको लपकानेकी बहुत कोशिश की; पर उनसे वह सम्बन्ध नहीं हो सका, जो रामकली और उसकी सहेलियोंसे ।

जूनके आखीरमें एक दिन रामकली नहीं आई । आशंका हुई कि कहीं किसी दुर्घटनाकी वह शिकार तो नहीं हो गई । दिन बीतते गये और वह नहीं आई । रोजाना उसकी याद आती । तोते, कौए और अन्य गलगलें दिखाई देतीं; पर रामकलीका कुछ पता न चलता । उसके पास अपना सँदेसा कौन ले जाता ? यों मनसे उसके सुखकी कामना करता; पर दो महीने होने आये और वह न आई । साथी कहते उसे बाज खा गया या बिल्ली या न्योलेके पेटमें वह पहुँची । शायद । पर मुझे एक क्षीण आशा थी कि कहीं रामकली गृहस्थीके जंजालमें तो नहीं फँसी रह गई ! अपने बच्चोंके भारके कारण शायद वह अपने पीहरकी ओर न आ सकी हो । हालकी विवाहिता लड़कियाँ पीहर जानेके लिए तड़पती हैं । भाईके आगमनके लिए मनौती मानती हैं । माता-पितासे मिलनेके लिए तरसती हैं । पर वाह रे गृहस्थीके जंजाल ! जहाँ कुछ बच्चे हुए कि पितृगृह-सम्बन्धी स्नेह-सरोवर सूखने लगता है । उधर जानेके लिए अवकाश ही नहीं मिलता । शायद रामकलीकी जिम्मेदारियाँ कुछ बढ़ गई हों । मैंने उसे मरा नहीं माना । एक दिन जैसे ही मैं कातने बैठा, सितम्बरके शुरूमें कि रामकली आ धमकी और साथमें था उसके उसका बच्चा—मुन्ना । इतना सुन्दर और भोला कि अपने बच्चे ब्रजेशकी वह याद दिलाने लगा । घरको ब्रजेशको एक चिट्ठी लिखी ब्रजभाषामें कि "बेटा ब्रजेश, मैंने एक गलगलिया पालीऐ । वाकैं एकु बिजेसुऐ । वाकी अम्मा कौ नाउँ (नाम) मैंने धरौ ए रामकली । बु हातपै बैठिकै खातिऐ"। ब्रजेशकी चिट्ठी आई—"बाबूजी, गलगलिया कौ बिजेसु कितनौ बड़ौ हैगऔ ऐ । सिब (सब) बातैं लिखौ ।"

रामकली खुद तो मेरे पास आती; पर जब उसका मुन्ना आता, तब वह आतंकसूचक सिगनल देकर उसको मेरे पास आनेसे रोकती । कैं-३

(प्लुत) कैं-३ करनेमें अपनी चोंच पूरी खुली रखती। उसे सावधान करती कि ऐ अनुभवहीन भोले बच्चे, जरा सँभलकर रह। आदमीका क्या ठिकाना कि कहीं तुझे पकड़ ले और मुझे तेरा बिछोह भुगतना पड़े। पर मुन्ना तो बहुत जल्दी हिल गया और अपनी अम्मा रामकलीकी भर्त्सनाकी तनिक भी पर्वाह न करता। इस प्रकार रामकली और मुन्ना फतहगढ़-जेल-जीवनके बड़े स्नेही साथी बन गये थे।

गत ३० नवम्बर सन् १९४५ को जेलसे मेरी रिहाई हुई। जेलसे श्री देवेन्द्र शर्माने लिखा—"आपकी गलगल—रामकली—आपके ढूलेपर प्रतिदिन आती है। चारों ओर देखती है और उसे किशमिशें खिलानी पड़ती हैं।"

रामकलीने मेरे हृदय-पटलपर एक अमिट छाप छोड़ी है। लोगोंको क्या मालूम कि उसके सत्संगसे मुझे कितनी शान्ति मिली। उसकी चितवन और उसकी मुद्रा अब भी ताजा है। वह मुझे कितना पहचानती थी।

वह निगाहें क्यों हुई जाती हैं या रब दिलके पार;
जो मिरी कोताहिए क़िस्मतसे मिज़गाँ हो गईं।

रहस्योद्घाटन

शास्त्रोंके इस मतमें अपना पूर्ण विश्वास है कि पाप और पुण्य कहनेसे क्षय होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आदमी पाप करता रहे और कहता रहे, तो पापोंका क्षय हो जायगा। इसका सीधा-सा मतलब यह है—प्रायश्चित्तका भी यही तात्पर्य है—कि सचाई और सद्भावनासे लोग अपनी गलती मान लें और कह दें और फिर उसे न करें। क्षमा-दानका तात्पर्य यह भी है कि क्षमा करनेके बाद दोषी व्यक्तिके दोषको भूल जाना चाहिए। पर पुण्योंका क्षय तो कहनेसे अवश्य होता है। भलाई करके उसकी चर्चा करनेका प्रभाव तो यह भी हो सकता है कि भलाई करनेवालेमें पुण्य करनेकी क्षमता ही न रहे। सन् १९४२ के आन्दोलनके सम्बन्धमें कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी चर्चा करनेसे अपनी आत्माको सन्तोष होगा और दिलकी एक कसक-सी निकल जायगी कि जो बात गुप्त रखी है, उसके न लिखनेसे अपनी नैतिकताको कुछ धक्का-सा आता है। शिष्टाचारके नाते औरोंकी काली करतूतोंकी ओर मैंने संकेत ही किया है। उदाहरणके लिए, आगरे जिलेके सुनारी गाँवमें डाली गई डकैतीमें शामिल होनेवाले कांग्रेसजनोंके मैंने नाम नहीं दिये। पुलिसके प्रमुख मुखबिर व्यक्तिकी अधिक चर्चा करनेमें घिन लगती है। यू० पी०में तथाकथित क्रान्तिकारियों द्वारा डाली गई डकैतियोंका मैंने संकेत-मात्र किया है। स्थानों और व्यक्तियोंके नाम जान-बूझकर छोड़ दिये। पर कोई पूछ सकता है कि क्या मेरी ओरसे ऐसी कोई बात नहीं हुई, जिसको मैं गलत और कांग्रेसके उसूलके विरुद्ध समझता हूँ ? हाँ, ऐसी दो-एक बातें थीं, जो कांग्रेस-नीतिकी कसौटीपर खरी उतरती नहीं कही जा सकतीं। परमात्माकी कृपासे उनके करनेका मौका नहीं आया। यह बात दुहराना भी यहाँ अनुचित नहीं समझता कि उन दिनोंके ध्वंसात्मक कार्यको मैं

तब और अब भी ठीक समझता हूँ। उन दिनों हथियारों, बमों और अन्य विस्फोटक पदार्थोंको रखना कोई पाप नहीं समझता था। संगठनकी बात थी। कांग्रेसवालोंने मिलकर सब बातें तय की थीं। डकैतियोंका मैं विरोधी था और वे अपनी शक्ति-भर रोकी गईं। कत्ल करनेका विचार न था और न कत्ल किये गये। पर दो-एक बातें तो ऐसी हैं, जिनके बारेमें मैं अभीतक फैसला नहीं कर पाया हूँ कि क्या वह पाप था या गलती। इसीलिए घटनाओंके तारतम्यकी दृष्टिसे यहाँ उन बातोंका लिखना आवश्यक है। साथियोंको भी वे गोपनीय बातें नहीं मालूम। पढ़कर वे फैसला करें कि मैं कितना दोषी था। अपनी निजी राय तो यह है कि जो-कुछ करनेका इरादा था, उसके पीछे कोई स्वार्थ नहीं था। स्थिति ही कुछ ऐसी थी।

बात यह है कि जब आत्म-रक्षाके लिए अथवा लड़नेके लिए अपने पास इतने हथियार थे, तब अपने लाइसेन्सी हथियार साथ क्यों रखे? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि हथियारोंकी कमी थी। मेरे पास अपनी निजी १२ नं० की बहुत बढ़िया बन्दूक थी। १००-१२५ कारतूसोंके साथ रेमिंगटन राइफल थी। अपने निजी हथियार हाथमें सधे हुए थे। घरपर उनके रहनेमें यह खतरा था कि पुलिस उनको ले जाती। इस विषयमें पुलिसकी मूर्खताका कुछ वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा। मेरी गिरफ्तारी ७ दिसम्बर, १९४२ को हुई। जनवरी, १९४३ के पहले सप्ताहमें मेरे लड़के रमेशने आगरेसे ही हथियारोंका लाइसेन्स बदलवा लिया। गिरफ्तारीके बाद जब मेरे हथियार घरपर लाकर रख दिये गये, तब कई बारकी तलाशीके बाद भी पुलिसको उनका पता नहीं चला। २६ जुलाई, १९४३ की आखिरी तलाशीमें जब भूदेव पालीवालने यह बता दिया कि वे कहाँ रखे हैं, तब चक्रवर्ती और रामप्रसादने मय लाइसेन्सके वे हथियार निकाले। लाइसेन्सका बदलना जानकर उनपर घड़ों पानी पड़ गया। हथियार जमीनमें दबाकर नहीं रखे गये थे। बाँसकी अरगनीमें लिहाफ़ोंसे सटाकर बाँसके दोनों ओर उनको लटका दिया गया

था। बोझके सन्तुलनसे ऐसा मालूम होता था कि दो-तीन लिहाफ़ लटक रहे हैं। पाठक यू० पी० की तत्कालीन पुलिसकी नालायकीका अन्दाज इसीसे लगा लें कि जिस व्यक्तिको जिन्दा या मुर्दा गिरफ्तार करनेकी बात हो, उसके हथियारोंके लाइसेन्सको आगरेका ही मजिस्ट्रेट बदल दे और रामप्रसाद और चक्रवर्तीको यह पता न हो कि मेरे पास हिन्दुस्तान-भरका लाइसेन्स है! अगस्तके प्रारम्भमें ही उन्हें मेरे हथियारोंकी खोज-बीन करनी चाहिए थी। स्पेशल ब्रांचके आदमी गिरफ्तारीके लिए जी-जानसे प्रयत्नशील थे और उनके यहाँ सूबेके हथियारोंके लाइसेन्सका रजिस्टर भी रहता है। यह तो हुई पुलिसकी नालायकी, जिसका मैंने उन दिनों काफ़ी लाभ उठाया। नालायकीकी भी एक सीमा होती है; पर उन दिनोंकी पुलिसकी नालायकी असीम और अनन्त थी। पुलिसने बिगड़कर मिसिलका एक पोथा तैयार किया कि मेरे विरुद्ध यू० पी०, बिहार और बंगालमें क्या-क्या शिकायतें हैं और किन-किन स्थानोंसे मैंने अपना लाइ-सेन्स बदलवाया है। जेलमें मुझसे पूछा भी गया कि मैंने कहाँ-कहाँसे लाइसेन्स बदलवाया है? मैं उत्तर देता था कि मथुरा, आगरा, मैनपुरी, देहरादून और हरदोई जिलोंकी तो मुझे याद है। बाकीके स्थानोंका पता सरकार रजिस्टर और लाइसेन्ससे लगा ले। जेलसे छूटनेके बाद मालूम हुआ कि मेरा लाइसेन्स पुलिसवालोंने खो दिया। मेरे अनुमानसे ऐसा जान-बूझकर किया गया। सबसे मजेकी बात यह है कि मेरा लाइसेन्स खारिज किया गया मई सन् १९४६ में—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके दिनोंमें। इसलिए क़िदवई साहबसे मुझे मजाकका मौका मिला कि मेरे हथियारोंकी जब्ती हैलेटशाही नहीं कर सकी, वरन् कांग्रेसशाहीने की। हुआ यह कि मिसिल चलती रही। हर जिलेकी रिपोर्ट तैयार कराकर पुलिस मेरे विरुद्ध एक बड़ी मिसिल तैयार करना चाहती होगी। लाइसेन्स खारिज करनेके हुक्म पहलेसे ही तैयार होंगे। फाइल तैयार हो पाई होगी एप्रिल सन् १९४६ के अन्ततक और बस फाइलोंके ढर्रेमें लाइसेन्स खारिज हुआ मई सन् १९४६ में। पाठक पुलिसकी इस सूझ-बूझका अनुमान लगा लें। कुछ

ही दिनों बाद वर्षोंकी बिछुड़ी दोनों मानिनी—रायफल और बन्दूक—अपने असली आदमीसे आ मिलीं। तीन-चार वर्षोंके बिछोह और क्षोभसे वे कितनी मनमलीन और सुहागलुटी-सी दिखाई पड़ती थीं!

हाँ, तो मूल बात थी एक प्रकारसे पाप-पुण्यके खातेकी अथवा कुछ गोपनीय रहस्यके उद्घाटनकी। छावनीमें अपना सम्पर्क था। सम्पर्क कायम किया गया मेडिकल कालेज आगराके एक माडलर द्वारा। हिन्दी और अंगरेजीमें पोस्टर छपाये गए और हिन्दुस्तानी सैनिकोंके पाखानोंमें लगवा दिये गये। उन्हें पढ़कर सिक्खों और हिन्दुओंमें बड़ी बेचैनी हुई। उस प्रकारके साहित्यकी माँग बढ़ी। देशके नामपर अपील की गई कि देश तो आजाद होगा ही। भारतीय सैनिक बहती गंगामें स्नान कर लें और ब्रिटिश साम्राज्यवाद-रूपी मरते राक्षसको कांग्रेसका साथ देकर शीघ्र ही खत्म करनेमें क्यों न सहायक हों? एक पोस्टरकी अन्तिम पंक्तियाँ अब भी याद हैं। १०-१५ पंक्तियोंका पोस्टर था। अपील की गई थी कि देशकी आजादीकी खातिर अंगरेजोंकी नौकरी करके अपने ही देशपर ढाये गये जुल्मके वे जिम्मेदार न बनें। आज देशके पीड़ित और बेकस आपकी ओर नजर लगा रहे हैं। आपके देशवासी बेकसोंकी प्रार्थना है :—

> **न दुनिया साथ जाती है न दौलत साथ जाती है;**
> **दुआ बेकसकी लेकिन ताबे तुरबत साथ जाती है।**

फिर क्या था। सैनिकोंका दिल पिघला और परामर्श हुए। कोतवाली और अन्य स्थानोंपर सैनिक दृष्टिसे कैसे अधिकार किया जा सकता है, इस बातकी योजना सैनिक अफसरोंने बताई। मैंने उनसे कहा कि कोतवाली और अन्य सरकारी स्थानोंका लेना तो बहुत आसान बात है। सैनिकोंसे शिकायत की गई कि मेरी समझमें यह बात नहीं आती कि एस० ए० सी० (स्पेशल आर्म्ड कांस्टेबुलरी)के लोग निहत्थे और बेकस आदमियोंको क्यों मारते हैं? सूबेमें किसी भोले-भाले किसानने दिनमें

रेलवे-लाइन पार की कि एस० ए० सी० गार्डने फौरन गोलीका निशाना बना दिया !

एक जिम्मेदार सैनिक अफसरने कहा—"आपको एक बात नहीं मालूम। हम सैनिकोंकी ट्रेनिंग सशस्त्र विरोधको खत्म करनेकी है और एस० ए० सी० वालोंकी सारी ट्रेनिंग सिविलियनोंके विरोधको कुचलनेकी है। इसके अतिरिक्त एस० ए० सी० में जान-बूझकर लगभग ८० प्रतिशत लीगी आदमी हैं। एक इलाज है कि सिकन्दरेके पास आगरेके निकट यदि दो-एक एस० ए० सी० के उन बदमाश आदमियोंको मार दिया जाय, जिन्होंने बेकसूर आदमियोंको मारा है, तो मुझे उम्मेद है कि उस पेट्रोलके हटवानेमें सहायता मिलेगी। हम लोग उस अवसरकी खोजमें हैं जब सुभाष बाबू अपनी फौज लेकर हिन्दुस्तानपर चढ़ाई करेंगे। तब हम अंगरेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। सिपाही बहुत अच्छा खाना चाहता है और रहनेका भी आराम उसे चाहिए। बिना इन दो सुविधाओंके वह लड़ नहीं सकता। क्या आप इतने आदमियोंके खानेका प्रबन्ध कर देंगे और क्या हमारे फौजियोंके ठहरनेकी व्यवस्था भी ठीक हो सकेगी ? पर पहले आप उन दो बदमाश एस० ए० सी० वालोंसे भुगत लें।"

मैंने उत्तर दिया—"खाने-पीनेका प्रबन्ध तो हो जायगा। पर आवश्यकता पड़नेपर हम लोगोंको गुरिल्ला सैनिक बनना पड़ेगा। भूखे-प्यासे रहकर मरनेकी भी नौबत आ सकती है। पर प्रोग्राम कांग्रेसका होगा और उसीका नेतृत्व।"

उपर्युक्त वार्तालापके बाद मेरे दिमागमें उथल-पुथल मच गई कि आखिर इस समस्याका हल कैसे हो। गोरखपुरके कलक्टर मासके कत्ल-को मैंने रोका। रामप्रसाद और चक्रवर्तीको गोलियोंका शिकार न बनने दिया। तब फिर मैं स्वयं सैनिक अफसरसे वचनबद्ध होकर उस बातसे कैसे हट सकता हूँ। इतने सैनिकोंको साथ लेना भी बड़ी भारी बात थी। इसलिए रात-भर करवटें बदलते हुए यह फैसला किया कि पेट्रोल ड्यूटी-

पर जानेवाले उन हत्यारोंकी गति-विधिको अच्छी तरह समझ लिया जाय। ऐसा करनेमें दो दिन लगेंगे, क्योंकि दो स्थानोंसे उनके पेट्रोलका निरीक्षण करना था और तब उचित स्थान नियत करके रात पड़ते ही जब उनकी झाँई मारती हो, तब धकापेल दो गोलियोंसे उनको विदा दिया जाय और उनकी राइफलें लेकर चम्पत बना जाय। दिमागमें काफी परेशानी थी। ऐसा मालूम होता था कि मैं इस दुनियाका प्राणी नहीं हूँ और न मेरा ताल्लुक कांग्रेससे है और न उस संगठनसे, जिसके आदर्शको मैंने निभाया था। परामर्श भी किससे करता, दिलमें तो यह बात लगी हुई थी कि यदि उन हत्यारोंको खत्म कर दिया गया, तो पूरी रेजीमेण्ट अपने साथ हो जायगी। आखिर द्वन्द्वका कुहासा हट गया। एक कागजपर लिख दिया कि मैं निहायत ईमानदारीसे कांग्रेससे इस्तीफा देता हूँ और अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे उन दो एस० ए० सी० के राक्षसोंको मार रहा हूँ, जिन्होंने भोले-भाले और निर्दोष व्यक्तियोंके घरोंको सूना कर दिया है।

तीसरे दिन प्रातःकाल उठा। चाय पी और नारायण-भवनमें १० बजेके करीब पहुँच गया। बन्दूकको छोटी-सी गठरीमें रखकर ले जाना था। फटा कुर्ता पहनकर एक देहातीका रूप धर सड़कपरसे जाना था शामके ४ बजे। पर विधिका विधान! लगभग दो बजे छावनीसे अपना एक जासूस आया कि गवर्मेण्टने उसी दिनसे रेलकी पटरीसे पेट्रोल उठा लिया है। परमात्माकी प्रेरणाके अतिरिक्त इसे और मैं क्या कहूँ? पर जहाँतक मेरा ताल्लुक है, नैतिक दृष्टिसे तो मैं सम्भावित ही नहीं, निश्चित निर्णयके अनुसार दोषी ठहराया ही जा सकता हूँ। लोग कह सकते हैं— 'वह शोखियाँ कहाँ गईं, जिनपर गरूर था?' जो-कुछ भी हो। जो बात थी, वह सामने रख दी। यह तो मानना ही पड़ेगा कि उस काण्डको न करानेमें परमात्माने मेरी मदद की। मैंने असली बात पाठकोंके सामने रख दी है। जो जिसकी तबीयतमें आए, वह फैसला करे। फिर भी न-जाने क्यों, पाप और दोष स्वीकार करनेके लिए दिल गवाही नहीं देता, क्योंकि ईमानदारीसे कांग्रेससे इस्तीफा देकर विश्व-प्रचलित सैनिक धर्मका

पालन करनेका मैंने फैसला किया था। पर उसकी नौबत ही नहीं आई।

एक दूसरी बात और है। आगरेके किलेमें पता चला कि लगभग चार करोड़का फौजी सामान रखा है, जिसमें भयंकर बम और शार्पनल थे। श्री अवधविहारीलाल दीक्षित द्वारा उस क्लर्कका पता चला जो किलेके अन्दर जाया करता था। यह जुगत भिड़ाई कि एक पास बनवाकर वहाँ जाया जाय और उस स्टोरमें आग लगा दी जाय। वहाँसे जीवित निकलना असम्भव था। पर एक जानके जानेसे यदि इतना बड़ा काम हो जाय, तो बड़ी भारी बात होगी। बिना स्वयं मरे स्वर्ग नहीं दिखाई पड़ता। ऐसे तो लोग थे, जो कहनेसे हुक्म नहीं टालते। पर यह बात बेजा थी कि किसी दूसरेको इसमें मरवाया जाता, इसलिए स्वयं मैं तैयार हुआ। अफ़सरसे पता चला कि यदि आगरेके किलेमें रखे सामानको जरा भी आग लग गई, तो इतना भयंकर विस्फोट होगा कि सारा रावतपाड़ा, बेलनगंज और कचहरी-घाटका हिस्सा उड़ जायगा। बस, वह प्रोग्राम भी स्थगित कर दिया, क्योंकि इतने निर्दोष व्यक्तियोंकी मौत अपनी आजादीके लिए लज्जास्पद और विघातक होती। स्वयं मरनेकी तो कोई बात न थी। आखिर यहाँपर भी परमात्माने मेरे शरीरकी नहीं, वरन् आगरेके हिस्सेके इतने व्यक्तियोंकी रक्षा की। रही मेरी, सो चर्चाको भी 'कातिलने दिया चुपकेसे चरका मेरे दिलमें।'

एक तीसरी बातका उल्लेख मुझे किसी पहले लेखमें कर देना चाहिए था। पर इस लेखमें उसकी चर्चा कोई अप्रासंगिक न होगी। मेरठकी एल्कोहल फैक्टरीको, जिसमें पचहत्तर हजार गैलन एल्कोहल रखा था, विध्वंस करनेका श्रेय आगरेके श्री सूरजभान जैसोरियाके छोटे भाई श्री विश्वंभरजीको होता, अगर हम लोगोंकी गिरफ्तारी ७ दिसम्बर, १९४२ को न हो गई होती। सबसे मजेकी बात तो यह है कि श्री सूरजभान जैसोरियाको इस बातका उन दिनों तो पता भी न था। शायद अब भी न हो।

आगरेके प्रतिष्ठित कांग्रेस-कार्यकर्ता श्री बालमुकुन्द बल्ला लोहेके कार-

खानेके मालिक हैं। जेल जाते वक्त अपने चतुर मुनीमजीको वे आदेश कर गए थे कि किसी भी प्रकारसे कोई चीज उनके यहाँ आन्दोलनके लिए न बनने पाये। भला, इस बातमें भी कोई तुक है कि कोई व्यक्ति अपनी देहपर तो आँच न आने दे और काम हो जाय। दुकानदारीमें यह भले ही सम्भव हो, पर राष्ट्रीय युद्धमें यह न तो सम्भव ही है और न वांछनीय है। कांग्रेस-आन्दोलनोंका ढंग तो 'कबीर'की उस उक्तिके अनुसार रहा है :—

कबिरा खड़ा बजारमें लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना होय हमारे साथ॥

तब फिर बल्लाजीको मैं कैसे बख्श सकता था? ध्वंसात्मक कार्य, खतरेकी बात और हथियारोंकी ओर युवकोंकी साधारण रुचि थी। बल्लाजीके भानजे हज्जोको मिलाया। स्थिति समझाई। बल्लाजीकी बात तो मालूम ही थी। बस, अनुभवी मुनीमजीकी आँखोंमें धूल झोंककर बल्लाजीके कारखानेमें भी बमके खोल ढाले गए। बमोंकी बहुत पकड़-धकड़ होनेपर हज्जोने उन बमके खोलोंको कारखानेके अन्दर ही दफनवा दिया। बल्लाजीने अगर उनको अबतक खोलकर न गलाया हो, तो हज्जोसे पूछकर वे उनको गला डालें और उनके बाँट बना डालें।

आजकल बहुतसे लोगोंका—जिसमें कांग्रेसके कुछ कार्यकर्ता भी शामिल हैं—यह खयाल है कि पेशेवर डकैत राष्ट्रीय निर्माण और राष्ट्रकी रक्षामें उपयोग किये जा सकते हैं। अपने गुरु स्वर्गीय श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थीकी अनेक बातोंमेंसे एक बात हम कभी नहीं भूल सकते और वह यह कि गुण्डोंका कोई उपयोग नहीं कर सकता। जो गुण्डोंका उपयोग करता है, थोड़े दिनों बाद गुण्डे ही उस व्यक्तिका उपयोग करने लगते हैं। सन् १९४२ के आन्दोलनमें मैंने यह कोशिश की कि शायद स्वतन्त्रतायुद्ध की अग्निसे डकैतोंके दिलोंमें भी कुछ प्रकाश हुआ हो। सोचा, क्यों न इन लोगोंका उपयोग किया जाय, ताकि इन लोगोंके भी कुछ पाप धुल जायँ

और आन्दोलनकी भट्ठीमें अगर ये लोग ईंधनका काम दे जायँ, तो कुछ बुरा भी नहीं है। पर मैं आज महसूस करता हूँ कि मैंने यह भूल की कि पेशेवर डकैतोंके प्रति मैंने एक इतनी सुन्दर धारणा बना ली। पतितों, गुण्डों, ठगों और पेशेवर डकैतोंका उद्धार मुझ जैसा साधारण व्यक्ति नहीं कर सकते। इस कार्यको तो कोई महापुरुष ही कर सकता है—ऐसा महापुरुष, जिसके रोम-रोमसे तपस्या, त्याग और सत्यनिष्ठाके स्फुलिंग प्रस्फुटित होकर जरायम-प्रवृत्तियोंको भस्म कर नवीन भावोंका संचार कर सकें। कितने जवानोंमें है वह क्षमता, जो पतिता सुन्दरियोंका उत्थान कर सकें? जिन्होंने यम-नियमका पालन किया है, जिन्होंने वासनाओं-रूपी विषधरोंको कील रखा है, वे ही ऐसा कर सकते हैं। पर कितने हैं ऐसे शिव, जो वासनाओंके विषधरोंसे आवेष्टित होनेपर भी—उत्ताल वासनाओंके जाग्रत् करनेपर भी—अपनी वास्तविक शक्तिसे—संयमके प्रकाश-पुंजसे—हर घड़ी समूचा निगलनेवाले पुष्पधन्वाकी मारसे अपने-आपको बचा सकें! मुझ-जैसे साधारण व्यक्तिके लिए डकैतोंका उपयोग करनेका विचार ही कुछ ठीक नहीं था। मैंने विचार ही नहीं किया, वरन् आगरा, धौलपुर, ग्वालियर और अन्य स्थानोंके डकैतोंसे मिला या उनके पास सन्देश भेजे कि वे सरकारी खजानों और मालगाड़ियोंके लूटनेमें सहायक हों। कांग्रेस अथवा कांग्रेस-कार्यकर्ताओंको लूटके मालकी आवश्यकता नहीं। पर वे लोग इस कामको करें। युद्ध-सामग्री लूटकर जनताकी रक्षा करें। धौलपुर, ग्वालियर, भूपाल, भरतपुर और अन्य रियासतोंकी हदमें मालगाड़ियोंको रोकने और इंजन खराब करनेका काम हमारा होगा। लूट-खसोटकर मालगाड़ियोंके मालको ले जानेका काम होगा उन लोगोंका। पर लम्बी-चौड़ी बातें बनानेवालों, निरीह लोगोंको सतानेवालों और निहत्थे बनियोंके यहाँ डकैती डालनेवालोंके गुर्दा तो जरा-सा ही था। हथियारोंका मुकाबला करने और सरकारी अफसरोंसे भिड़न्तकी आशंकाके कारण कोई भी इस बातके लिए राजी नहीं हुआ। सब लोगोंने सीधे-सादे और निहत्थे लोगोंके यहाँ डाके डालनेके लिए बड़ी तत्परता दिखाई। पर

उसके लिए तो मेरा एक ही जवाब था कि यदि उन लोगोंने ऐसा किया, तो फिर हमारी सीधी लड़ाई उन्हींसे हो जायगी। नतीजा इसका यह हुआ कि पेशेवर डकैतोंने उन दिनों डाके नहींके बराबर डाले। कथित क्रान्तिकारियोंका जहाँ उन्हें सहयोग मिल सका, वहींपर उन्होंने ऐसा काम किया।

अपनी बातके प्रमाणमें मैं लीगियोंकी वर्तमान स्थितिको पेश करता हूँ। कांग्रेस और हिन्दुओंके खिलाफ लीगी नेताओंने गुण्डोंका दल खड़ा किया। आतंक, लूट-खसोट, नरमेध तथा अन्य भ्रष्टाचारोंसे उन्होंने पाकिस्तानके जादूको जन्म दिया। आज वे ही गुण्डे पाकिस्तानियोंका उपयोग कर रहे हैं। कौन-से पाकिस्तानीमें इतनी शक्ति है, जो अपने ही हाथों पाले-पोसे राक्षसों और गुण्डोंको काबूमें कर सके? यह ठीक है कि प्रतिक्रिया-स्वरूप अनेक लीग-विरोधी लोगोंके भी दिमाग खराब हो गए हैं; पर उन्हें समझना चाहिए कि बुरे मार्गके अवलम्बनसे फल भी बुरा होगा।

सन् '४२ के आन्दोलन-सम्बन्धी कुछ गोपनीय बातें साफ तौरसे सामने रख दी हैं, ताकि देशवासी समझ सकें कि सच्ची आजादीका रास्ता क्या है। दिल खोलकर अथवा दिल फाड़कर मैंने दिखा दिया है। पाप-पुण्यकी जिम्मेदारीका फैसला मेरे साथी और कांग्रेसजन कर लें। दिलकी बगलमें जो लोगोंके नाम छिपा लिए हैं, वह इसलिए कि आशावादी कार्यकर्ताके नाते कुछ ऐसा ख्याल है कि भूले-भटके वे कांग्रेसजन, जो अब भी कई पेशावर डकैतोंसे मेल रखते हैं और उनकी झूठी प्रशंसा करके लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेका प्रयत्न करते हैं, इस बातको समझ लें कि जनता-जनार्दनके हितार्थ वे अपना स्वार्थ और चालबाजियाँ छोड़ दें और मुझसे कुछ अधिक न लिखवायें :—

अपनी गलीमें मुझको न कर दफ़न बाद क़त्ल;
मेरे पतेसे खल्क़को क्यों तेरा घर मिले।

दो उदाहरण

गत ६ दिसम्बर, १९४७ को लखनऊमें यू० पी० सरकारकी ओरसे डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिसके पदके अनेक उम्मेदवारोंसे पब्लिक सर्विस-कमीशनके सदस्योंने चुनावके सिलसिलेमें भेंट की। उन उम्मेदवारोंमें एक थे श्री विजयशरण चौधरी, जिन्होंने मेरे नीचे सन् १९४२ में काम किया था। श्री विजयशरण चौधरी तथा अन्य साथियोंके बारेमें तो किसी अगले लेखमें लिखा जायगा; पर इस लेखमें उनका नाम इसलिए आ गया कि पब्लिक सर्विस-कमीशनके सदस्योंने विजयशरणजीसे सन् १९४२ के आन्दोलनके सम्बन्धमें बड़े रोचक प्रश्न किये। जो प्रश्नोत्तर हुए, उनका सारांश इस प्रकार है :—

प्रश्न—सन् १९४२ में आपने क्या किया ?

उत्तर—सन् १९४२ में मैं उस जाँबाज दस्ते (Suicide squad) का एक सदस्य था, जिसका संगठन पं० श्रीराम शर्माके नेतृत्वमें हुआ था।

प्रश्न—उसमें आप क्या काम करते थे और किस प्रकारका ध्वंसात्मक (Sabotage) कार्य करते थे ?

उत्तर—सरकारी पुल उड़ाना, सरकारी बिजलीके कारखाने बरबाद करना, युद्ध-प्रयत्नोंमें लगे कारखानोंको बरबाद करना और रेलवे इञ्जनोंको खराब करना।

प्रश्न—रेलवे ट्रेनें पलटनेका तरीका (Technique) क्या था ?

उत्तर—पटरियोंके बोल्ट उखाड़कर सब्बलोंसे लाइनको अपने स्थानसे हटा देनेसे गाड़ी उतर जाती थी।

प्रश्न—इस कलाको आपको किसने सिखाया ? क्या पं० श्रीराम शर्मा स्वयं सिखाते थे या टेकनीशियन रखते थे ?

उत्तर—हाँ, वे टेकनीशियन रखते थे।

प्रश्न—क्या आप किसी टेकनीशियनका नाम बता सकते हैं ?

उत्तर—नहीं। उनसे मेरा परिचय नहीं कराया गया।

प्रश्न—क्या इञ्जनकी मशीनरीके बारेमें कुछ आप जानते हैं ?

उत्तर—इञ्जनकी मशीनरीके बारेमें मैं इतना ही जानता हूँ कि उसको खराब करके कैसे बेकार किया जा सकता है।

प्रश्न—कोई उदाहरण दीजिए, जहाँ आपने इञ्जन बेकार किया हो ?

उत्तर—आगरा-भरतपुर-लाइनपर बिचपुरी स्टेशनके करीब पटरीसे मालगाड़ियाँ उतारकर कई इञ्जन खराब किये गए।

प्रश्न—तब क्या सवारी-गाड़ियोंको भी उतारा गया, जिससे आदमियोंकी जानें गई हों ?

उत्तर—जी नहीं। एक भी सवारी गाड़ी नहीं पलटी गई। सवारी गाड़ियोंको तो जान-बूझकर नहीं पलटा गया। हम किसीके मारनेके पक्षमें नहीं थे। कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिका तो हमने पालन ही किया!

प्रश्न—क्या आप अन्य देशके क्रान्तिकारियोंको जानते हैं, जिन्होंने सवारी-गाड़ियोंको पलटा हो और बादमें ऐसा करना ठीक भी समझा हो ?

उत्तर—हाँ, जानता हूँ। ऐसा रूसमें भी किया गया; पर हमारी कार्य-प्रणाली अन्य देशोंके क्रान्तिकारियोंसे भिन्न थी। हमें तो अंग्रेजोंके युद्ध प्रयत्नोंको तथा युद्ध-प्रयत्नोंमें लगे कारखानों और अन्य ऐसे ही साधनोंको नष्ट करना था। हमें न किसीका कत्ल करना था और न कोई डाका डालना था।

प्रश्न—आजकल आप क्या कर रहे हैं ?

उत्तर—आजकल मैं रचनात्मक कार्य कर रहा हूँ और उसकी रूप-रेखा यह है कि मेरे जिलेकी तहसील वाहमें, जहाँका मैं निवासी हूँ, डकैतियों और अराजकताका इतना बोलबाला है कि सूबेमें शायद ही कहीं इतनी हो। मैं इसी अराजकता और डकैत-राजके विरुद्ध अपनी सरकारको मजबूत बनानेमें लगा हूँ।

प्रश्न—क्या आपने १९४२ में डकैतोंकी सहायता ली थी ?

उत्तर—जहाँतक मैं समझता हूँ, कोई नहीं ली गई। मेरा सम्पर्क तो किसी डकैतसे हुआ नहीं; पर इस बातका पूरा उत्तर तो आन्दोलन-संचालक पं० श्रीराम शर्मा ही दे सकेंगे।

कई मित्रोंसे मुझे मालूम हुआ कि नौकरियोंकी खातिर अनेक प्रतिक्रियावादी तथा अवसरवादी क्रान्ति और सन् १९४२ के आन्दोलनका झूठा जामा पहनकर लम्बी-चौड़ी बातें हाँकते हैं। उत्तरप्रदेश तथा अन्य सूबोंमें जो लोग अपना उल्लू सीधा कर रहे थे, आज कांग्रेसी और क्रान्तिकारी बन रहे हैं। इन दूध पीनेवाले मजनुओंकी संख्या कम नहीं है। आज तो अनेक कांग्रेसजन—अनेक पदाधिकारी कांग्रेसजन—चोर-बाजारमें रत हैं और कांग्रेसकी दुहाई देते हैं। मुझे यह भी पता चला कि कई एक ऐसे व्यक्तियोंने भी अपनी सेवाओंकी डींग हाँकी, जिन्होंने आन्दोलनमें कोई भाग नहीं लिया। यू० पी० पब्लिक सर्विस-कमीशनके सदस्योंसे मुझे इतना ही कहना है कि १९४२ में न तो टेकनीशियनोंकी कमी थी और न कामकी। कमी थी तो केवल उचित कार्यकर्ताओंकी। बीसों मित्रोंने जबानी और लिखकर मुझसे ये प्रश्न किये हैं कि मैं दो-एक ऐसी घटनाओंका जिक्र जरूर करूँ, जिससे यह पता चले कि ध्वंसात्मक कार्यक्रमकी रूप-रेखा क्या थी और वह कैसे किया गया ? एक-दो या दस-बीस तो ऐसे उदाहरण हैं नहीं, जिनके विस्तृत वर्णन दिये जायँ। और फिर किस सूबेकी घटनाएँ ली जायँ ? किसको महत्त्वपूर्ण कहा जाय और किसको साधारण ? कभी-कभी तुलनात्मक विश्लेषण न केवल अप्रिय ही होता है, वरन् वह अवांछनीय भी होता है। ध्वंसात्मक कार्यकी भिन्न-भिन्न घटनाएँ इतनी इकाइयाँ हैं कि उन इकाइयोंमें चुनाव करना भी कठिन है। पर फिर भी उदाहरणके तौरपर दो उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं और वे इसलिए, ताकि लोगोंको कार्यकर्ताओंकी लगन और उनके दुःसाहसका पता चल सके और साथ ही इस बातपर भी प्रकाश पड़ सके कि वास्तवमें उन कामोंको करनेवाले कौन व्यक्ति थे।

उदाहरणके लिए मैं आगरेके इन्कम-टैक्स-आफिस और सादाबाद (जिला मथुरा) के बिजलीघरको जलाकर नष्ट करनेकी बातका वर्णन करता हूँ। शायद हिन्दुस्तान-भरमें इन्कम-टैक्स-आफिस मय पूरे कागजातके आगरेको छोड़कर अन्यत्र नहीं जलाया गया। सितम्बर, १९४२ की बात है। देशमें आन्दोलन और ध्वंसात्मक कार्यकी बाढ़का उतार था; पर यू० पी० में सुचारु रूपसे संगठन-कार्य जारी था। यू० पी० की पुलिसको परेशानी थी कि आखिर आगरे जिले और उसके आसपासके जिलोंमें ध्वंसात्मक कार्योंका ताँता क्यों लगा है? उधर शहरके लोग कुछ ऐसी बात चाहते थे, जिससे लोगोंपर काफी प्रभाव पड़े। इसके लिखनेमें भी अपनेको कोई आपत्ति नहीं कि कई व्यापारी इन्कम-टैक्स-आफिसके जलानेको हमारे कार्यकी कसौटीकी प्रामाणिकता समझते थे। मुसीबत यह खड़ी हो गई थी कि वे लोग भी, जिनका ध्वंसात्मक कार्य तथा आन्दोलन-संचालनसे कोई विशेष सम्बन्ध न था, अपनी टाँग इस कार्यमें अड़ाते थे। उनके दखलसे काममें खलल तो पड़ता ही था। उदाहरणके लिए, आगरेके श्री महेन्द्रजीके कुछ लोग स्वदेशी बीमा-कम्पनीमें जाकर इन्कम-टैक्स-आफिसको जलानेके लिए लाठियाँ माँगा करते थे। यह बात मुझे स्वयं भी मालूम थी और इसकी पुष्टि श्री रामचरन गुप्तने भी की थी। अपने कार्यका ढंग यह था कि जिससे जितना काम लेना हो, उससे उतनी बात कही जाती थी, ताकि एक-दूसरेका सम्पर्क न हो पाये। इसीलिए श्री विजयशरणजीको यह नहीं मालूम कि टेकनीशियन थे कौन और सूबेसे उनका क्या सम्बन्ध था। यदि सब बातोंका पता सब लोगोंको होता, तो भूदेव पालीवाल और लक्ष्मीनारायण पालीवालकी मुखबिरीके कारण कम-से-कम तीन सौ आदमी षड्यन्त्र-केसमें घसीटे जाते। आगरा-नागरी-प्रचारिणी सभाके श्री पुरुषोत्तमने तो अपने झूठे कारनामोंकी वे-वे बातें चारों ओर हाँकीं कि बहुत-से आदमी ठगईमें आ गए।

हाँ, तो आगरा इन्कम-टैक्स-आफिसको जलानेकी बात शहर-भरमें फैल गई कि वह जलाया जायगा। पुलिसको पता चल गया। इन्कम-

टैक्स-अफसरने भी डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटको लिख दिया था कि इन्कम-टैक्स-आफिसके जलानेकी पूरी आशंका है। उसकी रक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए। आगरा उन दिनों सेण्ट्रल कमाण्डका हेडक्वार्टर था। सैकड़ों ही वहाँ सैनिक लारियाँ थीं। करोड़ोंका फौजी सामान था। महत्त्वपूर्ण स्थानोंकी रक्षाके लिए ठण्डी सड़क तथा अन्य स्थानोंमें सशस्त्र सैनिक बिठाये जाते थे। उन्हें आज्ञा दे दी गई थी कि अगर कोई आदमी रोकनेपर खड़ा न हो, तो उसे गोलीसे मार दिया जाय। इन्कम-टैक्स-आफिस स्वदेशी बीमा कम्पनीके आफिसके आगे प्रोटेस्टेण्ट चर्चके कोनेके सामने एक कोठीमें था। कई बार उसको जलानेकी कोशिशकी गई थी। पर सशस्त्र पुलिस और सैनिक दस्तोंके कारण दाल ही न गली और शहरके आदमी इस बातपर तुले थे कि इन्कम-टैक्स-आफिस जरूर जले। बात मर्यादाकी थी। परेशानी तो दूध पीनेवाले मजनुओंसे थी, जो दिखाना चाहते थे कि हमने यह किया और वह किया; पर खतरेकी बातसे वे घबराते थे। सवाल यह था कि आखिर इन्कम-टैक्स-आफिसको कैसे जलाया जाय? एक दिन तो चुपचाप स्वयं मैं प्रोटेस्टेण्ट चर्चके कोनेवाली घासमें मामूली कम्बल लिए छिपा पड़ा रहा कि पेट्रोलिंगका तरीका क्या है। एक दिनके इस प्रकारके निरीक्षणसे मुझे कार्य-प्रणालीके बारेमें काफी सहायता मिली। बसन्तलाल झाको भी आदेश दिया कि पहले रातमें मौका देख लिया जाय कि वहाँ क्या चहल-पहल रहती है। कुछ लोग पासकी बेरियोंके बागमें ही पड़े रहे। जलानेका अन्तिम निर्णय करनेमें मैंने कई दिन लिए। अपनी ओरसे यह प्रयत्न था कि कोई ऐसी गलती न हो जाय, जिससे काम करनेवाले अपनी जान खो बैठें। यों मरनेसे डरनेवाला कोई न था; पर मूर्खतासे जान देना तो ठीक न था। फिर एक-एक अच्छा कार्यकर्ता एक-एक लाखके बराबर था। एक तरकीब यह की गई कि इन्कम-टैक्सके कागजात देखनेके बहाने बसन्तलाल झाको दफ्तर भेजा गया, ताकि वहाँका नक्शा समझनेमें आसानी हो। जब सब बातका पता चल गया, तो कागजपर स्केच बनाना गया। चारों ओरके मार्ग

दिखाए गए। कमरोंके नक्शे बनाए गए कि किस कमरेमें किस आल-मारीमें क्या सामान है? टेलीफोन कहाँ है? कैसे वहाँ जाया जाय और फिर कैसे निकला जाय।

इन्कम-टैक्स-आफिससे हरिपर्वत थाना मोटरसे मुश्किलसे पाँच मिनट का रास्ता होगा। दूसरी कठिनाई यह थी कि इन्कम-टैक्स-आफिससे लगी माइकल नामक एक ऐंग्लो-इण्डियनकी कोठी थी। माइकलके पास अच्छे हथियार थे। तीसरी बात जो थी, वह यह कि इन्कम-टैक्स-आफिसकी सीमासे लगा महतरोंका एक छोटा-सा उपनिवेश है। लाठी चलानेमें महतर लोग बड़े प्रवीण होते हैं। बहादुरी उनकी प्रसिद्ध है। स्वामिभक्ति, वीरता और अपने हितैषीके लिए मर-मिटनेकी भावना उनमें कूट-कूटकर भरी है। इसलिए इस बातका भी खयाल रखना था कि महतरोंसे भुगतनेके लिए काफी प्रबन्ध किया जाय। माइकलसे भी मुका-बला होनेकी आशंका थी। पर बड़ी आवश्यक बात यह थी कि इन्कम-टैक्स-आफिसपर आक्रमण कब और कैसे किया जाय? कुँवर बैजनाथसिंह भदौरिया और मेरी चर्चा और पारस्परिक परामर्श हुआ। अन्य कार्य-कर्ताओंसे भी विचार-विनमय हुआ। सबकी राय थी कि रातमें ही इन्कम-टैक्स-आफिस जलाया जाय। मैं एक दिन रातको उसके निकट रहकर स्थिति देख आया था। मैंने साफ कह दिया कि यदि रातमें जलाने-का प्रयत्न किया गया, तो सब आदमियोंके मारे जानेकी पूरी अशंका है। नक्शा सामने रखा था। किसको टेलीफोनका तार काटना है, किसको किधरसे आना है, क्या-क्या हथियार किसको रखने हैं, आवश्यकता पड़ने-पर कौन-कौन लाठी चलायेगा, कौन सब कमरोंसे सामान उठाकर—विशेषकर रेकर्ड उठाकर—एक कमरेमें ढेर लगायेगा और कौन पेट्रोल छिड़केगा? बस, मामला इस बातपर अटका हुआ था कि किस समय आफिसपर हमला हो। मैंने अपने-आपको एक ओर पाया और बाकी सब लोग इस पक्षमें थे कि रातमें ही धावा बोला जाय। मैंने कहा—"इन्कम-टैक्स-आफिसको जरूर जलाना है। उसका जलाना अपनी मान-

मर्यादाकी रक्षा करना भी हो गया है। आवश्यकता पड़नेपर किसी आदमीको कटाया भी जा सकता है; पर जब बचनेकी आशा हो और काम ठीक हो जाय, तब खामखाहके लिए अपने इनेगिने साथियोंको भाड़में झोंकनेसे क्या फायदा ? इन्कम-टैक्स-आफिस जलेगा; पर रातमें नहीं, वरन् दिनमें और ऐसे समयमें, जब पुलिस और सैनिक दस्ते हमलेकी आशंका ही न समझते हों। इस कार्यके लिए मैं आगे रहूँगा और सब लोग मेरे साथ पीछे-पीछे चलें।" यह सुनकर सभी साथियोंने एक स्वरसे कहा—"जैसी आज्ञा होगी, वैसा ही करेंगे; पर अपने रहते हुए पहले आपको नहीं मरने देंगे, इसलिए आपकी व्यवस्थाके अनुसार काम होगा। आप निश्चिन्त रहें।" बस, फिर क्या था। फैसला हुआ कि अगले ही दिन शामके चार और पाँचके बीच इन्कम-टैक्स-आफिसको खत्म कर दिया जाय। सब काम करनेमें सात-आठ मिनटसे ज्यादा न लगें, वरना मुकाबला हो जायगा। श्री रामशरणके सुपुर्द सड़कवाले लट्ठेपर चढ़कर तार काटनेका काम था। मनोहरलालके सुपुर्द और काम-के साथ महतरोंके सम्भावित हमलेसे मुकाबला करना था। आफिसकी सीमासे सटी माइकलकी कोठीसे राइफल फायरसे भुगतना था। विजय-शरणके सुपुर्द आफिसमें काम करनेवालोंको ले जाकर एक जगह कर रखना था। इसी प्रकार सब काम सुपुर्द कर दिये गए। जिन लोगोंने उसके जलानेमें भाग लिया, उनके नाम हैं—सर्वश्री विजयशरण चौधरी, रामशरणसिंह, गोपीनाथ शर्मा, मनोहरलाल शर्मा, रमेशदत्त पालीवाल, भूदेव पालीवाल, रूपराम पालीवाल और बसन्तलाल झा। इनके अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति इन्कम-टैक्स-आफिसकी कोठीकी सीमाके अन्दर नहीं घुसा। बतक्कड़ों और दूध पीनेवाले मजनुओंमेंसे किसीके पैर लड़-खड़ाते थे, तो किसीके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं और वे सब कोठीके दरवाजेसे ही नौ-दो ग्यारह हो गये। आखिर ऐसा क्यों न होता :—

काबेसे इन बुतोंको भी निस्बत है दूरकी।

जैसे ही इन्कम-टैक्स-आफिसकी सीमाके भीतर घुसे, तो आफिस

बन्द हो रहा था। एक लम्बे-तगड़े मियाँजी कोठीके बाहर मिले। उन्हें हिरासतमें लेकर पीछे ले जाया गया, तो वे जरा अकड़े; पर जैसे ही पिस्तौल उन्हें दिखाई गई, वैसे ही उल्टे पाँव वे चले दिए। कुर्सी निकाल-कर बरामदेमें उनको बैठाया गया। अभीतक आफिसमें काम हो रहा था। दो अन्य क्लर्कोंको भी बरामदेमें ही बैठा दिया गया। सब स्टाफके आदमियोंसे कह दिया गया कि न वहाँ कोई रुपएकी खातिर आया है, न किसीकी जान लेने। जिस किसीका कोई निजी सामान हो, वह तुरन्त ही हटा ले। विरोध करनेसे जानका खतरा है, वैसे किसीसे कुछ कहना नहीं। अंगरेजोंने बिना देशकी स्वीकृतिके हमारे देशको महायुद्धमें झोंक दिया है, इसलिए युद्ध-प्रयत्नोंको हमें विफल करना है। एक हट्टे-कट्टे क्लर्कको कोठीके आक्रमणकी बात तब मालूम हुई, जब काम शुरू हो गया। घबराकर वह उठा और एक कार्यकर्तासे निकलनेके लिए अकड़ने लगा। मनोहरलाल, विजयशरण, गोपीनाथ, बतन्लाल और रमेशदत्त पालीवाल—ये सब सशस्त्र थे। देखभाल और सम्भावित हमलेके मुकाबले-के लिए भी ये लोग डटे हुए थे। शेष आदमी भीतर सामान इकट्ठा कर रहे थे। स्मरण रहे, युद्धके कारण आगरा इन्कम-टैक्स-आफिसमें आगरेके ही नहीं, वरन् अन्य पूर्वी जिलोंके हटाये हुए इन्कम-टैक्सके कागजात भी थे। हट्टे-कट्टे महाशय जब अकड़ने लगे, तब एक धक्का दिया गया। घबराकर वे मेजसे टकराये और चीखने लगे; पर वे निकल भागनेमें सफल हुए। इसी बीच महतरोंने लाठियाँ लेकर आक्रमणकी तैयारी की। लाठियाँ लेकर वे जैसे ही बढ़े, उनको खबरदार कर दिया गया कि अगर वे रुकावट डालेंगे, तो गोलियोंका शिकार हो जायँगे। रिवाल्वरें उनकी ओर तान दी गईं। फिर वे उल्टे पैरों ही सहमकर लौट गए। माइकलकी कोठीकी ओरसे कोई आक्रमण नहीं हुआ। अगर होता, तो इरादा यह था कि उसपर फायर किया जाय और उसके हथियार छीन लिये जायँ। ऐसा करनेमें एक-आधके मरनेकी भी परवाह नहीं। इस बीच इन्कम-टैक्स-आफिसकी कोठीके बाहर सड़कपर और अन्य मकानोंपर भीड़ लग

गई थी। उधर सब सामान अथवा कागजात और अलमारियोंपर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दी गई थी। यह सब काम सात-आठ मिनटमें ही हुआ था। सब लोग आग लगाकर पीछेकी ओरसे निकल गए और तितर-बितर होकर अपने स्थानकी ओर आने लगे। ह्वीविट पार्कमें बैठकर जब मैंने फायरब्रिगेडको जाते देखा, तब समझ गया कि पुलिसको खबर हो गई। जो क्लार्क वहाँसे निकल भागा था, उसने पुलिसको अवागढ़-कोठीसे फोन किया था। अगर कार्यकर्ता पाँच मिनट और भी रुक जाते, तो उनकी मुठभेड़ सशस्त्र पुलिससे हो जाती। पर वहाँ काम हो चुका था। कोठीमें इतनी भयंकर आग लगी थी कि कागज ही नहीं, वरन् आगके प्रकोपसे दीवारें भी फट गई थीं। दिन-दहाड़े एक महत्त्व-पूर्ण सरकारी दफ़्तरमें आग लगा दी जाय, तो पुलिस और सेनाके लिए एक बड़ी शरमकी बात थी। यहाँपर यह लिखना भी आवश्यक है कि इन्कम-टैक्सके स्टाफके किसी भी आदमीने जेलमें लोगोंकी जान-बूझकर शनाख्त नहीं की।

सादाबादके बिजलीघरके जलानेकी बात भी यहाँ इसलिए देनी है कि अपने प्रोग्राममें बहादुराबादसे निकलनेवाली हाइड्रो-इलेक्ट्रिकसे सम्ब-न्धित उन कारखानोंको भी नष्ट करनेका हमारा फैसला हो चुका था, जिनसे युद्ध-संचालनमें सहायता पहुँचती थी। सितम्बर १९४२ में मेरठ और बहादुराबादके बिजलीघरोंको नष्ट करनेकी बात तय थी; पर पहले सादाबादके बिजलीघरसे भुगतना था। सादाबादसे टूंडला, फिरोजाबाद, शिकोहाबाद और इटावेतक बिजली जाती है और एक लाइन दयालबाग (आगरे) को आती है। खयाल यह था कि सादाबादके बिजलीघरको बरबाद करनेसे युद्ध-प्रयत्नोंमें काफी हानि होगी। पर अपनी एक कठिनाई थी कि अपने पास बिजलीका कोई मिस्त्री नहीं था। विज्ञानके एम० एस-सी० और बम बनानेवाले तो थे; पर बिजलीका कोई मिस्त्री न था। यह समस्या श्री रामचरन गुप्तने हल कर दी। लक्ष्मीनारायण पालीवालके साथ रामचरनजी मुझसे मिलने आये। साथमें उनके एक व्यक्ति था,

जिसका परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया—"इनका नाम शिवचरनलाल है और फीरोजाबादके रहनेवाले हैं। बिजलीके मामलेमें बड़े उस्ताद हैं। इनसे आप काम लें।" शिवचरनलालका मुझसे मिलना रामचरन गुप्त और लक्ष्मीनारायण पालीवालके अतिरिक्त किसी औरको नहीं मालूम था। रामचरन गुप्त और शिवचरनलाल कभी गिरफ्तार नहीं होते, अगर लक्ष्मीनारायण पालीवालने पुलिससे यह बात न कही होती। अक्टूबर, ४२ में सादाबाद-बिजलीघरको जलानेका प्रोग्राम बना।

आगरेसे सर्वश्री बसन्तलाल झा, मनोहरलाल शर्मा, विजयशरण चौधरी, गोपीनाथ शर्मा और गुरुदयालसिंह सादाबादकी ओरको चले। शामको सादाबादसे आगे दो फर्लांगपर एक मन्दिर है, वहीं टिके। साधुने टिकानेसे इनकार किया। पर बाबाजीको प्रसाद-स्वरूप आगरेकी मिठाई पेठा दिया गया और उनसे कहा गया—"हम लोग दाऊजी (बलदेव) जा रहे हैं। पीछे आनेवाले घरवालोंकी यहाँ इन्तजारी है। सुबह ही चले जायँगे।" सादाबादकी एक दुकानपर खाना भी खाया। सादाबादका वही दुकानदार शनाख्तमें भी आया था और सरकारी गवाहोंमें भी उसका नाम था। बाबाके मन्दिरसे बिजलीघर करीब दो फर्लांग होगा। दो बजेके लगभग सब लोग वहाँसे उठ गये। दूध-जैसी चन्द्रिका छिटक रही थी। प्रकृतिकी नीरवता और चाँदनीके सौन्दर्यसे ऐसा मालूम होता था, मानो परियोंके देशमें हम लोग चले जा रहे हों। बिजलीघरके एक कमरेमें पासका एक किसान भगरी चमार तमाखू पीने आया हुआ था। बिजलीघरके कर्मचारी एक ठाकुरके पास जाते ही भगरीको हिरासतमें ले लिया और ठाकुरके कमरेमें घुसे, तो ठाकुर रजाई ओढ़े लेट रहा था। ट्रान्सफोर्मर मशीनकी चाबी उससे माँगी, तो उसने डाँट दिया—"चलो यहाँसे, ताली-वाली कुछ नहीं मिलेगी।" पिस्तौल जो उसकी ओरको तानी, तो ठाकुरकी सिट्टी गुम हो गई। कह दिया कि हम कांग्रेसके कार्यकर्ता हैं। ट्रान्सफोर्मर बरबाद करने आये हैं, किसीको मारने या सताने नहीं। ठाकुरने उठकर ताला खोला। वैसे ताला

काटनेके लिए शिवचरनलाल और बसन्तलाल झा जुटे थे; पर ताला अभी टूटा न था। ठाकुरने आकर ताला खोला और दयालबागका स्विच आफ कर दिया। इतनेमें शिवचरनलालने ट्रान्सफोर्मरमें भरे क्रूड आयलको खोल दिया। तेल रोता हुआ-सा बहने लगा। उधर दूसरे कमरेमें करीब ही रेकर्ड-कीपर सोया हुआ था। ठाकुरने पूरा सहयोग दिया। रेकर्ड-कीपरने अपने कमरे और हातेके किवाड़ लगा रखे थे। जगानेकी कोशिश की गई, तो उसने ऐसी चुप्पी साधी, मानो साँप सूँघ गया हो। जब धमकी दी गयी कि किवाड़ तोड़ उसे निकालकर धुना जाय, तब ठाकुरने आश्वासन दिया कि कांग्रेसके लोग आये हुए हैं; सतायँगे नहीं। उन्हें तो बिजलीघर ही खराब करना है। इस आश्वासनसे उसने किवाड़ खोले और गिड़गिड़ाता हुआ बाहर आया। उससे कह दिया कि डरनेकी बात नहीं है। उसको भी साथ लिया। कागजात भी उठाये। इतनेमें मशीनका तेल निकल जानेसे वह काफी गरम हो चुकी थी। एक भयंकर धड़ाके और बिजलीकी चुँधियानेवाली चमकसे ट्रान्स-फोर्मर नष्ट हो गया। काम खत्म करके सतर्कतासे चल दिये, क्योंकि ठीक सामने सादाबादका थाना था। दयालबागकी ओरका रास्ता पकड़ा। रास्तेमें दयालबागका मिस्त्री भी मिला, जो बिजली ठीक करने सादाबाद भेजा गया था। आठ-दस बजे सब लोग दयालबाग होते हुए आगरे आ धमके।

तोड़-फोड़ (Sabotage) के काममें जो परेशानियाँ उठानी पड़ीं, अपने ही आदमियों—कांग्रेसी कार्यकर्ताओं—द्वारा वचन देकर जो सहायता नहीं दी गई, उसकी शिकायत करना फजूल है। अब तो स्वतन्त्र भारतकी सन् १९४२ के आन्दोलनसे बढ़कर विषमतर समस्याएँ हैं। तब गैरोंसे लड़ाई थी, अब तो अपने घरमें ही निन्दनीय और जघन्य काण्ड हो रहे हैं। सन् १९४२ के आन्दोलनकी कश्ती किनारे लग गई, तब शिकायत किसकी।

सफ़ीना जब किनारे पै आ लगा 'ग़ालिब',
ख़ुदासे क्या सितमोजोर नाख़ुदा कहिए।

आन्दोलन-संचालनजन्य व्यय

सन् १९४२ के आन्दोलनके विरोधियोंके सामने—विशेषकर तत्कालीन नौकरशाही और विदेशी विरोधियोंके सामने—बड़ा भारी प्रश्न यह था कि इतने बड़े आन्दोलनका खर्च कौन और कैसे चलाता है। कांग्रेस फण्ड तो जब्त कर ही लिए गये थे। खादी-भण्डारोंपर ताले डाल दिये गये थे। कांग्रेस-भक्तोंपर कड़ी नजर थी। अपनी-सी करनेमें हमारे शत्रु कुछ चूके नहीं थे; पर फिर भी आन्दोलन चला और आन्दोलनके उचित कार्यके लिए—ध्वंसात्मक कार्यतकके लिए—रुपएकी कोई विशेष कमी नहीं थी। ९ अगस्त सन् १९४२ को जब सरदारगृहमें अपनी मुलाकात भाई बालकृष्ण शर्मासे हुई, तब बालकृष्णजीकी भावभंगी कुछ दूसरी ही थी। ८ अगस्तके मूल प्रस्तावका विरोध करनेवाले बालकृष्ण शर्मा और ९ अगस्तके बालकृष्ण शर्मामें आकाश-पातालका अन्तर था। ८ अगस्तके प्रस्तावसे ९ तारीखको बालकृष्णजी उतने ही सहमत थे—बल्कि किन्हीं अंशोंमें कुछ आगे भी थे—जितना कि कोई भी कांग्रेसमैन हो सकता था। क्षोभ और वेदना, उत्साह और लगनकी धूपछाँह बालकृष्णजीके चेहरे-मोहरेपर थी। योजना-सम्बन्धी हमारी बातें हुईं और दो हजार रुपयेका प्रबन्ध बालकृष्णजीने वहीं कर दिया। चलते समय बम्बई स्टेशनपर हमारी मुलाकात विक्टोरिया टरमिनस पर श्री सोहनलालजी पचीसिया, श्रीमती पचीसिया और बदरी बाबूसे हुई। उन्होंने छै-सात सौ रुपये स्टेशनपर ही मुझे दिये। श्रीमती पचीसियाकी अन्तरात्मा और देशभक्ति उनके प्रत्येक शब्द और हृदयके दो द्वारों—आँखों—से मूर्तिमान होकर मानो सामने खड़ी थी। श्रीमती पचीसियाने आग्रह किया कि अगर मैं चाहूँ, तो उनके गहने भी ले सकता हूँ। उन्होंने बड़ी विनयसे कहा कि आर्थिक संकटके कारण आन्दोलनको धक्का नहीं लगना चाहिये। श्रीमती पचीसियाके उत्साहसे

मुझे कितनी शक्ति मिली, इस बातको शायद पचीसियाजी और बदरी बाबू भी नहीं समझ सके। जिस आन्दोलनके लिए हमारी बहनें सर्वस्व देनेको तैयार हों, उस आन्दोलनको कोई भी दानवी शक्ति नहीं दबा सकती थी। रुपएके मामलेमें मेरा निजी अनुभव यह है कि उचित कार्यके लिए उचित पात्रके पीछे रुपया इस प्रकार चलता है, जिस प्रकार पालतू कुत्ता अपने मालिकके पीछे। आगरेसे शाहजहाँपुरके श्री भगवान सहाय पहले ही पहुँच गये थे। बम्बईसे तार और बिजलीके लट्ठे काटनेकी एक मशीन लगभग ५००) में खरीदी। दर्जनों छोटी-बड़ी प्लासें, तार और अन्य सामान खरीदा। श्री भगवान सहायको अपना बैरा बनाया। कुछ सामान सेकेण्ड क्लासमें रखा और कुछ भगवान सहायजीके पास सर्वेण्टके डब्बेमें। उस डब्बेमें एक अंगरेज भी था। हर जंक्शन स्टेशनपर बैरासाहब यानी भगवान सहाय सलाम झुकाते और चुपचाप बता जाते कि उनके आसपास खुफियाके कितने आदमी चल रहे हैं। बम्बईसे राजामण्डीके लिए पुलिसने पहले ही तार कर दिया था कि अमुक नामका आदमी उतर रहा है, जाँच की जाय। मैंने मध्य-प्रान्तके श्री निरंजन सिंहको एक दिन पहले ही आगरे भेज दिया था, ताकि वे राजामण्डी स्टेशनपर पं० हरिशंकर शर्मा और पं० केदारनाथ भट्टको बुला लायें। जी० आई० पी० मेल जब राजामण्डीपर रुका, तब मैं बड़ी सावधानीसे उतरा और शायद प्लेटफार्म टिकट मैंने ले लिया और बम्बईके टिकट भट्टजी और पं० हरिशंकरजीको दे दिये और टिकट बाबूसे कह दिया कि सामान नौकर ला रहा है। हम सब लोग बाहर हो गए।

आगरेमें १६ अगस्तको आकर आन्दोलनका भार लिया। बादमें कांग्रेसी मित्रोंके आग्रहसे मैं यू० पी० के ध्वंसात्मक कार्यका डाइरेक्टर कैसे बना, यह बात तो एक पृथक् लेखकी है। यहाँ इतना ही लिखना काफी है कि रुपये-पैसेके मामलेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई और न मैंने उसके लिए कोई चन्दा ही किया। कुछ लोग तो आन्दोलनमें ऐसे

आते ही हैं, जिनका ध्येय ही यही होता है कि 'बिन चन्दा न बन्दा कहीं फटके'। पर अपने तो वह बन्दा नहीं हैं, जो चन्दावालोंके पीछे चलें या विना उसके काम ही न करें। तब सवाल हो सकता है कि फिर इतना बड़ा आन्दोलन और इतना खर्च कैसे चलाया? रुपया कहाँसे आया और उसका हिसाब कैसे था! इतने हथियार, इतना सामान और इतना लम्बा-चौड़ा संचालन क्या कोरी बातोंसे हो गया? नहीं, विना रुपयेके तो वह नहीं हुआ। पर अपना दावा यह जरूर है कि मुझे न तो चन्देके लिए घूमना पड़ा और धनाभावके कारण मैंने कोई डाका डाला और न रुपएका कुछ दुरुपयोग ही किया। हाँ, अनेक लोगोंकी शिकायत यह जरूर थी कि मैं दिल्ली या अन्य स्थानोंकी भाँति रुपएको बहा नहीं रहा हूँ। सार्वजनिक धन एक जबरदस्त थाती है और उसका दुरुपयोग अथवा जान-बूझकर अपव्यय एक पाप है। मुझे तो यह बात बतानेमें भी तनिक संकोच नहीं—और संकोचकी इसमें बात हो ही क्या सकती है—कि मेरे द्वारा जो आन्दोलन संचालित हुआ, उसके लिए सूबेसे मेरे पास केवल ५००) ही भाई केशवदेवजी मालवीय (अब माननीय पं० केशवदेव मालवीय, मन्त्री यू० पी०) से आये। ५००) मेरठके लिए भी मेरे पास आए थे, जो मैंने मेरठके डा० चौधरीको बड़ी कठिनाईसे अपने हाथों दिये।

यह मैं मानता हूँ कि आन्दोलनमें रुपएका दुरुपयोग हुआ और कुछ अपव्यय भी। अपव्यय और दुरुपयोगका कुछ अंश तो क्षम्य भी है। अनुभवहीनता, अज्ञान और उचित प्रबन्ध न होनेके कारण। पर आज इस लेखमें उन छद्मवेशी क्रांतिकारियोंकी चर्चा नहीं करनी है, जो बम्बईमें बैठे मोटे हो रहे थे और जेब-खर्चमें जिन्होंने कई-कई सौ माहवारी खर्च किये। स्वयं लेनिनने लिखा है कि क्रान्तिके दिनोंमें कुछ व्यक्ति ऐसे पैदा हो जाते हैं, जो क्रान्तिकी आड़में अपना उल्लू सीधा करते हैं! वर्षा-ऋतुमें जैसे साँप-बिच्छू बढ़ जाते हैं, उसी प्रकार क्रान्तियों और आन्दोलनोंके दिनोंमें मानवी बिच्छू और मानवी सर्प पैदा

हो जाते हैं। १९४२ के आन्दोलनमें भी ऐसे ही कुछ साँप-बिच्छू पैदा हो गए थे। बिना उनके बारिशकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनसे तो बचनेकी आवश्यकता है और उचित अवसर पाकर उन्हें कुचलनेकी भी जरूरत है। आगरेमें बाकायदा केन्द्रीय समिति थी और कांग्रेस-आन्दोलनके लिए उसीके पास रुपया जमा होता था। आगरेमें बम बनाने और क्रान्तिके नामपर कुछ व्यक्ति सार्वजनिक धनका दुरुपयोग कर रहे थे और अपने कारनामोंको बढ़ा-चढ़ाकर कहते थे। आते ही जब मैंने यह आज्ञा जारी कराई कि इस मदके लिए बिना मेरी आज्ञाके कहीं रुपया न जाय, तब कई कथित क्रान्तिकारी घबराये और बमोंके लिए रुपयेकी माँग करने लगे। बम बनानेपर अपने एक लबरे क्रान्तिकारीसे जब बातें हुईं, तब उस लबरे कथित क्रान्तिकारीने वह दूनकी हाँकी कि उसके द्वारा बने बमसे बात-की-बातमें दीवार उड़ सकती है। दर्जनों आदमी मर सकते हैं। उस शेखीखोरको क्या मालूम कि स्वयं मैं उन क्रियाओंसे परिचित था। शेखीखोर महाशय एक प्रकारसे नानीके सामने ननियावरेकी बातें कर रहे थे। मैंने उनसे कह दिया कि केन्द्रीय स्थानसे वे सब चीजें बनेंगी और बढ़िया चीजें बनेंगी। उसके लिए उन्हें रुपया नहीं दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त वे महाशय वास्तविक कार्यकी अपेक्षा जुबानी जमा-खर्च ज्यादा करते थे। रणक्षेत्रमें वास्तविक कार्य ही सर्वोत्तम सर्टिफिकेट है। उन महाशयका मानसिक स्वास्थ्य खराब था और शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगड़ा हुआ था। जानपर खेलकर काम करनेकी उनमें क्षमता भी न थी। उनकी बातें गोंठनेकी दक्षताकी दीवार भी जल्दी ही ढह गई। साथी उनका मजाक बनाने लगे। बस, फिर क्या था। कुछ अकर्मण्य और डरपोक व्यक्तियोंको लेकर कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलनसे अलग होकर उन्होंने आन्दोलन चलानेका प्रयास किया। उनमें एक तो ऐसा ठग था, जो कोटा और ग्वालियरसे डेढ़-डेढ़ सौ रुपएमें रिवाल्वर लाता और ब्रिटिश इण्डियामें ३००)-४००) में बेचकर धंधा चलाता था। अपने लोगोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं

था। शुरू-शुरूमें एक या दो बार मुझे वह ठग सका। बादमें उसकी पतंग काट दी। पर भारतवर्ष विशाल देश है और क्रान्तिके नामपर उन दिनों ठगई करना सम्भव था। यहाँपर उन सब व्यक्तियोंके नाम जान-बूझकर नहीं दिए जाते हैं। अगर सूबा-कांग्रेस-कमेटी इन नामोंको चाहे, तो मैं मित्रोंके परामर्शके बाद नाम दे सकता हूँ। वैसे अगर किसीकी दबी-ढकी बनी रहे, तो अपनेको उससे आपत्ति क्या है। ठगईके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सब ही बरते गए। एक महिलाने तो यहाँतक धमकी दी कि अगर उसको रुपया नहीं दिया जायगा, तो वह हमें गिरफ्तार भी करा देगी। उस महिलाको हमने लिखकर भेज दिया कि ऐसी धमकियोंसे तो मैं डरनेवाला नहीं। मैं अपना काम करता हूँ और वह अपना करे यानी पुलिसकी मुखबिरी करे। पर डरा-धमकाकर पैसा मुझसे कोई नहीं ऐंठ सकता। नागरी-प्रचारिणी सभा आगरेमें रहनेवाले एक विद्यार्थीने मेरे पास लिखकर स्लिप भेजी कि अगर उसको १००) नहीं दिए जायँगे, तो वह गिरफ्तार करा देगा। उन सब विभीषिकाओंसे अपने ऊपर कोई असर नहीं पड़ा, वरन् धमकी देनेवालोंके प्रति मेरे दिलमें उपेक्षा ही पैदा हो गई।

आगरेमें तो नहीं, आगरेके बाहर सूबेमें लोगोंका खयाल यह है कि आलू-कारखानेके मालिक श्री प्रभुदयाल भार्गवने आन्दोलनमें रुपए-पैसेसे बड़ी मदद की। यह बात जुबानी तो मैंने शुरूसे कही है और आज लिखनेका अवसर भी आया है कि जहाँतक आन्दोलनका सम्बन्ध है, वहाँ-तक श्री प्रभुदयाल भार्गवने एक भी पैसा नहीं दिया। फैक्टरीमें कार्यकर्ताओं-के लिए जो-कुछ खाने-पीनेका प्रबन्ध था, उसमें भी श्री प्रभुदयाल भार्गव-का कुछ रुपया नहीं लगा। आगरेमें कहीं भी आन्दोलनके लिए उन्होंने चन्दा नहीं दिया। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा कि किसी आन्दोलनकी अपेक्षा व्यक्तियोंमें उन्हें अधिक रुचि है। श्री प्रभुदयाल भार्गवके हम आभारी इसलिए जरूर हैं कि उन्होंने फैक्टरीमें रहनेकी इजाजत दे दी। पर यह लिखना भी अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा कि उन्होंने किसी

राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर ऐसा किया। उन्होंने तो एक प्रकारसे हमसे सौदा किया था। श्री प्रभुदयाल भार्गवकी फैक्टरी युद्ध-प्रयत्नोंमें सहायक हो रही थी, उस कारबारको नष्ट-भ्रष्ट करनेका प्रोग्राम था ही। गलतीसे यह समाचार उनके पास पहुँच गया। श्री प्रभुदयाल भार्गवको अपनी चातुरी और तिकड़सपर नाज था। आगरेमें इसी तरहकी एक दूसरी फैक्टरी थी। सौदा यों पटा कि उनकी फैक्टरीको बख्श दिया जाय और दूसरीको खत्म कर दिया जाय। यह मैं और पं० शम्भूनाथ चतुर्वेदी अच्छी तरह समझ सके कि अगर दूसरी फैक्टरी खत्म कर दी गई होती, तो उसके ठेके भी भार्गव महोदयको मिल जाते। हमारा पूरा प्रोग्राम था। दो बार कोशिश भी की गई; पर उचित समयपर आदमी न पा सके और फैक्टरी बच गई। श्री प्रभुदयाल भार्गवने खयाल किया होगा कि फौजी अफसरोंकी दोस्ती और अंगरेज कप्तानकी मैत्रीके कारण उनको कोई गिरफ्तार नहीं कर सकता; पर उन्हें क्या मालूम कि अंगरेज अपने साम्राज्यकी रक्षाकी खातिर अपने अति प्रिय हिन्दुस्तानी मित्रको बलि चढ़ा सकते हैं। यदि कहीं भार्गव महाशयको इस बातका अनुमान भी होता कि उनकी गिरफ्तारी हो सकेगी, तो वे हजरत अपनी पीठपर हाथ भी न रखने देते। आगरा सेण्ट्रल जेलमें श्री प्रभुदयाल भार्गव और उनके जिगरी दोस्त श्री गोविन्द सहाय (वर्तमान पार्लमेंटरी सेक्रेटरी) ने हमें जब परेशान किया, तब हमें अपनी यह गलती महसूस हुई कि साध्यकी अपेक्षा साधनोंका भी शुद्ध और पवित्र होना आवश्यक है। तुलसीदासके ये अमर वचन याद हो आते थेः—

जेहि जय होय सो स्यंदन आना।

पर सन्तोष इस बातसे हो जाता था किः—

वह अपनी खू न छोड़ेंगे, हम अपनी वज़ै क्यों बदलें;
सुबक सर होके क्या पूछें कि हमसे सर-गिराँ क्यों हों ?

मुझे जब आन्दोलनके लिए रुपए-पैसेकी जरूरत पड़ती थी, तो आगरे-

में केवल तीन व्यक्तियोंसे ही मुझे सरोकार था। वे व्यक्ति हैं सर्वश्री चौबे जयगोपालजी, कालीचरन तिवारी और सूरजभान जसौरिया। एक-एक पैसेका हिसाब रहता था। मैंने तो यह आग्रह किया था कि आन्दोलनके लिए मैं बजट बना दूँ और वे रुपए देते रहें और अपना कोई आदमी हिसाब-किताबके लिए रखें; क्योंकि युद्ध-संचालक और उग्र आन्दोलन-संचालकके जिम्मे रुपया इकट्ठा करना और प्रत्येक बातकी गूढ़तम जानकारी रखना सम्भव नहीं। इसलिए चन्दा इकट्ठा करनेकी कमेटीसे मैंने कोई सम्बन्ध न रखा। पं० जयगोपाल चौबे स्नेह, सचाई और वजेदारीमें अपना सानी नहीं रखते। धुनके पक्के, बातके पूरे, दिलके धनी, सचाई और ईमानदारीमें कठोर, मुसीबत तथा दुःख-दर्दमें मोमसे पिघलनेवाले, हिसाबमें कौड़ी-कौड़ीके सच्चे—मेरा विश्वास करते हैं। ऐरा-गैरा कोई रुपया लेने जाता, तो वे काटने दौड़ते; पर मेरी बनावटी नामकी स्लिप पाकर वे सब काम छोड़कर दौड़ते। शामतक मैं हिसाब भेजता। आगरेमें पं० कालीचरन तिवारीका एक विशेष स्थान है। वे कांग्रेसके एक स्तम्भ हैं। हँसी-मजाकमें वे दसों मोर्चोंपर लड़ सकते हैं। आदमीकी नसको बात-की-बातमें पकड़ते हैं। बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं, पर समझदारीमें बड़ों-बड़ोंके कान काटते हैं। बिरादरीसे ब्राह्मण, पर व्यापारमें बनियोंके गुरु। आगरेमें कोई भी कांग्रेसका बड़ी रकमका चन्दा बिना तिवारीजीके हो नहीं सकता। उनके दिलमें बैठना आसान नहीं। रोजाना अँधेरेमें उनसे मन्त्रणा होता। पुलिसको वे झाँसे देते; मानो तिवारीजीका आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं। यों तिवारीजी, चौबेजी और बल्लाजी अभिन्न-हृदय मित्र हैं। श्री सूरजभान जसौरियासे आन्दोलनसे पहले मेरा कोई विशेष परिचय नहीं था। तिवारीजीके वे मित्र हैं। श्री सूरजभान जसौरिया बदनाम डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट शिवदेसानीसे मिलते थे। यों तो उनके मकानके आसपास खुफिया तैनात रहती और वहाँ आने-जानेवालोंपर नजर रखती; पर रातमें ९-१० बजेके करीब मैं निस्संकोच भावसे चला जाता, कभी-कभी खाना भी खाता। तिवारीजी और चौबेजीके जेल जानेके बाद रुपएकी मदद जसौरियाजीसे

ही मिलती रही। उदाहरणके लिए श्री उल्फतसिंह चौहानने मुझे चिट्ठी लिखी कि उनके ३० साथियोंकी हालत बहुत खराब है। खाने-पीनेतककी तकलीफ है। मैंने वह चिट्ठी तिवारीजी और जसौरियाजीको दिखाई और कहा कि उन आदमियोंके खाने-पीनेका प्रबन्ध होना चाहिए। मैंने एक सुझाव रखा कि उन तीसोंके पास रुपए अलग-अलग प्रतिमास भेजे जायँ और भेजनेकी जिम्मेदारी रहे जसौरियाजीकी। उल्फतसिंहजीसे तीसों व्यक्तियोंके नाम और पते मँगा लिए और तीन सौ रुपये मासिक उल्फत-सिंहजीके पास चार महीनेतक मैं भिजवाता रहा। अलग-अलग प्रत्येक व्यक्तिके पास रुपये भेजनेका प्रबन्ध न हो सका। उन तीस व्यक्तियोंमें-से एक व्यक्तिको, जो धीरपुराके थे, मैं आगरे बुलाना चाहता था कि वे आकर रोटीका ही प्रबन्ध अपने हाथमें ले लें। श्री जगनप्रसाद रावत और मैंने उनके हाथकी बनी बढ़िया रोटियाँ पहले खाई थीं। उनके पास खबर भेजी गई, पर वे न आ सके। अपनी तरफसे तो उनके लिए दस रुपया मासिक जाता ही रहा।

रुपए-पैसे-सम्बन्धी अनेक बातोंमें एक बड़े मजेकी बात यह है कि एक दिन बन्धुवर पं० हरिशंकर शर्माके बड़े लड़के कृपाशंकरने आकर कहा कि एक डाक्टर हैं, जो आगरेका जमुना-पुल उड़वा सकते हैं; पर उन्हें आद-मियों और रुपयोंकी कुछ जरूरत है। कृपाशंकरको न तो आन्दोलनकी रूपरेखाका पता था और न ध्वंसात्मक कार्यका शास्त्रीय ज्ञान। मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि कथित डाक्टरकी बातोंमें कुछ ठगी-सी है। मैंने कहा कि अमुक दिनको अमुक समयमें उनको भेज देना, मिलकर बातें कर लूँगा। डाक्टर महाशयका मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था। जब नियत समयपर वे आए, तब पहला प्रभाव ही मुझपर यह पड़ा कि कोई शौकीन मिजाज बाबूसाहब हैं—जुबानी जमाखर्च करनेवाले—मन्त्र फूँककर किसी दूसरेको साँपकी बमीमें हाथ डलवानेवाले। आते ही उन्होंने कहा—'मैं शर्माजीसे मिलना चाहता हूँ।' मैंने कहा—'कहिए, क्या कहना है? मैं आपकी सब बातें उनतक पहुँचा दूँगा।' वे

बोले—'मुझे खास बातें करनी हैं।' मैंने कहा—'आप डाक्टर हैं और पुल उड़ानेकी बात करनी है। आप मुझे समझाएँ। मैं कह दूँगा।' नाक-भौं सिकोड़कर एक विशेषज्ञकी भाँति उन्होंने अपनी आल्हा गाई। सवाल था पचीस हजार रुपएका। उनकी योजना थी कि पीपोंको बाँधकर २०-२५ आदमी जमुनामें तैर जायँ और पुलके पीलपायोंमें डाइनामाइट लगा दें और बस वहाँसे तैर जायँ। उन्होंने डाइनामाइटके लानेका भी प्रबन्ध किया था। तैराक मुझे देने थे। मैंने कहा—'मैं आपको एक ऐसी योजना बता सकता हूँ, जिससे कुछ ही क्षणोंमें ब्रिटिश साम्राज्यके सब बारूद-घर उड़ जायँ और लन्दन ज़मीदोज़ हो जाय।' अन्तमें मैंने कह दिया कि शेखचिल्लीकी बातोंमें मैं नहीं आ सकता। आजमानेके लिए आग्रह करने-पर १२५) उनको दिए गए। ५ डाइनामाइट स्टिक्स उन्होंने दीं; पर वे मेरी ही मँगाई हुई थीं। एक दोस्तने उनकी मार्फत भेज दी थीं। उनकी कीमत मैं पहले ही अदा कर चुका था। डाक्टर महाशयसे कई बार तकाजा किया गया कि वे १२५) लौटा दें; पर उनके तेज हाजमेमें वे १२५) भस्मीभूत हो गए और आजतक वे रुपए देते हैं।

हो चुके कतै ताल्लुक़ तो जफ़ाएँ क्यों हों;
जिनको मतलब नहीं रहता वह सताते भी नहीं।

रुपए-पैसेके मामलेमें इस सूबेवालोंको एक बात और भी नहीं मालूम, सिवा श्री राधेश्याम शर्मा और डाक्टर केसकरजीके। एक दिन अचानक आगरेमें श्री सोहनलाल पचीसिया आए और मुझसे उन्होंने बम्बईवाली बात दुहराई कि रुपए-पैसेकी कमीसे आन्दोलन ढीला नहीं पड़ना चाहिए। मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि कहीं पचीसियाजी गिरफ्तार न हो जायँ; क्योंकि स्पेशल ब्रांच मेरी गिरफ्तारीके लिए यू० पी०, बिहार और बम्बईमें चक्कर लगा रही थी और मैं भी कोई चुप नहीं बैठा था। कभी पुलिसवालोंके साथ सफर करना पड़ता, तो कभी रेलमें पुलिस अफसरोंसे अपने ही प्रति गालियाँ सुनता। उनकी क्रोधाग्निमें मैं यह-कहकर और

आहूति दे देता कि साहब, वह बड़ा खतरनाक आदमी है। आप लोगोंसे धोखे-धड़ीमें मिल भी लेता होगा। हमारे तो व्यापारको ही उसने चौपट कर दिया।

पचीसियाजी यह कहने आए थे कि मैं उन्हें अधिकसे अधिक दो ऐसे आदमियोंसे परिचय करा दूँ, जो विश्वस्त हों, जो रुपएका दुरुपयोग न होने दें और जो मेरी गिरफ्तारी या मारे जानेके बाद उनसे रुपया ले सकें। मैंने कहा कि दिल्लीमें मैं ऐसे दो व्यक्तियोंका परिचय करा दूँगा। दरियागंजके एक मकानमें श्री सोहनलाल पचीसिया टिके थे। राधेश्याम-जीको मैं अपने साथ ले गया और उनसे परिचय कराया कि मेरे बाद आप इनका पूरा विश्वास करें और तीसरे आदमीके बारेमें मैं फिर सोचूँगा। स्मरण रहे कि अगस्त, १९४२ से दिसम्बर, १९४२ तक बिना किसी संकोचके पचीसियाजी और श्रीमती पचीसियासे मैं एक लाख रुपया ले सकता था; पर इस बीच उनसे मैंने पाँच हजार रुपएके करीब ही लिए। आवश्यकता उन दिनों रुपएकी इतनी न थी, जितनी कि मर-मिटनेवाले कार्यकर्ताओंकी, जो अनुशासनके नियंत्रणमें काम कर सकें।

फतहगढ़ सेण्ट्रल जेलमें एक धूर्त्तने एक पुराने क्रान्तिकारीसे यह कहा कि अगर उसको पाँच-छः हजार रुपए मैं दिला देता, तो वह उन सब कारखानोंकी बिजलीका खातमा कर देता, जिनमें युद्ध-सामग्री बनती थी। मेरे सामने वह यह बात कहनेका साहस नहीं कर सकता था; क्योंकि आवश्यक कार्यके लिए उन दिनों मैं पाँच हजार तो क्या पाँच लाखका भी प्रबन्ध कर सकता था। पर ठगी और फोकटबाजीके लिए पाँच रुपए भी किसीसे माँगनेका साहस न था।

ध्वंसात्मक कार्य और अन्य संगठनका कार्य सहयोग और सहानुभूति-से ही होते हैं। लोगोंको क्या मालूम—सिवाय तीन-चार साथियोंको छोड़कर—कि यदि हम लोगोंकी गिरफ्तारी ७ दिसम्बर, १९४२ को न हो जाती, तो दिल्लीका गवर्नमेंट रिसर्च इंस्टीट्यूट, मेरठ स्टेशनके करीब-का वह कारखाना जिसमें ७५ हजार गैलन एल्कोहोल तैयार रखी थी

और रुड़की और ज्वालापुरके बीचका हैदराबादका हाईड्रोइलेक्ट्रिकका स्टेशन अवश्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिए जाते। उन सब कामोंके लिए रुपएकी अपेक्षा आदर्शपर मर-मिटनेवाले व्यक्तियोंकी आवश्यकता थी। ऐसे व्यक्ति अपने साथ थे और वे आज भी साथ हैं। कौन जाने हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिए हमारी सरकारको अपनी फौज और पुलिसके अतिरिक्त ऐसे आदमियोंकी जरूरत पड़े, जो पुलिस और फौजके व्यक्तियोंसे अधिक साहसी और बातपर मरनेवाले हैं। आखिर आजादीकी कीमत जो-कुछ अदा की जाय, वह थोड़ी है और आजादीकी लगन और देश-सेवाकी अब जितनी जरूरत है, उतनी शायद अंगरेजी राज्यके समयमें न थी। अब भी तबीयत भरके काम करनेकी इच्छा है। ध्वंसात्मक कार्य तो एक आपत्ति-कालका धर्म था; पर देश-सेवा और आजादीकी रक्षा करनेकी प्रवृत्ति तो पहलेसे भी ज्यादा है। उसकी आवश्यकता भी अब और ज्यादा है। वह सेवा-भावकी प्यास अभी बुझी नहीं है :—

काबा भी गया पर न गया इश्क बुतोंका;
जमजम भी पिया पर न बुझी प्यास जिगरकी।

मुसीबतके साथी

सन् १९४२ की घटनाओंपर दृष्टिपात करनेसे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है, मानो सन् १९४२ के आन्दोलनकी बातें किसी दूसरे ही लोककी बातें थीं। लोगोंकी तोताचश्मी, सच्चे मित्रोंकी बेबसी, कुटुम्बी-जनोंका दारुण दुःख और अनेक कांग्रेस-चर्म-प्रच्छन्न धूर्त्तोंकी लन्तरानियों और कायरताने हृदय-पटलपर अमिट चिह्न अंकित कर दिए हैं। चाणक्यकी उक्ति 'राजगृहे श्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः'की सार्थकता तो प्रायः प्रतिदिन ही सिद्ध होती थी। इस लेखमें उन व्यक्तियोंकी चर्चा नहीं करनी है, जिन्होंने यह समझकर कि इन पंक्तियोंके लेखकको तो फाँसी लग ही जायगी, घरवालोंसे धोखा-धड़ीसे कुछ ऐंठा। वे लोग भी इस लेखके विषयके पात्र नहीं हैं, जिन्होंने, जेलके दिनोंमें, हितैषी होनेके बहाने, पुलिससे ज्यादा सताया और जिनको किसी दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्रमें राष्ट्रीय सरकारकी ओरसे फाँसीकी सजा इसी कारण दे दी गई होती कि उन्होंने रणक्षेत्रपर गए हुए सैनिकोंके स्त्री-बच्चोंको सताया।

× × ×

बम्बईमें सात दिनके भयंकर बुखारके बाद जब खुफिया पुलिसके अफसर बरूचा और उसके साथी मुझे मूर्ख समझकर छोड़ गए, तब शरीर-की दशा कच्चे घड़ेके समान थी। अपने सहारे खड़ा भी नहीं हुआ जाता था। सैण्डहर्स्ट रोड-स्थित मकानमें अशक्त और असहाय पड़ा हुआ था और यह समझमें नहीं आता था कि पथ्य कौन देगा। भगवान्के भरोसे सब बात छोड़कर लेटा हुआ था कि श्री भानुकुमार जैन और श्री नाथू-रामजी प्रेमीकी पुत्रवधू बहन चम्पा और शायद प्रेमीजी भी कमरेमें दाखिल हुए। यमदूतोंके स्थानमें देवदूत आ गए। प्रेमीजीको मालूम था कि मैं बम्बई आया हुआ हूँ और सैण्डहर्स्ट रोडपर टिका हुआ हूँ।

बीमारीका पता उन्हें श्री राधेश्याम शर्मासे मालूम हो गया था। आशंका थी कि कहीं पुलिसको यह पता चल गया कि मुझे प्रेमीजीने शरण दी है, तो इकलौते पुत्रके निधनसे दुखी प्रेमीजीको तथा उनकी विधवा पुत्रवधूको पुलिस जरूर गिरफ्तार कर ले जायगी। उनके दो छोटे-छोटे पौत्रों तथा उनके कारोबारकी क्या हालत होगी, इस बातकी कल्पनामात्रसे ही दिल बेचैन हो जाता था। बहुत समझाया कि वे मुझे आश्रय देनेका खतरा न उठाएँ। पर वहाँ सुननेवाला कौन था? प्रेमीजी और भानुकुमारजी मुझे घोड़ागाड़ीमें डालकर हीराबाग ले गए। सबसे आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि प्रेमीजीके छोटे नातियोंसे जब पूछा गया कि मैं कौन हूँ, तो उनके एक छोटे नातीने फौरन कहा—'छरमाजी।' बच्चेने, जिसे मैं पठान कहता हूँ, बिना मूछोंके और बदले वेशमें पहले कभी मुझे नहीं देखा था। तीन-चार दिनोंकी सेवा-सुश्रूषासे शरीर इस योग हो गया कि रेलमें रखकर वह जा सकता था। सेकेण्ड क्लासकी बर्थ रिजर्व कराई और श्री भानुकुमारने फ्रण्टियर मेलमें बैठा दिया। पाथेयके लिए लगभग दो दर्जन मौसम्बियाँ भी रख दीं।

प्रेमीजीका और इन पंक्तियोंके लेखकका सम्बन्ध प्रकाशक और लेखकका भी नहीं है। लोग प्रेमीजीको केवल एक व्यापारी प्रकाशक, लेखक और विद्वान्के रूपमें ही जानते हैं। पर कितने हैं ऐसे, जो उनके इस विशाल रूपको समझते हैं या उनके इस रूपकी कल्पना भी कर सकते हैं? प्रकाशक, पण्डित और अमीर होना कोई कठिन काम नहीं है, पर मानव होना वास्तवमें बड़ा कठिन है। जीवनके अपने ऊबड़-खाबड़ मार्गमें प्रेमीजीका व्यवहार एक ऐसा स्थल है, जिसकी सुखद और शीतल स्मृति आजन्म स्मरण रहेगी।

× × ×

बम्बईसे दिल्ली आरामसे आया। काम बहुत था और शरीर साथ नहीं दे रहा था। अलीगढ़, आगरा, बदायूँ, कानपुर और लखनऊकी समस्याएँ सुलझानी थीं। बिगड़े हुए कामको सँभालना था। आन्दोलन-

को एक नई प्रगति देनी थी। मन चलता था, पर शरीर साथ नहीं देता था। आशंका थी कि कहीं फिर चारपाई पकड़ ली तो ठिकाना नहीं। आखिर ऐसी जगह थी कहाँ, जहाँ दिमाग कुछ काम कर सके और शरीर कुछ पनप सके। गिरे हुए स्वास्थ्यमें ही यात्राकी ठानी; पर श्री मल्लिकजी और श्रीमती सत्यवती मल्लिकने आग्रह करके रोक लिया। बहन सत्यवती मल्लिकने सेवा-सुश्रूषाका और इलाजका भी प्रबन्ध किया। मामला यहीं-तक नहीं था। मल्लिकजीका मकान एक प्रकारसे हमारा कार्यालय ही बन गया। मल्लिक परिवारने कभी भी हमारे प्रोग्रामके बारेमें कोई बात नहीं पूछी। उन्होंने पूरी जोखिम उठाकर मुझे अपने यहाँ आश्रय ही नहीं दिया, वरन् हमारे मित्रोंको भी वहाँ आकर मिलनेका अवसर दिया। शारीरिक कमजोरीको देखकर सत्यवतीजी मल्लिकने समीपके कविराज मजूमदारजीके यहाँसे मकरध्वजकी १०-१२ खुराकें लानेका भी आग्रह किया। मकरध्वजकी २-३ पुड़ियाँ ही खाई थीं कि मकरध्वजके विधानसे दिल्लीसे अलीगढ़ कार्य-संचालनके लिए जाना पड़ा। यह बात शायद ४ दिसम्बर, १९४२ की है। हिन्दी-लेखिकाओंमें ही नहीं, वरन् सुशिक्षिता और सुसंस्कृता भारतीय नारियोंमें कितनी हैं, जो सत्यवतीजीकी तुलना कर सकें। साहित्य-सेवा केवल अच्छी कहानियाँ, अच्छे निबन्ध, बढ़िया पुस्तकें और प्राणस्पर्शी कविताओंके लिखनेतक ही सीमित नहीं है। साहित्यका यह रूप तो बहुत ही साधारण और एक प्रकारसे निकृष्ट है, हठयोगके समान, जिसका सम्बन्ध उच्चतम अध्यात्मवादसे बहुत कम है। साहित्य-सेवा चरित्र-निर्माण और व्यावहारिक जीवनका एक मुख्य साधन है। अमली जीवनके बिना कोरी बातों और आदर्शोंकी चर्चा ढोंग और धोखा-धड़ी है। और फिर सत्यवतीजी मल्लिककी-सी संस्कृति और भारतीय नारीका हृदय कितनोंको मिला है ? सन् १९४२ की विषमताओं और मुसीबतोंकी मरुभूमिमें सत्यवतीजीका आश्रय मरुभूमिमें शाद्वल भूमिके समान स्मरण हो आता है।

× × ×

आगरेके लोगों और सूबेकी पुलिसका विशेषतया और सूबेके बाहरके लोगोंका साधारणतया यह खयाल है कि आन्दोलनके अपने आगरा-प्रवासके दिनोंमें मैं अपनी गिरफ्तारीके स्थान नारायण-भवन-स्थित आलूकी फैक्टरीमें ही रहा करता था। पर बात ऐसी नहीं है। आलूकी फैक्टरीमें तो मैंने केवल ६-७ रातें ही बिताई होंगी। असल बात तो यह है कि आगरा-प्रवासके लगभग अति भयंकर ४० दिनोंकी रातें, जब पुलिससे प्रायः प्रतिदिन आँखमिचौनी हुआ करती थी, एक ऐसे मित्रके यहाँ बिताईं, जिनका कांग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं और जिनका स्थान पुलिस द्वारा रक्षित था। आन्दोलनके हमारे साथियोंमेंसे तीन-चार व्यक्ति ही उस स्थानको जानते थे। यदि किसी तरहसे पुलिसको उस स्थानकी गन्ध भी मिल जाती, तो हमारे उन मित्र और उनके कुटुम्बकी क्या गति होती, इसकी कल्पना अच्छी तरह की जा सकती है। उन मित्रका नाम बताना अभी ठीक नहीं। श्री जयप्रकाशनारायणजीका सन्देश कि उनसे २३ दिसम्बर, १९४२ को बनारसमें मिला जाय, उसी स्थानपर बनारसके मित्र द्वारा मिला था। हमारे आगरेके आश्रयदाता मित्रको आगरेके ४-५ प्रमुख कांग्रेसमैन ही जानते हैं। तनिक तुलना कीजिए इस आश्रयदाता तथा निष्काम कार्य करनेवाले देशभक्तकी उस 'स्वयम्भू नेता'से, जिसने जरा-सी धमकीसे ही डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटकी कोठीपर जाकर आत्म-समर्पण कर दिया था।

कटियारी रियासत, हरदोईसे हमारा एक दीवानी मुकदमा था। कोर्ट-फीस लगभग १४००) जमा कर दी गई थी; आन्दोलनसे पहले ही। मुकदमेकी पैरवीका कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। आन्दोलनके शुरू होनेसे पहले ही मुकदमा दायर हो चुका था। गिरफ्तारी होनेके बाद तो दुनियासे ऐसा सम्बन्धविच्छेद हुआ कि बाहरका कुछ पता ही न चलता था। तत्कालीन यू० पी० सरकारने कड़े-से-कड़े प्रतिबन्ध लगा दिए। पहिले तो वकीलसे मिलनेमें काफी अड़चनें पड़ीं। अपनी ओरसे तो कोई मिलनेका प्रबन्ध था ही नहीं। अपने वकील पं० शीतलाचरण वाजपेयीसे एक बार

भी पहले मुलाकात नहीं हुई थी। पैरोकार कोई बाहर था ही नहीं। दोनों गवाह पं० जगनप्रसाद रावत और कुँवर बैजनाथसिंह भदौरिया जेलमें थे। रियासतवालोंकी बन आई थी। उनकी ओरसे यह प्रयत्न था कि मुकदमेबाजीमें चाहे कितना ही फुँक जाय; पर मुझे एक पैसा भी न मिले। मैं समझता था कि 'रंग लाएगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।' पर इस बातका अनुमान भी न था कि मुकदमा उन विषम परिस्थितियों-में लड़ा जायगा। जो सरकारकी ओरसे मुकदमा चल रहा था, उसके सामने इस मुक़दमेका खयाल भी क्या हो सकता था। पर हमारे अपरि-चित वकील श्री शीतलाचरण वाजपेयी सचाई और लगनकी सजीव मूर्ति हैं। उन्हें मुकदमेके बारेमें कुछ पता ही न था। यू० पी० सरकारके पीछे पड़कर उन्होंने बहुत दिनों बाद मुझसे एक मुलाकात की। आगरेके डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर शिवदासानी नौकरशाहीके पिट्ठू थे। वकील साहबके साथ एक खुफिया अफसरको भेज दिया कि वह मुलाकातकी प्रत्येक बात सुने। नियम तो यह है कि वकीलसे मुलाकातके समय पुलिस और जेलवाले वकील और उसके मुवक्किलकी कोई बात नहीं सुन सकते। हाँ, उनकी देख-रेखमें मुलाकात होती है।

वकील साहबसे मुलाकात तो हो गई; पर उनकी फीसका प्रबन्ध कौन करता? पैरोकार भी कोई नहीं था। वकील साहबको यह पता चल गया था कि दीवानी मुक़दमेके फैसलेसे पहले यदि मुझे फाँसी हो गई तो उनकी फीस कौन देगा? जब वकील साहब मिलकर चले, तो बैरककी ओर जाते समय मैंने वकील साहबके प्रति ये शब्द गुनगुनाये :—

दाग़े दिल गर नज़र नहीं आता;
बू भी ऐ चारागर नहीं आती।

पर क्या किया जाय। पं० शीतलाचरणकी ईमानदारी और परमात्माकी कृपासे मुकदमेकी तारीखें बढ़ती गईं। महीनों बाद आगराके डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटकी मार्फत यह तार मिला कि कितनेमें समझौता कर लिया जाय? बादमें समझौता पन्द्रह हज़ारपर हो गया।

जब पं० शीतलाचरण वाजपेयी आगरा-षड्यन्त्र-केसके समय नीचेकी अदालतमें मिलने आए और जब मैंने उन्हें धन्यवाद दिया कि उन्होंने पेशगी फीस लिए बिना ही मुकदमा जोरोंसे लड़ा, तब वाजपेयीजीने मुस्कराकर कहा—"मैंने तो पूरी फीस पेशगी लेकर ही आपका मुक़दमा लड़ा था। आपके संगीन मुक़दमेकी बात मुझे खुफिया पुलिससे मालूम हुई थी।" आश्चर्यमुद्रासे मैंने पूछा कि फीसका प्रबन्ध किसने किया? "कलकत्तेके एक आपके मित्र ठाकुर अयोध्यासिंह मुझे १५००) दे गए थे।"—वाजपेयीने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

अयोध्यासिंहजीने इतनी बड़ी रकमका प्रबन्ध किया और उन्होंने किसीको खबर भी नहीं की—इस बातको वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अयोध्यासिंहजीके गुणोंके पारखी हैं। ढोंगी, स्वार्थी और आत्मश्लाघी व्यक्ति अयोध्यासिंहजीको बड़े कड़े शब्दोंमें याद करते हैं। बहुतोंका तो ख़याल है—यह उनकी मूर्खता और अज्ञानका द्योतक है—कि अयोध्यासिंहजीका हाथ 'विशाल भारत'के प्रबन्धमें भी रहता है। कुछ व्यक्ति अपने ढोंग और स्वार्थके चश्मेसे अयोध्यासिंहजीको देखते हैं। हमें मालूम है कि एक बार बन्धुवर पं० बनारसीदास चतुर्वेदीको ५००) की आवश्यकता पड़ी। यह कोई रकम ऐसी न थी, जिसका प्रबन्ध कहीं औरसे नहीं हो सकता था। पर संकोचकी बात थी। अयोध्यासिंह कोई पैसेवाले व्यक्ति नहीं हैं; पर उनके पास दिल है और उस दिलके पीछे एक सच्चे मित्रका मस्तिष्क भी है। अपनी पत्नीके गहने लेकर उन्होंने गिरवी रख दिए और रुपए ले आए। कलकत्तेसे दो-तीन बार अयोध्यासिंहजी आगरे बाल-बच्चोंकी खबर लेने आए। अगर मैं अयोध्यासिंहजीको भाई न मानूँ, तो और क्या मानूँ? अयोध्यासिंहजीको मेरी ओरसे किसी प्रकारकी सहायताकी आशा तो थी नहीं। यह ठीक है कि अयोध्यासिंहका और हमारा लेखक और प्रकाशकका सम्बन्ध है और एक हजार रुपया हमारे हिसाबमें था और शेष ५००) हमारे एक शिष्यने दिये, जो आग्रह करनेपर भी उन्होंने वापस नहीं लिए। कलकत्तेके एक दूसरे मित्र हैं,

जिनके नामका उल्लेख करना अभी ठीक नहीं है। पर उन्होंने बिना किसी हमारी प्रेरणाके कई महीनोंतक ५०) माहवारी भेजे। उन्होंने आन्दोलनमें जिस तत्परता और सूझ-बूझसे जो काम किया, वह तो अद्वितीय है।

'योगी'-प्रेसके श्री राजेन्द्र शर्मा और श्री व्रजशंकर वर्माने जो आत्मीयता दिखाई, उसके लिए तो कोई शब्द ही नहीं मिलते। घर आकर बहुत कोशिश की उन्होंने कि नियमित रूपसे कुछ सहायता कर सकें; पर बच्चे और उनकी माँ किसी प्रकारसे कुछ लेनेको तैयार न थे। तब उन्होंने एक नैतिक दाव खेला। लड़कीके विवाहके नामसे १००) घर जमा कर दिए।

एक वृद्ध मारवाड़ी सज्जनने तो यहाँतक किया कि वे आगरे आए और जबरदस्ती १००) दे गए। जेलसे छूटनेके बाद कृतज्ञता-प्रकाशनके बाद जब रुपए वापस लेनेके लिए उनसे प्रार्थना की गई, तो उन्होंने रुपए वापसतक नहीं लिए। पर दान लेना एक प्रकारसे मीठा जहर है, जिसको पान करनेके लिए उत्कट तपस्या और शिवजीकी-सी शक्ति चाहिए। इसलिए जिन-जिन व्यक्तियोंने जो रुपए वापस नहीं लिए, उतने रुपए अन्य जरूरतवालोंको दे दिए गये हैं। संसारमें एहसान चुकाना सम्भव भी नहीं है।

बन्धुवर पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा (बनारस-म्युनिसिपैलिटीके ऐक्सीक्यूटिव ऑफीसर) ने तो आगरे आकर बहुत चाहा कि किसी-न-किसी प्रकार हमारे पीड़ित कुटुम्बकी सहायता की जाय। श्री ठाकुरप्रसाद साथके पढ़े हुए हैं। लड़कीने इनकार करनेमें जो बड़े-बूढ़ेपनका तरीका अख्तियार किया, उससे पं० ठाकुरप्रसाद शर्माको क्षोभ होना स्वाभाविक ही था। पर इनकार करके जो गौरव लड़कीने अपने घरका बढ़ाया, वह भी कुछ कम नहीं।

'प्रताप' प्रेसने भी मुसीबतमें साथ दिया। जेलसे भाई बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने चि० हरिशंकर विद्यार्थीको घरकी सुध-बुध लेनेके लिए आदेश

भेजा। हरिशंकरजीने घरको पत्र लिखा। पर सहायता लेनेसे लड़कीने जो इनकारी की, उससे 'प्रताप'-परिवारवालोंको खुशी इन मानियोंमें हुई कि लड़की भी किस जीवटकी बनी है। १००) तो लेने ही पड़े। पर अपने कुछ मित्र हैं, जिनमें सर्वश्री हरिशंकर शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जगनप्रसाद रावत, अयोध्यासिंह और शम्भूनाथ चतुर्वेदी ऐसे हैं, जिनसे हम भाईके नाते कुछ माँग भी सकते हैं और उनको भी आवश्यकता पड़नेपर अपनी आधी रोटी बँटानेमें न तो कुछ संकोच होगा और न कोई सहायता और सेवा-की भावना ही उनमें पैदा होगी।

ससुरालवालोंने अलीगंजमें एक मकान खाली कर रखा था। कई बार वहाँसे आदमी आए लिवानेके लिए; पर घरसे बच्चों और बच्चोंकी माँने किसी प्रकारसे कोई सहायता नहीं ली। इन सब बातोंका हमें तो कुछ पता ही न था। आखिर घरका मोरचा कैसे छोड़ा जाता। पर फिर भी हम अपने चचिया ससुर पं० प्रयागदत्तजीके आभारी हैं कि जिन्होंने मुसीबतमें बड़ी ईमानदारीसे बाल-बच्चोंको शरण देनेका प्रयास किया।

× × ×

लड़ाईके दिन थे। एक ओर तो कांग्रेसजन जोरो-सितमके शिकार हो रहे थे और दूसरी ओर मुनाफाखोरों और ठेके लेनेवालोंकी बन आई थी। अपने मकानके मालिक हैं श्रीमान् पं० केदारनाथ भट्ट। मकानका किराया था २२) माहवारी। लगभग तीन वर्षसे मकानका किराया नहीं दिया गया था। भट्टजीकी ओरसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे किराएके लिए कोई माँग नहीं थी। पर ठेकेदारों और अन्य लोगोंने इस बिनापर मकान लेना चाहा कि वे १२५) माहवारी किराया देंगे। दूसरी दलील उनकी यह थी कि जब इतने आदमी जेलमें हैं, तब ८-१०) रुपए मासिकका मकान लेकर कहीं गुजर करनी चाहिए। हमारी बहुत पुरानी धारणा है कि अनुचित मुनाफा लेनेवाला और धोखा-धड़ी करनेवाला—विशेषकर चोरबाजारी करनेवाला—देशका शत्रु नम्बर एक है। लीगी

मनोवृत्तिका वह जनक है। पापाचार और भ्रष्टाचारका वह आगार है। घर खबर भेजी गई मकान छोड़नेके लिए। भट्टजीको लखनऊ चिट्ठी लिखी गई। भट्टजी लखनऊसे आए और लड़कीको आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा—"मालिक मकान मैं हूँ। मकान खाली करनेके लिए जो कोई भी कहे, उसकी तनिक भी पर्वाह मत करो। अपना निजी मकान समझकर रहो। रही किराएकी, सो उसकी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम्हारे पिताके ऊपर है। हम उनसे किराया लेंगे, तुमसे नहीं।" स्मरण रहे कि मकानका किराया पूरे तीन वर्षका एक साथ दिया गया। अनेक कांग्रेसमैनोंने जेलवासी कांग्रेसमैनोंको किराएकी अदायगी न होनेपर मकानसे निकाल दिया था। पर भट्टजीने जो आत्मीयता और अनुग्रह दिखाया, उसके लिए तो उनका चिर ऋणी रहना पड़ेगा। पं० केदारनाथ भट्टके तीखे व्यंग्योंके पीछे कितनी सचाई, सहृदयता और ईमानदारी है, इस बातको ढोंगी और स्याह दिलवाले नहीं समझ सकते।

× × ×

मक्खनपुरके श्रीचन्दने तो पूरा खतरा उठाकर घरकी खबर-सुध लेनेकी कोशिश की। एक-आध बार तो पुलिसने श्रीचन्दको गिरफ्तार भी कर लिया; पर श्रीचन्दने खैर-खबर लेनेकी अपनी बान न छोड़ी। महेश-कुमार चतुर्वेदीने भी कुशल-क्षेम पूछने और अपनी ओरसे सहायता करने-में प्रयास किया। फीरोजाबादके एक श्रमजीवी भाईने बड़े चातुर्यसे कुछ रुपए घर भिजवाए; पर श्री महेशके और फीरोजाबादके श्रमजीवी मित्रके सब रुपए जेलसे छूटनेके बाद वापस कर दिए गए। हाँ, आगरेके एक मित्रने एक बोरा गेहूँ भेजा था, जो स्वीकार किया गया। आगरेसे तो २५०) का कर्ज लिया गया था, वह हमारे जेलके दिनोंमें ही अदा कर दिया गया।

सबसे छोटे बच्चेकी मौत चेचकसे हो गई थी। लाश उठानेका प्रबन्ध करनेमें पं० यज्ञदत्त शर्माने जो अपनापन दिखाया और पड़ोसी श्री मोहनलालजीने जो सहयोग दिया, उसके लिए तो हम सब आजन्म

आभारी रहेंगे। उन दिनों हमारे मकानपर आकर इतना स्नेह और इतनी सहानुभूति दिखाना असाधारण व्यक्तियोंका ही काम था।

इन सब मुसीबतोंके सहनेकी शक्ति परमात्माने बच्चों और घरवालोंको कैसे दी, यह समझमें नहीं आता। सन् १९४२ की असली मुसीबत तो घरवालोंपर ही थी। इस सिलसिलेमें मुसीबतके साथियोंकी तनिक-सी चर्चा करनेमें हम अपनी गायोंको कैसे भूल सकते हैं। घरमें चारा नहीं था। पैसे भी नहीं थे। गाएँ भूखी खड़ी थीं। गृहिणीने दुखी होकर उनको खोल दिया कि भगवान्के नामपर वे अपना निर्वाह करें। गाएँ एक बार तो बाहर गईं। पर अन्तमें सहानुभूति और स्नेह-भरे नेत्रोंसे वे लौट आईं और घरमें आकर भूखी-प्यासी बैठी रहीं। कई बार उन्हें बाहर हाँका गया, पर वे बाहर नहीं गईं। वे भी तो घरवालोंमें से थीं। एक गाय तो एक मित्रके यहाँ भेज दी, जहाँ वह मर गई। दूसरी बड़ी गाय आज भी अपनी भानजीके यहाँ है।

× × ×

कई धूर्त्तोंने यह खबर फैलाई कि एक व्यक्ति हमारे नामसे 'हिन्दुस्तान' (दिल्ली) से २५) माहवारी लेता है हमारे घरवालोंके लिए। इस बातको सुनकर घरवालोंको कितना क्षोभ हुआ, यह पाठक समझ सकते हैं। 'हिन्दुस्तान' वालोंको हम जानते हैं। श्री देवदास गांधीको भी हम अच्छी तरह जानते हैं। श्री घनश्यामदासजी बिड़लासे भी हमारा परिचय है। हमें ऐसा विश्वास है कि यदि हम अपने लिए बिड़लाजीसे कुछ माँग करते, तो वे बड़ी खुशीसे दो-चार हजार रुपए दे देते। शायद तीन-चार वर्षके लिए घर-भरके खाने-पीनेका प्रबन्ध भी कर देते। पर असल बात तो यह है कि बिड़लाजी या 'हिन्दुस्तान'से हमारी ओरसे कोई माँग नहीं हुई और न वहाँसे हमारे पास किसी प्रकार कुछ आया। हाँ, यह ठीक है कि श्री घनश्यामदासजी बिड़लाने हमारे एक मित्रसे कई बार यह पूछा कि आखिर हमारी रिहाई क्यों नहीं होती? इस सहानुभूतिके लिए भी हम आभारी हैं। श्री मार्तण्डजी उपाध्यकी गृहिणी पं० रेवतीशरणजीके

सम्बन्धसे हमारी लड़की लगती हैं। अपनी छोटी बहनोंके लिए—हमारी लड़कियोंके लिए—उन्होंने दो साड़ियाँ और दो थान भेजे। उसकी अदायगीके लिए भी हमने अप्रत्यक्ष रूपसे कोशिश की; पर हमें उसमें असफलता रही। मार्तण्डजीकी इस पारिवारिक सद्भावनाके लिए हम कृतज्ञ हैं।

हमें इस बातसे बड़ा क्लेश हुआ कि श्रीमान् पण्डित नरदेव शास्त्रीके कहनेसे हमारे साथी श्री रामचरण गुप्तने १५०) हमारे घर भिजवाए। जब इस बातका पता चला, तो हमने श्री रामचरण गुप्तको काफी लताड़ा और रुपए वापस करा दिए।

श्री रफीअहमद क़िदवई साहबने जेलसे हमारी सहायताके लिए जो प्रयास किया, वह न केवल स्तुत्य ही है, वरन् वह उनके रूपके अनुरूप भी है। क़िदवई साहब उन व्यक्तियोंमेंसे हैं, जिनसे हम घरके एक व्यक्तिकी भाँति मिल सकते हैं और खुलके बातें कर सकते हैं। पर क़िदवई साहबकी सहायताका कोई उपयोग घरवालोंने नहीं किया।

श्रीमान् डॉक्टर कैलाशनाथ काटजूको धन्यवाद किन शब्दोंमें दिया जाय! जब हमारा नाम लेना ही लोगोंकी गिरफ्तारीका कारण हो जाता था, तब डॉक्टर काटजूके पास हमने यह संवाद भेजा कि यदि वे सैशन अदालतमें नहीं आयेंगे, तो हमारी उनसे लड़ाई होगी। डॉक्टर काटजू स्वयं बीमार थे। उनकी पत्नी भी बीमार थीं। पर वे सैशन अदालतमें आए। पाठक उन दिनोंकी आतंकपूर्ण स्थितिका अनुमान इस बातसे कर लें कि जब डॉक्टर काटजू स्टेशनपर उतरे, तब उनके लेनेके लिए स्टेशनपर न तो कोई सवारी थी और न कोई व्यक्ति। गिरे हुए स्वास्थ्य-में वे ताँगेमें बैठकर ठहरनेकी जगहपर पहुँचे। अदालतमें जब उन्होंने बच्चोंको पास बुलाकर परिचय किया, तो हमारा कण्ठ गद्गद् हो गया। मुकदमेके बाद भी जब वे आगरे आए, तब उन्होंने हमारी लड़की और उसकी माँको बुलाकर कुशल-समाचार पूछा और महात्माजीके पास भी उन्होंने मुकदमेसे बरी होनेकी खबर भेजनेका आदेश दिया। और भी

ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जिन्होंने बिना किसी नाम या मतलबके मुकदमेकी पैरवी की और सहानुभूति दिखाई। उन सबको कोटिशः प्रणाम!

× × ×

इस सिलसिलेमें मुसीबतके एक साथीकी प्रायः याद आया करती है, जो अपना काम करके हमारे जेलके प्रवासतक साथ देता रहा और हमारी जेलकी रिहाईके बाद जिसने यह उचित समझा कि उसका कर्तव्य पूरा हो गया और इसलिए, वह छोटी उमरमें ही महायात्रा कर गया। अपना ही लड़का था। उमर थी १० की, सबका दुलारा और सबसे न्यारा। उसका व्यवहार साधुओंका-सा था। पर मुसीवतमें उसने अपनी माँ और अपनी बहनका साथ दिया। पुलिसको जवाब देने और भूखे-प्यासे रहनेमें वह व्रती रहा। अपनी माँके साथ लकड़ियोंका छोटा-सा गट्ठर सिरपर रखकर लानेमें या बाजारसे अपनी माँके साथ अनाजकी गठरी या घास सिरपर रखकर लानेमें वह अपना गौरव समझता था। आनेवाले मित्रोंकी सेवा करनेमें जो उसे आनन्द मिलता, उसका तो कुछ कहना ही न था। लोग कहते हैं कि आखिर श्री पीताम्बर पन्तसे हमारा इतना गाढ़ा स्नेह क्यों है। उन्हें क्या मालूम कि उस स्नेहके पीछे हमारे साधु बच्चे व्रजेशका कितना हाथ है। हमारे साथी श्री पीताम्बर पन्तके बड़े भाई श्री ललितमोहन पन्त, जो प्रयागमें एडवोकेट हैं, मुकदमेके दिनोंमें आगरे आए। कहीं ठहरनेको जगह नहीं थी। सीधे वे स्वदेशी बीमा कम्पनी चले गए। श्री ललितमोहनजीने वहाँ जाकर भूल की। स्वदेशी बीमा कम्पनी या और कोई बीमा कम्पनी धर्मार्थ स्थान तो नहीं है। वह धर्म-शाला भी नहीं है। ललितमोहनजीको वहाँ ठहरनेको स्थान न मिला। आखिर इतने बड़े शहरमें अपने एक साथीके भाईको ठहरनेके लिए जगह तो मिलनी ही चाहिए थी। होटलके ठहरनेमें कुछ कठिनाइयाँ थीं—मजबूरियाँ थीं। अन्तमें वे हमारे साथी श्री रामसरनसिंहके पिताके प्रयाससे जाट बोर्डिंग हाउसमें ठहराये गये। छुट्टियोंके दिन थे। खाने-पीनेका वहाँ कोई प्रबन्ध न था। जाट बोर्डिंग हाउसमें व्रजेश और

उसकी छोटी बहन सरोजिनी अपने सरोंपर रखकर भोजन और चाय पहुँचाते। उनके साथ जानेवाला तो कोई और था नहीं। वे सैशन अदालतसे कभी-कभी मध्याह्नके ढाई बजे हुँकारती लूकी चपेटोंमें पैदल ही घरको आते, ताकि श्री ललितमोहनजीके लिए ठीक समयपर भोजन और चाय पहुँच सके। दिल कभी-कभी इस बातसे कँप जाता कि छोटे बच्चोंको कहीं लू न लग जाय। लू और बीमारीकी तो व्रजेशको कोई चिन्ता न थी; पर इन सब कारणोंसे वह घरवालोंके लिए बलिदान हो गया। इस विषयमें कुछ अधिक लिखना अपने प्रियजनोंके बारेमें लिखना होगा, जो ठीक नहीं है। पर मुसीबतके उस साथी व्रजेशके निधनने दिलपर एक ऐसा घाव कर दिया है, जो अभीतक भरा नहीं है। पता नहीं, वह भर भी सकेगा या नहीं।

× × ×

श्री श्यामसोहनजीने अपने मकानमें हमारे साथियोंको टिकाकर कितनी सहायता की, इस बातको परमिटोंमें उलझे स्वार्थी कांग्रेसजन क्या जानें?

सेवाग्रामके मैनेजर श्रीकृष्णचन्द्रजी, गांधी-आश्रम मेरठके भाई लोग और कराड़ी-गांधी-कुटीरके अध्यक्ष दीवानजीने जेलके दिनोंमें नियमित रूपसे पौनियाँ भेजकर जो सहायता की, उसका मूल्य उन पैसोंसे नहीं आँका जा सकता, जो हमने कीमतके रूपमें उनको अदा किया। एक आत्मीय जन ही ऐसा स्नेह दिखा सकते हैं। श्री प्रभुदयाल विद्यार्थीने अपनी फरारीके दिनोंमें भी घर आकर कुशल-क्षेम पूछी और रुपये भी देने चाहे; पर घरवालोंने नहीं लिए।

महामानव पूज्य बापूजीने हमारी मुसीबतमें जो पत्र लिखा, उसने हम डूबतेको बचा ही लिया। उस मुसीबतमें बापूजी हमारी ओरसे कुछ समाचार न भेजनेपर भी यदि सान्त्वनाका एक लम्बा पत्र लिखें, तो भगवान्‌की अनुकम्पा ही है।

मुसीबतके दिनोंमें जिसके इतने और इस प्रकारके साथी हों, उसके लिए और क्या चाहिए। जिन परिस्थितियों और व्यक्तियोंके कारण

जिन्दगी कोफ्त हो गई और जिनके स्मरण-मात्रसे बार-बार यही कहना पड़ता है:—

ऐसा भी कोई दिन मेरी किस्मतमें है 'फानी',
जिस दिन मुझे मरने की तमन्ना न रहेगी।

उनके विषयमें कभी अन्तःप्रेरणासे भले ही लिखा जाय। पर पाठकोंको इस बातका विश्वास अभीसे दिलाया जाता है कि मरनेके बाद नामसे पहले स्वर्गीय शब्दके साथ उन बातोंपर कुछ लेख निकलेंगे।*

---

* अन्तिम प्रूफ देखते समय हमें श्री रणजितरायजीके पत्रसे ज्ञात हुआ कि सैण्डहर्स्ट रोड-स्थित मकानमें रहनेवाले हमारे मेजबान डॉक्टर नारायणदत्तका तीन वर्ष पूर्व निधन हो गया। इस समाचारसे हमें हार्दिक क्लेश हुआ।—ले०

आन्दोलनके बाद

प्रत्येक चित्रके तीन महत्त्वपूर्ण पहलू होते हैं—पूर्वपृष्ठ (Back ground), स्वयं चित्र और चित्रका अग्रपृष्ठ (Foreground)। सन् १९४२ के आन्दोलन-सम्बन्धी अपने इन संस्मरणोंमें मैं आन्दोलनके पूर्व-पृष्ठोंपर एक लेख लिख चुका हूँ। आन्दोलन-सम्बन्धी चित्रके चित्रणमें कई लेख लिखे हैं और अभी कुछ और लेख आगे आवेंगे। इस संस्मरणमें आन्दोलनके बादकी समस्याओं अथवा दूसरे शब्दोंमें आन्दोलनोत्तर स्थितिपर कुछ लिखना है। स्मरण रहे, सन् १९४२ के आन्दोलनको हम महात्मा गांधीकी रिहाईतक मानते हैं। महात्मा गांधीकी रिहाईसे लगाकर उनके उत्सर्गतक हम आन्दोलनकी अग्रभूमि समझते हैं।

आन्दोलनके दिनोंमें दबे ढंगसे और अधिकांश लोगोंके जेलमें पहुँचनेके बाद जेलोंमें यह चर्चा स्पष्ट रूपसे थी कि क्या सन् १९४२ के आन्दोलनका वह रूप जो लोगोंके सामने आया, वह कांग्रेसकी प्रतिष्ठाके अनुरूप था? क्या वह कांग्रेसका आन्दोलन था? अपना जो मत इस विषयमें था, उसका जो प्रदिपादन हमने जेलमें किया, वही दृष्टिकोण अपने जेलसे निकलनेके बाद भी रहा और आज भी अपना वही मत है। इस सिलसिलेमें हमने दिल्लीके 'हिन्दुस्तान'के सन् १९४६ के विशेषांकमें 'सन् १९४२ का आन्दोलन' शीर्षक एक लेख लिखा था। उसको यहाँ अविकल रूपसे उद्धृत किया जाता है:—

सन् १९४२ की ९ दिसम्बरको जब इन पंक्तियोंका लेखक अपने अनेक साथियोंके साथ सेण्ट्रल जेल आगरेमें पहुँचाया गया, तब गुपचुप ढंगसे उसके कानोंमें ऐसी बातें पहुँचने लगीं कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन नहीं है। एक साहबने तो यहाँतक कहा कि "सन् १९४२ का आन्दोलन गुण्डोंका चलाया हुआ है और उसका

कांग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं।" लेखक अपनी इस कमजोरीको स्वीकार करता है कि यदि यह बात उन महाशयने मेरे सामने कही होती, तो उनके साथ झगड़ा हुए बिना नहीं रहता क्योंकि सहनशीलताकी एक सीमा होती है। महात्मा गांधीके कुछ बयानोंके बाद तो अनेक ढोंगी और कायर व्यक्ति सन् १९४२ के आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेवालोंको कांग्रेसपर कलंक लगानेवाला कहने लगे थे। अनेक बार बहसें हुईं और इन पंक्तियोंके लेखकने यही सिद्ध करनेकी कोशिश की कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन था। जब इस विचारके विरोधियोंसे यह कहा जाता था कि कायरतासे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं, अगर कोई सतोगुणी नहीं बन सकता तो तमोगुणीकी अपेक्षा रजोगुणी होना कहीं अच्छा है, तो इसका कोई उचित उत्तर नहीं मिलता था। इन पंक्तियोंके लेखकका यह दावा था और अब भी है कि यदि महात्मा गांधीने जितनी बातें ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें बताई थीं, उनपर अमल किया जाता, तो ध्वंसात्मक कार्यकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जिस प्रकार व्याघ्र-चर्म-प्रच्छन्न रासभकी कलई खुली थी, उसी प्रकार अपनी कायर आत्माके ऊपर गांधीवादका आवरण पहने व्यक्तियोंका परदाफाश होता है और लोग उनकी असलियतको समझ जाते हैं। अपना अटल विश्वास है कि वर्तमान युगमें भारतवर्षके लिए ही नहीं, वरन् विश्वके लिए भी गांधीवाद एक महान् देन है। वह एक सतोगुणी धारा है; तमोगुणी व्यक्तियोंके लिए उसमें स्थान नहीं।

कांग्रेसियोंका आन्दोलन

हमको इस प्रश्नपर निष्पक्ष रूपसे विचार करना है कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन था या नहीं? इस प्रश्नका उत्तर एक वाक्यमें यों दिया जा सकता है कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन तो नहीं, पर कांग्रेसजनोंका आन्दोलन था। अनेक पाठक इस उत्तरको पढ़कर कह सकते हैं कि यह तो ठीक ऐसी ही बात

हुई कि कोई गुड़ तो खाय और गुलगुलोंसे परहेज करे। असलमें बिना विश्लेषण किये इस उत्तरको समझना कुछ दुरूह भी है।

मान लीजिए कि दिल्लीके कांग्रेसी कोई आन्दोलन छेड़ते हैं और उस आन्दोलनकी उग्रता इतनी बढ़ जाती है कि उसका प्रभाव सारे देशकी राजनीतिपर पड़ता है। पर इस प्रकारसे प्रारम्भ किया हुआ दिल्ली-वालोंका वह आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन नहीं कहलाएगा। सन् १९२० से लगाकर अबतक जितने आन्दोलन कांग्रेसने चलाये हैं, उन सबको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीसे स्वीकृति मिली थी। पर सन् १९४२ के आन्दोलनको तो ऐसी कोई स्वीकृति नहीं मिली थी। यह दूसरी बात है कि इस प्रकारके आन्दोलनको स्वीकृति मिलती या नहीं। पर जब उसे वैधानिक दृष्टिसे वह स्वीकृति नहीं मिली, तब प्रत्येकको यह कहनेका हक है कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसका आन्दोलन नहीं था। पर इसके मानी यह नहीं कि उसे कांग्रेसवालोंका आन्दोलन न कहा जाय। जिन लोगोंने उस आन्दोलनका संचालन किया, वे सब कांग्रेसी थे। बाकायदा बैठकें करके प्रोग्राम बनाया गया था और उस प्रोग्रामके अनुसार कार्य किया गया था। उन बैठकोंमें कांग्रेसके जिम्मेदार आदमी शामिल होते थे। ब्रिटिश इतिहासमें क्रामवेलके जमानेमें 'रम्प पार्लमेण्ट' बैठी थी। रम्प पार्लमेण्ट बचे-खुचे लोगोंकी पार्लमेण्ट थी। ठीक उसी तरहसे जिन कांग्रेसजनोंने आन्दोलन चलाया, उनको 'रम्प कांग्रेस' कह सकते हैं, यानी बचे-खुचे लोगोंकी कांग्रेस। यह बात बिलकुल ठीक है और इस बातको वे ही लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं, जिन्होंने सक्रिय रूपसे उस आन्दोलनका संचालन किया था कि यदि संगठित ढंगसे काम न चलाया गया होता, तो वह आन्दोलन सन् १९४३ के प्रारम्भतक नहीं चल सकता था। क्या कभी लोगोंने इस संगीन मसलेपर सोचा है कि पुलिसके भरसक प्रयत्न करनेपर भी उन दिनों कोई हिन्दू-मुस्लिम दंगा नहीं हुआ? बरसातमें जिस प्रकार साँप और बिच्छू पैदा हो जाते हैं, उसी प्रकार कुछ कथित क्रान्तिकारियोंने डाके डालने शुरू कर दिये थे।

उन्हें रोकनेके लिए कांग्रेसजनोंको सतत प्रयत्न करना पड़ा और उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली। लड़ाईके अनेक मोर्चे होते हैं और सभी मोर्चोंको सँभालना पड़ता है। सन् १९४२ में भी अनेक मोर्चे थे और सब मोर्चोंपर काम करना पड़ता था। डकैतियाँ और हत्याएँ रोकी गईं, हिन्दू-मुस्लिम दंगे नहीं होने दिये गये और जितना बना उतना ध्वंसात्मक कार्य किया गया। ध्वंसात्मक कार्य प्रोग्राममें था और वह किया गया। सेनामें काम किया गया। अगर कांग्रेसजन इस आन्दोलनको नहीं चलाते, तो देशका नैतिक पतन १८५७ के नैतिक पतनसे कहीं अधिक भयंकर होता! इसलिए इन पंक्तियोंका लेखक सगर्व दुहराता है कि सन् १९४२ का आन्दोलन कांग्रेसजनोंका आन्दोलन था।

पूर्ण नैतिक सफलता

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या सन् १९४२ का आन्दोलन असफल रहा? इस प्रश्नके उत्तरके लिए भी हमें कुछ विवेचन करना होगा। यह लिखनेमें लेखकको तनिक भी संकोच नहीं कि जो सफलता हम चाहते थे, वह नहीं मिली। पर यह बात भी निर्विवाद है कि नैतिक और राजनीतिक दृष्टियोंसे हमें सन् १९४२ में इतनी सफलता मिली, जो आशातीत कही जा सकती है। दुनियाके इतिहासमें सन् १९४२ के आन्दोलन जैसे उदाहरण कम ही मिलेंगे। निहत्थे लोगोंका एक सुसज्जित और सशस्त्र शक्तिसे टक्कर लेना और टक्कर लेकर उसमें सफल हो जाना, जहाँतक नैतिकताका सम्बन्ध है, एक असाधारण-सी बात है। सैकड़ों फौजी लारियोंका गाँवको घेर लेना और हजारों आदमियोंको गिरफ्तार कर लेना और फिर भी लोगोंके नैतिक स्तरमें फर्क न आना ऐसी बातें थीं, जिनसे सत्ताधारियोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई कि भारतवर्षपर संगीनों, तोपों और सिपाहियोंके बूते शासन करना सम्भव नहीं। मिदनापुरमें ब्रिटिश रेजीमेंटोंके अत्याचार करनेपर भी वहाँके लोगोंने आत्म-समर्पण नहीं किया। वहाँ स्त्रियोंने चण्डी-रूप धारणकर आत्म-सम्मान और देश-

सम्मानकी रक्षा की। सन् १९४२ के आन्दोलनके कारण ही ब्रिटिश सरकारी वे घोषणाएँ बेकार गईं, जिनके द्वारा उसने धमकीके साथ ८ अगस्तके प्रस्तावको वापस लेनेकी माँग की थी और कार्य-समितिके सदस्योंपर मुकदमा चलानेके लिए कहा था। आजाद हिन्द फौजका कार्य भी सन् १९४२ के आन्दोलन ही का एक अंग है। ब्रिटिश सत्ताके दुर्गपर सन् १९४२ के आन्दोलनने वह कारगर प्रहार किया कि उसे घुटने टेकने पड़े और उसे नैतिक दृष्टिसे आत्मसमर्पण-सा करना पड़ा। यह भी ठीक है कि कांग्रेसके लिए इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था, जो उसने स्वीकार किया। युद्धोंका रास्ता ही समझौतों और सन्धियों-का रास्ता होता है। इस प्रकार सन् १९४२ के आन्दोलनको सफलता तो मिली, पर वह सफलता नहीं मिली, जिसकी कि प्रारम्भमें लोगोंने आशा की थी।

मानव-शक्तियाँ सीमित हैं और बड़े-बड़े दिग्गजोंकी योजनाएँ दैवी शक्ति और समयके फेरसे निकम्मी हो जाती हैं। आज महायुद्धकी सफ-लताके बाद भी अंगरेजी साम्राज्यवादका शीराजा बिखरा पड़ा है। युद्धजन्य समस्याएँ सँभाले नहीं सँभल रही हैं। प्रतीत होता है, मानो प्रलयंकर शंकरने अपना ताण्डव नृत्य ही प्रारम्भ कर दिया हो। अगर अंगरेज साम्राज्यवादियोंको यह पता होता कि दूसरे महायुद्धकी विजय उन्हें इतनी महँगी पड़ेगी और तीसरे महायुद्धकी विभीषिका इतनी जल्दी उनके सामने आ जायगी, तो शायद वे अपने साम्राज्यकी खातिर हिटलरसे समझौता कर लेते। हिटलरका अन्त जर्मन सेना-वृत्तिका ही अन्त नहीं है, वरन् वह अंगरेजी साम्राज्यवादके लिए भी विनाशकारी सिद्ध हुआ है। अपनी सफलताके इस रूपकी कल्पना सन् १९३९ में अंगरेजोंको नहीं थी। ठीक इसी तरह सन् १९४२ के आन्दोलनमें काम करनेवालोंको इस बातका तो ज्ञान था कि या तो वे कार्य करते हुए गोलियोंसे मार दिये जायँगे या फिर उन्हें फाँसीके तख्तेपर लटकना पड़ेगा, कांग्रेस उस कुर्बानीसे शक्तिशाली बनेगी; पर उस आन्दोलनका एक

ऐसा भी रूप होगा, जिसके फलस्वरूप हम आज़ादीके सिंहद्वारतक पहुँच जायँगे, यह भावना कम लोगोंको थी। इन पंक्तियोंके लेखककी तो यही भावना थी। उसके विचारसे सन् १९४२ का आन्दोलन पूर्ण रूपसे न सही, आंशिक रूपसे—नैतिक दृष्टिसे—पूरी तरह सफल रहा है।

दूसरा प्रश्न जो सन् १९४२ के आन्दोलनके बारेमें प्रस्तुत हुआ, वह यह था कि क्या सन् १९४२ का आन्दोलन समाजवादी दलसे प्रेरित हुआ था और क्या समाजवादी दलके नेतृत्वके कारण वह चल सका? स्पष्ट है कि इस प्रकारकी बात स्वार्थसिद्धिके लिए कुछ समाजवादी लोगोंने रखी। आँखोंमें धूल डालनेकी चेष्टा कभी-कभी सफल होती है, पर भुसपर लीपा नहीं जा सकता। ठीक उसी प्रकार समाजवादी दलकी यह गर्वोक्ति कि १९४२ के आन्दोलनका नेतृत्व समाजवादियों द्वारा हुआ था, निराधार और समाजवादी दलको पंगु बनानेवाला है। हमने तो इस विषयमें अपने समाजवादी मित्रोंको लिखकर भी चुनौती दी थी कि वे इस बातको सिद्ध करें कि आन्दोलनका नेतृत्व उन्हींके द्वारा हुआ था। इस विषयमें अक्टूबर सन् '४६ के 'सैनिक'के विशेषांकमें हमने 'सन् १९४२ का आन्दोलन और समाजवादी दल' शीर्षक एक लेख लिखा था, जो इस प्रकार है :—

सन् १९४२ के आन्दोलनको चलाने और संघटित करनेका श्रेय किसको है--इस प्रश्नको लेकर देशमें काफी चर्चा चल रही है और हमारे कांग्रेस समाजवादी दलने तो एक प्रकारकी कौआ-गुहार-सी मचा रखी है कि सन् १९४२ के आन्दोलनके सूत्रधार कांग्रेस समाजवादी लोग ही थे। इन पंक्तियोंके लेखकको सेण्ट्रल जेल फतहगढ़में समाजवादी मित्रोंसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सन् १९४२ के आन्दोलनकी प्रेरणा महात्मा गांधीको आचार्य नरेन्द्रदेवसे मिली थी और अगर महात्माजीको ऐसी प्रेरणा न मिली होती, तो ध्वंसात्मक कार्य तो चलता ही नहीं। इस प्रकारकी बातोंसे, जिनमें महात्मा गांधीको अकारण ही घसीटा जाता है और आचार्य नरेन्द्रदवजीके मत्थे ऐसी बातें मढ़ी जाती हैं, जिनकी पुष्टि

स्वयं आचार्यजीने नहीं की, महात्माजीका तो कुछ बिगड़ता नहीं और न आचार्यजीकी प्रतिष्ठामें ही कुछ बट्टा लगता है, पर ऐसी ऊल-जलूल बातें करनेवालोंके लिए ही ये बातें विघातक सिद्ध हो सकती हैं।

इन पंक्तियोंके लेखकने बहुत आग्रह करनेपर भी सन् '४२ के आन्दोलनपर अभी कुछ लिखा नहीं है। और न अभी कुछ दिनोंतक आन्दोलनकी गति-विधिपर कुछ लिखनेका विचार है। लोग पूछते हैं कि मेरे न लिखनेका आखिर कारण क्या है ? इसका उत्तर कविवर गालिबके शब्दोंमें फिलहाल तो यह है—

'है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ,
वरना क्या बात कर नहीं आती !'

पाठकोंको यह बताना शायद जरूरी है कि महात्मा गांधीकी व्यक्तिगत कृपा इन पंक्तियोंके लेखकपर रहती है, पर वह कृपा किसी राजनीतिक क्षेत्रसे अथवा किसी अन्य क्षेत्रसे लाभ उठानेके लिए नहीं रही है, वरन् अपने नैतिक चरित्र-गठनके लिए और सेवा-मार्ग-प्रदर्शनके लिए। श्रीमान् आचार्य नरेन्द्रदेवजीकी कृपा भी इन पंक्तियोंके लेखकपर है और यहाँपर यह स्पष्ट करना भी कुछ अनुचित न होगा कि जुलाई सन् '४२ के अन्तमें जब आचार्यजी रुग्णावस्थामें सेवाग्राममें थे, तब इन पंक्तियोंके लेखकने आचार्यजीसे भावी आन्दोलन-सम्बन्धी कुछ चर्चा की और आचार्यजीने भावी आन्दोलनकी रूप-रेखाके बारेमें कोई बात स्पष्ट नहीं की थी। यह कहना कि आचार्यजीने जान-बूझकर कोई बात छिपाई, लेखकके खयालसे, आचार्यजीका अपमान करना है। स्वयं महात्मा गांधीजीने जब कतिपय व्यक्तियोंके सम्मुख सेवाग्राममें अपने आमरण-अनशनकी चर्चा की थी, तब भी किसी कार्यक्रमकी चर्चा तो नहीं आई थी। लेखकको अपने चीनी और अमेरिकन पत्रकार मित्रोंसे यह पक्की खबर लगी थी कि ९ अगस्त सन् '४२ को देशमें हजारों गिरफ्तारियाँ होंगी और सबसे पहले गिरफ्तार होनेवाले होंगे वर्किंग कमेटीके सदस्य। आठ अगस्त सन् '४२ को प्रेस गैलरीमें भी अमेरिकन और चीनी

पत्रकारोंने वह बात दुहराई। ८ अगस्त सन् '४२ को दोपहर बाद चायके समय जब लेखकने श्रीमान् पं० गोविन्दवल्लभ पन्तसे मुलाकात की और कुछ समय वार्तालापके लिए चाहा, तब पन्तजी ने ९ अगस्तको तीन बजे मध्याह्नका समय दिया। आचार्यजीको खण्डवा जाना था, देशी राज्य परिषद्के किसी जलसेमें। आचार्यजीसे लेखकको 'विशाल भारत'के लिए उनके एक लेखको उन्हींसे ठीक कराना था। उन्होंने भी उसे ९ तारीख-को देनेकी कृपा की। इन सब बातोंसे प्रतीत होता है कि वर्किंग कमेटीके सदस्योंको यह आशंका न थी कि ९ अगस्त सन् '४२ से देशमें एक असाधारण दमन-दावानल प्रज्वलित हो उठेगा। यह तो रही वर्किंग कमेटीके सदस्योंकी बात। पर मूल प्रश्न तो फिर भी रह जाता है और वह यह कि क्या कांग्रेसी समाजवादी दल ही सन् '४२ के आन्दोलनका प्रवर्त्तक था?

विषय बड़ा ही रोचक और विश्लेषणीय है। यहाँपर सूत्र रूपमें इतना लिखना ही पर्याप्त है कि सन् १९४२ के आन्दोलनके संचालन और संगठनका भार कांग्रेस समाजवादी दलपर नहीं था। आज जो अनेक व्यक्ति लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं और दुनियाभरकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेको तैयार हैं, उनकी असलियतका पता तो तभी चल सकता है, जब अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी एक कमीशन नियुक्त करे, जो ऐसे ही प्रश्नोंकी जाँच करे। समुद्रके पानीमेंसे एक बाल्टी जल लेकर क्या कोई यह ठीक तौरसे बता सकता है कि उसमें कितना पानी गंगाजीका है और कितना ब्रह्मपुत्र अथवा अन्य नदियोंका। आज जो दलबन्दीका अखाड़ा जमा हुआ है, उसके पीछे पद-लोलुपता और स्वार्थपरता है। सेवा-भावकी वृत्ति उसमें बहुत कम है। सन् '४२ में जिन लोगोंने कन्धेसे कन्धा मिलाकर, अपनी जान हथेलीपर रखकर मर-मिटनेका प्रण किया था, वे तो बहुत-कुछ आज चुप-से हैं, क्योंकि उन्हें अपनी देश-सेवापर और कर्तव्य-पालनके लिए कोई पुरस्कार नहीं चाहिए। देश-सेवामें रत व्यक्तियोंको जो कठिनाइयाँ

और यातनाएँ सहनी और भुगतनी पड़ती हैं, वे स्वयं ही अपने रूपमें पुरस्कार हैं, जो विशुद्ध रत्नजटित हारके समान अदृश्य रूपसे उनके हृदयोंको आलोकित करते हैं। अखबारी वाह-वाह और कांग्रेसके पदोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। आज जो कुछ व्यक्ति क्रान्तिकी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, उनके बारेमें अगर ठीक-ठीक बातें लिखी जायँ, तो देश-वासियोंको पता चलेगा कि उनमेंसे कुछने गुप्त रहकर वक्त ही काटा है। बहुतोंने मौजें भी की हैं और कुछ छोटे कथित क्रान्तिकारियोंने तो डकैतियाँ भी डाली हैं। पर जिन लोगोंने कांग्रेसकी मान-मर्यादा रखी, डकैतियाँ और कत्ल नहीं होने दिये, उनमें उस समय दलबन्दीकी तनिक भी दुर्गन्धि नहीं थी; गांधीवादी हो चाहे कांग्रेस समाजवादी, सबके सामने एक ही प्रश्न था और एक ही लगन थी और वह थी शत्रुको हरानेकी। यह बहुत आसान था कि सन् '४२ में सैकड़ों अफसरोंको मरवा डाला जाता। पर यह सब नहीं होने दिया गया। अकर्मण्यता और कायरताकी बात नहीं थी। इस बातके प्रमाण हैं कि जब कभी किसी अफसरके मारनेकी बात हुई, तो उसको रोकनेमें काफी दिमाग लड़ाना पड़ता था, क्योंकि कांग्रेसजनोंका यह प्रोग्राम न था, न कोई ऐसी योजना थी कि लोगोंकी हत्या की जाय या डाके डाले जायँ। कांग्रेसी समाजवादी दलकी कोई अलग हस्ती भी नहीं थी। सब मिलकर काम करते थे। ९ अगस्त सन् '४२ को जब गिरफ्तारियाँ हुईं और मारधाड़ शुरू हो गई, तब जो मीटिंगें हुईं, उनमें सभी विचारोंके आदमी थे। पार्टियोंकी केंचलियाँ तो उतार फेंक दी गई थीं। समुद्रमें जिस प्रकार उत्ताल तरंगें हुँकारती हुई दुश्मनके जहाजोंसे टकराती हैं और टकराकर फिर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार संगठन बना और मिलकर काम हुआ।

जहाँतक उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेशका सम्बन्ध है, वहाँतक क्या कोई समाजवादी कार्यकर्ता इस बातका दावा कर सकता है कि ध्वंसात्मक कार्यक्रम अथवा '४२ में चलनेवाला प्रोग्राम समाजवादी दलकी प्रेरणासे चला? अगर ऐसा कोई दुस्साहस करे, तो वह आगे बढ़कर इस

बातको कहे, ताकि प्रत्येक बात विस्तारपूर्वक लिखी जाय। इन पंक्तियोंके लेखकका सम्बन्ध कई प्रतिष्ठित समाजवादी दलके मित्रोंसे रहा है। उन दिनों तो यह कभी चर्चा आई ही नहीं कि अमुक प्रोग्राम कांग्रेस समाजवादी दलका है या गांधीवादी दलका। कानपुरके प्रसिद्ध समाजवादी श्री गोपीनाथसिंह हमारे साथ रहे हैं। क्यों न समाजवादी दल उनसे इस विषयपर चर्चा करे? क्यों न वे डा० केसकरसे इस विषयपर चर्चा करें? इन पंक्तियोंके लेखकको दुःख है कि जो कांग्रेस समाजवादी दलके मित्र इस प्रकारकी चर्चा करते हैं कि सन् '४२ के आन्दोलनका श्रेय कांग्रेस समाजवादी दलको है, वे अपने दलकी मान-मर्यादापर ही बट्टा लगाते हैं।

असलमें यह बात है कि कांग्रेस एक इतनी बड़ी जमात है कि उसमें सभी तरहके व्यक्ति मौजूद हैं और आजकल तो यह आफत है, जिससे कांग्रेसकी इज्जतपर आ बनी है। लोगोंको अपनी-अपनी पड़ी है। सन् '४२ के आन्दोलनको लोग भूले जा रहे हैं। कोरी लफ्फाजीसे तीसमारखाँ बननेमें न तो कोई खतरा है, न कोई खर्चा। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि अगर कांग्रेसकी शुद्धि नहीं हुई और अवांछनीय व्यक्तियोंको किसी प्रकार ठीक नहीं किया गया, तो परमात्मा ही जाने कांग्रेसका क्या हश्र होगा। बारहों महीने चुनाव लड़नेकी चर्चा रहती है। कांग्रेस एक चुनाव लड़नेकी चर्चा रह गई है। खादी पहनकर और चार आना देकर गुण्डेतक कांग्रेसमें आ-जा सकते हैं। उनके लिए कोई रोक-थाम तो है नहीं। किसी रिश्वतखोर अफसरके तबादलेकी सिफारिश भी कांग्रेसमैन ही करते नजर आते हैं। चोर-बाजारीको रोकनेमें कांग्रेसजनोंकी पूरी सतर्कता तो नहीं है और अनेक कांग्रेसजन स्वयं चोर-बाजारी करते हैं। और कांग्रेस समाजवादी दलके नामपर जो लोग चिल्ल-पों मचाते हैं, उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध समाजवादी उसूलोंसे नहीं, वरन् वे व्यक्ति-विशेष विरोधके कारण अपनी मनमानी करना चाहते हैं। अच्छा तो यह हो, अगर कार्यका ब्यौरा ही देखना है, कि समाजवादी दल प्रत्येक सूबेकी एक तालिका तैयार करे और उसमें

साफ-साफ ब्यौरेवार यह हो कि समाजवादी दलने क्या किया ? इस छोटे-से भूमिका-स्वरूप लेखमें यह कुछ अच्छा मालूम नहीं होता कि उन समाजवादी कार्यकर्ताओंकी आलोचना की जाय, जो समाजवादके नामपर कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सदस्योंकी इतनी थोथी और तुच्छी आलोचना करते हैं, जितनी कि मुस्लिम-लीगी भी नहीं करते। केवल यह कहनेसे कि अमुक दलने सन् १९४२ का आन्दोलन चलाया, काम नहीं चलेगा। व्यक्तियोंके नाम तथा उनके कार्यके आँकड़े भी होने चाहिए। पर जैसे कि ऊपर कहा गया है कि मल्लाही बातोंसे काम नहीं चलता, कोई साफ बात आनी चाहिए, जिससे यह साबित हो कि सन् '४२ का आन्दोलन समाजवादी दल द्वारा संचालित और संगठित था।

इन पंक्तियोंका लेखक बड़ी खुशीसे इस विवादमें पड़नेको तैयार है और तैयार है पड़नेको इस विवादमें उस कार्यकर्ताकी हैसियतसे, जो केवल छुपा ही नहीं रहा था, वरन्, कुछ काम करता था और जिसका सम्पर्क संचालनकी दृष्टिसे अपने सूबेतक ही नहीं वरन दूसरे सूबेतक भी था।

उपर्युक्त दोनों उद्धरण सन् १९४६ में लिखे गये थे। उस समय स्पष्ट बातें लिखना कठिन-सा था। पर आज सन् १९४८ में* अथवा १५ अगस्त सन १९४७ के बाद तो अधिकांश बातें साफ तौरसे लिखी जा सकती हैं। सन् १९४२ की प्रयागमें होनेवाली अखिल भारतवर्षीय कां० कमेटीके अधिवेशनके समय जो जनक्रान्तिके लिए कुछ आदमियोंकी कई दिनतक गुप्त बैठक होती रही, उसका पता या तो खुफिया-विभागके स्पेशल विभागको है या उन आदमियोंको है, जो उसमें शामिल थे। स्पेशल ब्रांचको यह बात आन्दोलनके दिनोंमें ही मालूम हो गई थी। इसकी बैठकें पं० शिवचरणलाल शर्मा एडवोकेटके बँगलेपर होती थीं। सर्वश्री रफीअहमद किदवई, श्री कृष्णदत्त पालीवाल, जगनप्रसाद रावत, द्वारकाप्रसाद मिश्र (माननीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र), निरंजनसिंह,

* यह लेख सन् १९४८ के जूनके 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ था।—प्रकाशक।

राधेश्याम शर्मा और इन पंक्तियोंका लेखक उन बैठकोंमें शामिल होते थे। जो प्रोग्राम वहाँ बना था, आनेवाले आन्दोलनकी जो कल्पना वहाँ की गई थी, वह लगभग वैसी ही थी, जैसा कि आन्दोलन चला।

अब जरा इस बातकी चर्चा करनी है कि आन्दोलनके बाद और १५ अगस्त सन '४७ के बादसे लगाकर महात्मा गांधीजीके उत्सर्गतक राजनीतिक प्रगतियोंकी क्या रूप-रेखा थी। कांग्रेसको कानूनी करार दिये जानेके बाद चाटुकारों, पद-लोलुपों और स्वार्थी लोगोंकी वह धमा-चौकड़ी मची कि अधिकांश लोगोंने कांग्रेसके मूलतत्त्वोंको भुला दिया। त्याग और तपस्याके स्थानमें भोगवाद और स्वार्थपरताका बोलबाला हुआ। कांग्रेसके उन व्यक्तियोंमें जो आन्दोलनसे पहले गिरफ्तार हो गये थे और जिनके हाथोंमें राजसत्ता थी और १९४२ के आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेवालोंमें एक खाई-सी खुद गई। पुराने मन्त्रियोंने और व्यवस्थापिका सभाओंके सदस्योंने यह देखा कि कहीं ऐसा न हो कि सत्ता उनके हाथसे निकल जाय और उधर दूसरी ओर सन् १९४२ के आन्दोलनमें मर-मिटनेवालोंमेंसे अधिकांश लोगोंने यह समझ लिया कि राजनीतिक सत्ताका हथियाना तैयार किया हुआ हलुआ है, जिसको वे फौरन ही गपक लेंगे। पुराने पिन्चैतों और नवीन प्रेरणासे प्रभावित सजीव कार्यकर्ताओंमें एक प्रकारसे रस्साकशी-सी होने लगी। उस रस्साकशीमें जीत हुई पुराने अखाड़ियोंकी और उस जीतकी जिम्मेदारी अप्रत्यक्ष रूपसे १९४२ के अनेक कार्यकर्ताओंकी है। पदोंको हथियानेकी होड़में पुराने लोग तो थे ही। उनकी दाढ़ीमें सत्ताका खून लगा हुआ था। पर नये व्यक्तियोंने भी पदोंको छीननेकी कोशिश की। इस पिन्चैतीमें १९४२ के अधिकांश लोगोंको मुँहकी खानी पड़ी। प्रतिक्रियावादी कांग्रेसजनोंका, जिन्होंने महात्मा गांधीके अगस्त सन् १९४२ वाले प्रस्तावका विरोध किया था और जो अपने ऊपर राजनीतिक ठेकेदारीकी पगड़ी जबरदस्ती रखना चाहते थे, उन्होंने अनेक ढंगोंसे कोशिश कर विरोध किया और चाहा कि सूबेकी व्यवस्थापिका सभाओंमें वे ही लोग जायँगे, जो उग्र नीतिकी

रोक-थाम कर सकें और मन्त्रिमण्डलके इशारेपर चल सकें। समाजवादी दल और तथाकथित गांधीवादी दल दोनोंमें वह प्रतिद्वन्द्विता खड़ी हुई कि एक-एक नामके लिए पार्लमेण्टरी बोर्डोंको बड़ी मगजपच्ची करनी पड़ी। जिन लोगोंने सन् १९४२ के आन्दोलनको गुण्डोंका आन्दोलन बताया था, उन्होंने बड़ी आर्जूमिन्नतसे अपनी करनी और योग्यताके गीत गाकर सूबेकी व्यवस्थापिका सभाओंके लिए अपनी नामजदगीका चुनाव करवा ही लिया। जिन दिनों पार्लमेण्टरी बोर्डकी बैठकें उम्मेदवारोंके चुनावके लिए हुआ करती थीं, उन दिनों प्रत्येक जिलेसे दर्जनों उम्मेदवार सूबोंकी राजधानियोंकी खाक छाना करते थे। किसी-किसीने तो राजधानीकी यात्रामें सैकड़ों रुपये बरबाद कर दिये। अपनी बिरादरीके बहुमतकी विभीषिका दिखाकर कई एकने तो पार्लमेण्टरी बोर्डतकको प्रभावित कर दिया और स्थान लेनेके खातिर पार्लमेण्टरी बोर्डके द्वारा लीगी मनोवृत्तिकी पुष्टि की। हमें कई जिलोंके ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रोंका पता है, जहाँपर बिरादरी-विशेषकी तुष्टिके लिए पार्लमेण्टरी बोर्डोंने बिरादरी-विशेषके लोगोंको चुनावके लिए उम्मेदवार बनाया। व्यावहारिक दृष्टिसे यह बात कही जा सकती है कि कांग्रेसको अपने बहुमतके लिए आदमियोंको अपने टिकटपर चुनना था। पर ऐसा कहनेवाले इस बातको भूल जाते हैं कि इस प्रकारकी बातें मान लेना, बुनियादी बातोंपर समझौता करना, बुराईसे समझौता करना है, शैतानसे समझौता करना है। फलस्वरूप अनेक कांग्रेसवालोंने भी अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए चुनावको जीतनेके लिए बिरादरीका सहारा पकड़ा है। यहीं नहीं, पद-प्राप्तिके बवण्डरमें हमारी बहनोंने भी ऐसे प्रस्ताव पास किये हैं कि १ फीसदी जगह व्यवस्थापिका सभाओंमें स्त्रियोंके लिए सुरक्षित रखनी चाहिए। यों कहनेको तो यह बात बड़ी सीधी है। महिलाओंकी उन्नति तथा उनकी देश-सेवाकी बात है। पर इसके पीछे है लीगी मनोवृत्ति। व्यवस्थापिका सभाओंके वर्तमान मेम्बर अपने स्थानोंसे चिपके रहना चाहते हैं और वहाँपर दुबारा चुने जानेके लिए वे अनेक कारण ढूँढ़ते हैं।

कांग्रेसके कानूनी करार दिये जानेके बाद महात्मा गांधीकी एक ऐसी हस्ती थी, जो एक द्रष्टाकी भाँति लोगोंको चेतावनी देती थी । युद्धोत्तर समस्याओंके कारण चोरबाजारीका बाजार गरम हुआ । बंगालके लीग मन्त्रिमण्डलने चोरबाजारीके लिए खुलेआम हरकतें शुरू कीं। अन्य कांग्रेसी सूबोंमें भी चोरबाजारियोंकी एक बिरादरी कायम हो गई और चोरबाजारी करनेवालोंमें कांग्रेसजन भी शामिल हो गये। नैतिक अराजकताका साम्राज्य-सा हो गया । उदाहरणके लिए एक व्यापारी महाशयने बंगाल और आसामकी गायोंको युद्धकालमें कटाकर अथवा कटवाकर गोरोंके लिए बिकवा दिया और चुनाव आनेपर वे बड़ी शानसे कांग्रेस उम्मीदवार बना दिये गये और व्यवस्थापिका सभामें पहुँचा भी दिये गये। लीगियों और मुनाफाखोरोंमें चोली-दामनका साथ हुआ । हिन्दू-हितोंवालों और इस्लामको खतरेसे बचानेवालोंकी मुनाफाखोरीमें साँठ-गाँठ थी ।

कांग्रेसजनोंमें पारस्परिक वैमनस्यका एक कारण यह भी हुआ कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंतकने उन जालिम अत्याचारियोंके विरुद्ध कुछ नहीं किया, जिन्होंने सन १९४२ में अमानुषिक अत्याचार किये थे । ढपोरशंख बातें बहुत कही गईं। वादे भी किये गये। चोरबाजारी करनेवालोंको फाँसीतक देनेकी बात कही गई; पर व्यावहारिक दृष्टिसे हुआ कुछ नहीं। फलस्वरूप १९४२ के कार्यकर्ताओंमें क्षोभ हुआ और वे खयाल करने लगे कि चाहे पन्तजी हों या पालीवालजी, नरेन्द्रदेवजी हों या सम्पूर्णानन्दजी, श्री कृष्णसिंहजी हों या कृष्णवल्लभ सहायजी, शुक्लजी हों या रेडी साहब सब-के-सब हाँ-में-हाँ मिलानेवालों और पदोंसे चिपके रहकर उनकी सहायता करनेवालोंको ही चाहते हैं। कांग्रेसके कानूनी करार दिये जानेके बाद अधिकांश जालिम सरकारी कर्मचारियोंने साम्प्रदायिकताकी आड़ ले ली । हिन्दू अत्याचारी पुलिसवाले अप्रत्यक्ष रूपसे हिन्दुओंके हितोंकी चर्चा करके हिन्दुओंकी सहानुभूति लेने लगे और मुसलमान लीगियोंकी हामी भर मुसलमानोंके भले बन गये । ऐसे धूर्तोंने कुछ कांग्रेसवालोंकी भी शरण ले ली । उधर महात्माजीने देश-भरको चेतावनी

दी कि चोरबाजारी नहीं होनी चाहिए और न देशके टुकड़े होने चाहिए। विभाजनकी बातको लेकर मतभेदका जो जहर फैला, उसका विवेचन यहाँ नहीं करना। विभाज-रूपी गरलका पान करना पड़ा और विभाजनजन्य देशमें जो रक्तपात हुआ, वह तो इतिहासका एक कलंक है। असली बात यह है कि आन्दोलनके समाप्त हो जानेके बाद देशमें एक विचित्र प्रतिक्रिया पैदा हो गई। अपने त्याग और तपस्याकी लोग कीमत लगाने लगे, मानो उन्होंने जेल जानेका सौदा किया था। अच्छा होता कांग्रेस उन जेल जानेवालोंको हर्जाना दे देती, जो हर्जाना लेनेको तैयार हो जाते और यह कह देते कि भविष्यमें वे अपनी सेवाओंके लिए कोई पद नहीं चाहेंगे। रचनात्मक कार्यक्रमको कांग्रेसवालोंतकने ताकमें रख दिया। यादवोंकी भाँति वे पदोंके लिए लड़ने लगे। एथीनियन डिमोक्रैसीकी जो हालत हो गई थी, वही हालत कांग्रेसजनोंतककी हो गई। बस, एक छोटा-सा दस्ता महात्मा गांधीके आदमियोंका जरूर था, जो उनके रचनात्मक कार्यको चलाता रहा। यह बात नहीं है कि महात्मा गांधीकी प्रतिष्ठा कम हो गई थी। उनकी मान-मर्यादा तो दिन दूनी बढ़ रही थी। कलकत्ते और नोआखालीके चमत्कार उनके सफल जीवनके प्रमाण हैं और उनके व्यावहारिक आदर्शवादके कीर्ति-स्तम्भ हैं।

तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय, तो हमारे देशमें भी सन् १९४२ के क्रान्तिके बाद वे ही प्रवृत्तियाँ जोर मार रही हैं, जो फ्रांस और रूसकी राजक्रान्तियोंके बाद मुँह बाकर उन देशोंमें खड़ी थीं। लोकतन्त्रके नामपर इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस और अमेरिकामें जो बातें हुई, उन्हींका प्रादुर्भाव हमारे यहाँ हो रहा है। सन् १९४२ की क्रान्तिके बाद राजनीतिक सत्ता धीरे-धीरे औद्योगिक समाजके हाथोंमें केन्द्रीभूत होती जा रही है। अगर कोई गहराईसे इन बातोंको खयाल करे तो उसकी यह समझमें आ जायगा कि जमींदारों और सामन्तोंके स्थानोंमें नए प्रकारके भयंकर सामन्तवादी और पूँजीवादी लोग तैयार हो रहे हैं। चण्ड-मुण्डकी भाँति हमारे आधुनिक औद्योगिक नेता देशके आर्थिक जीवनपर अपना अधिकार जमा रहे हैं।

चारों ओर नवीन प्रकारके शासक तैयार हो रहे हैं। रूस जिस प्रकार लोकतन्त्रके तटपर पहुँचकर लोकतन्त्र-विरोधी प्रगतिमें फँस गया है, अमेरिका जिस प्रकार प्रतिक्रियावादियोंका अड्डा है, उसी प्रकार हमारे देशमें भी वास्तविक स्वतन्त्रताका दूसरा ही रूप आ रहा है। देशका ही नहीं, वरन् विश्वका त्राण महात्मा गांधीके आदर्शोंपर चलनेसे सम्भव है; पर जिन प्रवृत्तियोंकी ओर हमने संकेत किया है, उन्हीं दुर्धर्ष प्रवृत्तियोंके कारण हमारे ही जीवनमें विश्वके महाप्राण बापूजीका वध किया गया। उस वधकी नैतिक जिम्मेदारी कांग्रेसजनोंपर भी है। कितने कांग्रेसजन हैं, जो कपड़ेके मामलेमें भी स्वावलम्बी बन पाये हों ? हमने स्वयं कई कांग्रेस एम० एल० ए० ओंको यह कहते सुना कि महात्मा गांधी तो आदर्शकी बातें कहते हैं पर वे चलती नहीं। हमारे जीवनका यह अभिशाप है कि इस प्रकारका वायुमण्डल आन्दोलनके बाद देशमें उत्पन्न हो गया।

जो परिस्थिति आज है, उससे तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि महात्मा गांधीके बताये मार्गपर हम लोग नहीं चले, यदि जनता-जनार्दनकी खातिर हमने वास्तविक आजादी नहीं ले पाई और हम अपना राष्ट्रीय चरित्र नहीं बना सके, तो हमारे देशमें गुण्डाशाही बढ़नेकी आशंका है और चोरबाजारी करनेवालोंके हाथमें सत्ता सरकनेकी आशंका है।

यह ठीक है कि हम सतर्क हैं। हमारे बड़े-बड़े नेता भी राहेरास्तपर हैं। उन्हें विकट समस्याओंका सामना करना पड़ रहा है। उलझनें कुछ सुलझ भी रही हैं, पर अभी कठिनाइयाँ हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि हम अधिक जागरूक हों और वास्तविक स्वतन्त्रताके मूलतत्त्वोंको समझें, ताकि हमारी आजादी विश्व-कल्याणका एक साधन बन सके।

आन्दोलनके बादकी बातोंके पीछे हमारे देशके कई वर्षोंका इतिहास है, जिसपर पूरा प्रकाश डालनेके लिए काफी स्थान चाहिए। यों कहने और लिखनेके लिए क्या कहना :—

'सब कहनेकी बातें हैं कुछ भी न कहा जाता।'

हत्याका षड्यन्त्र

सन् १९३९। महीना शायद अप्रैल या मई। अधिक कार्य करनेसे इन पंक्तियोंका लेखक कुछ थकावट महसूस करता था, इसलिए वह कटियारी रियासत (हरदोई, यू० पी०) के राजा साहबसे एक महीनेकी छुट्टी लेकर अपने आगरेके निवास-स्थान बल्का बस्ती आया। विचार था आराम करने और कुछ अच्छे लेख लिखनेका। कटियारी रियासतका वह मैनेजर था।

अवधके ताल्लुकेदार अपनी ताल्लुकेदारियोंकी अन्तिम साँसें-सी ले रहे थे। उनमेंसे अधिकांशको यह भान भी नहीं था कि जमींदारीका उन्मूलन उनका द्वार खटखटा रहा है। अधिकांश रियासतोंमें जोर-जुल्म, मनमानी तथा हुकूमतके नामपर किसान पीसे जा रहे थे। राजा और नवाबोंके चपरकनातियोंकी बन रही थी। खिदमतगार, जिलेदार तथा अन्य अनेक छोटे कर्मचारी खुलकर खेल रहे थे और जो कोई स्थिति सुधारनेकी कोशिश करता था, न्याय और ईमानदारीपर अमल करता था, वह राजा और रानियोंकी आँखोंमें खटकता था। खिदमतगार और चाटुकार, जिनकी जीविका मार-धाड़पर अवलम्बित थी, नहीं चाहते थे कि रियासतोंकी हालत सुधरे। इन पंक्तियोंके लेखकने कटियारी रियासत-की हालत सुधारनेमें प्राणपणसे प्रयत्न किया था। बेगार बन्द करा दी थी। रिश्वतको रोका था। किसानोंकी सुविधाके लिए अनेक कार्य किये थे। ताल्लुकेदारी जमानेमें किसानोंकी जो हालत थी, उसपर बड़े मजेमें थीसिसें लिखी जा सकती हैं! कटियारी रियासतमें ऐसे अनेक जिलेदार थे, जो राजा साहबके सगे-सम्बन्धी थे। उनका वेतन बहुत कम था, एक-दोका तो था ही नहीं। उदाहरणके लिए कटियारी रियासतका एक इलाका था टडियावाँ। वहाँके जिलेदार थे राजा साहबके खास मामा ठाकुर

हरगोविन्द सिंह, जो भानजेके हितके लिए वेतन कुछ भी नहीं लेते थे, पर काश्तकारोंकी ६-७ हजार बीघा जमीन उनके अधीन थी। आधी जमीनका लगान लगभग ३ हजार रुपया वे रियासतको देते थे। यदि इन पंक्तियोंका लेखक भूल नहीं करता, तो उसको वे ५-६ रुपया बीघापर उठाते थे। तीन-चार हजार बीघापर वे खुद गन्नेकी काश्त करते थे। शक्कर, गुड़का इंजिन था। बेगारमें सब। सालाना १५-२० हजार रुपया वे कमाते थे, पर वेतन कुछ भी न था! दो-तीन अन्य जिलेदार भी मामा थे। जिलेदारोंके ऊपर अफसर थे एक दूसरे बड़े मामा ठाकुर करनसिंह। उनके मुँहसे किसानोंके प्रति गालियोंका पतनाला चला करता था। हरदोईके किसानोंमें एक मजाक था कि माहिल मामा, कंस मामा और कटियारीके मामा। इन पंक्तियोंका लेखक उन सबके ऊपर राजा साहबके अधीन मैनेजर था। काश्तकार और स्वयं राजा उदयप्रतापसिंहको छोड़कर शेष सब चाहते थे कि किसी प्रकार इन पंक्तियोंका लेखक रियासतसे हट जाय; क्योंकि जालिमों, रिश्वतखोरों, रियासत तथा किसानोंको नुकसान पहुँचानेवालोंको उसने शिकंजेमें कस लिया था।

कटियारीके राजा उदयप्रतापसिंहजीकी रानी थी डुमराँवके महाराजाकी बहिन। अफसोस है कि आज न तो राजा उदयप्रतापसिंहकी पहली पत्नी महाराज डुमराँवकी बहिन हैं और न उनके वे भाई महाराजा रामरणविजयसिंह। डुमराँववाली रानी साहिबाका एक मुँहलगा नौकर था, जो अब भी है। नाम था संकटा ब्राह्मण। संकटकी धाक नौकरों और जिलादारोंपर बहुत थी। रानी साहिबाकी नौकरीके तुफैलमें संकटने इन पंक्तियोंके लेखकपर रोब गाँठनेकी कोशिश की। कभी-कभी वह रानी साहिबाके नामपर खजानेमेंसे रुपया लेना चाहता। कभी हुकूमत प्रदर्शनके लिए बन्दूकोंको भेज देता। इन पंक्तियोंके लेखकने सब रोका। गुपचुप मन्त्रणा हुई कि मैनेजर साहब (इन पंक्तियोंके लेखक) को हटाया जाय। इन पंक्तियोंके लेखकको राजा साहबने यू० पी० गवर्नमेण्टसे पाँच वर्षके लिए लिखा-पढ़ी करके बुलाया था। रानी साहिबाको सलाह दी गयी कि

पाँच वर्षका वेतन २५ हजार देना कोई बड़ी बात नहीं है। इस समय रियासतकी आमदनी कम हो गयी है। मौसमपर भूसा, बेगार नहीं आता। छोटे ठाकुर दबावमें नहीं रहे। असली बात थी कि रियासतमें नैतिक दबाव बढ़ गया था, अन्याय खतम हो गया था और प्रजा राजाके लिए मरनेको तैयार थी। संकट सब धूर्त जिलेदारों आदिमें चर्चा करता कि राजा-रानीको कोई नहीं पूछता, केवल शर्माजीका बोलबाला है। पर असलमें आमदनी बढ़ गयी थी, प्रबन्ध ठीक था और बीचमें हाथ मारने-वालोंकी पूछ नहीं रही थी। मुकदमेबाजी कम हो गयी थी। इस लेखक-को १६-१६ घण्टे काम करना पड़ता था, मुकदमे सुलझाने पड़ते और समय निकालकर 'विशाल भारत' के लिए काम करना पड़ता।

एक दिन हरदोईके तत्कालीन पुलिस कप्तानने आकर कहा, 'आपके विरुद्ध गहरा षड्यन्त्र चल रहा है। आप ज्वालामुखीके मुँहपर बैठे हैं। कुसूर आपका है कि आपने रिश्वत बन्द कर दी है। मैं जिला पुलिसमें नहीं बन्द कर सका। बस यही कुसूर है आपका।' इन पंक्तियोंके लेखक-ने अन्यमनस्क होकर उत्तर दिया, 'जीवन तो परमात्माके अधीन है। फिर भगवान् कृष्णके अनुसार—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

आखिर मैंने कौन-सा क्रान्तिकारी काम किया है, जिसके कारण लोग षड्यन्त्र कर रहे हैं। राजा-प्रजा दोनोंका हित मैं कर रहा हूँ। बीचके चपरकनातियोंका मुझे डर नहीं।' कप्तान साहब चले गये। इन पंक्तियों-के लेखकको मालूम हुआ कि कई व्यक्तियोंने राजा साहबको सुझाया कि इन पंक्तियोंके लेखकको पाँच वर्षका वेतन देकर अलग कर दिया जाय। उसके बाद इन पंक्तियोंके लेखकके विरुद्ध जो रोष और द्वेष था, वह अन्तर्मुखी-सा हो गया। संकट तथा अन्य कई जिलेदारोंकी मुखाकृति और व्यवहारसे पता चलता था कि उनके दिलोंमें आग भड़क रही है। रानी साहिबाका खर्च बढ़ता जाता था। मैनेजरकी हैसियतसे इन पंक्तियोंके लेखकने बजटके अनुसार खर्च करनेका आग्रह किया। पर घायल सिंहनी-

की भाँति रानी साहिबा फट पड़तीं कि रियासत उनकी है, चाहे जितना और चाहे जहाँ वे खर्च करें, मैनेजर कौन होता है। इन पंक्तियोंके लेखकने कहलवा दिया कि मैनेजर मालिक नहीं है, वह तो ड्राइवर है। उसे प्रबन्ध करना है। प्रबन्ध रियासतके मालिककी रायसे ही करना है। उत्तर तो था ही नहीं, तब संकट और रानी साहिबाने इन पंक्तियोंके लेखकके नौकरोंपर कृपा की। वे भी उनकी हाँमें हाँ मिलाने लगे। पर रियासतके सुधार तो कारगर हो ही रहे थे। कुछ दिनों ऐसे ही चलता रहा और विरोध षड्यंत्रका ज्वालामुखी भीतर धधकता था। लेखकको अवकाश ही न था मुकदमों, मौके आदि देखने आदिसे। एक बार खाली पड़ी जमीनपर कृषि फार्म खोल दिया जाय, तो जमींदारीके बाद रियासतकी तत्कालीन आमदनीसे कहीं अधिक आय हो जायगी, ऐसी लेखकने राय दी। राजा उदयप्रतापसिंहको सुझाव पसंद आया। पर जब उसकी चर्चा उन्होंने रानी साहिबासे की, तो वे आपेसे बाहर हो गईं और बोलीं, 'राजा नौकरी और खेती नहीं करते, वे हुकूमत करते हैं।' ऐसे ही वातावरणमें इन पंक्तियोंका लेखक आरामकी खातिर एक मासकी छुट्टी लेकर आगरे आया।

× × ×

सायंकालके आठ बजे इन पंक्तियोंका लेखक अपने निवास बल्का बस्ती आगराके मकानपर टहलकर आया और बैठकमें लेट गया। पंखा खोल दिया। थोड़ी देर बाद बाहर सड़कपरसे बैठकमें आवाज आई, 'हुजूर, मिलना चाहता हूँ।' हजूरका प्रयोग सुनकर लेखकके कान खड़े हो गये कि यह व्यक्ति कौन हो सकता है। आवाज देकर बुलाया। भीतर पास आकर वह डंडवत लेट गया, पैर छुए, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। विस्मयसे लेखकने पूछा, 'कौन हो ? कहाँसे आए हो ?' आगन्तुकने हाथ जोड़ें, नीची निगाह किये, डरती आवाजमें कहा, 'हजूर, मेरा नाम प्रागनारायण (प्रयागनारायण) है। मैं ब्राह्मण हूँ। खदीपुरसे आया हूँ।' स्मरण रहे, खदीपुर कटियारी रियासतका हेड क्वार्टर था। रियासतका

नाम सुनते ही इन पंक्तियोंका लेखक झल्ला गया और डपटकर कहा, 'मैं छुट्टीपर आराम करने आया हूँ। जो कुछ खेतका मामला हो, राजा साहबसे कहो। न यहाँ कागजात हैं, न शिनाख्तको कोई आदमी।'

सहमकर प्रयागनारायणने कहा, और कहनेमें आँखें ऊपर हुईं, 'शर्माजी! मेरी बात सुन लीजिये। खेतके मामलेमें नहीं आया हूँ। आप मुझे माफ कर दें और जो करना चाहें करें।' यह कहकर उसने फिर पैर पकड़ लिये। इन पंक्तियोंके लेखकने बिगड़कर कहा, 'क्या नाटक कर रहे हो? किस बातकी माफी?'

प्रयागनारायण—'आप जरा मेरी बात तो सुन लें।'

मैं—'क्या बात है, बताओ।'

प्रयागनारायण—'आपके मारनेके लिए मुझे रानी साहिबा और संकटने पाँच हजार रुपया देनेका वायदा किया था। चार महीनेतक मैं ठाठसे खदीपुर और आस-पास रखा गया। तीन बार कोशिश भी की, पर हम लोग असफल रहे...।'

मैं—'बको मत। तुम्हारी आँखोंसे मालूम देता है कि खराब आदमी हो। तुम मुझे मारनेको क्यों तैयार हुए? कहाँके रहनेवाले हो? किसीने सिखा-पढ़ाकर भेजा है? यहाँसे भाग जाओ, नहीं तो ठुकाई हो जायगी और तुम्हारी पहलवानी रखी रह जायगी।'

प्रयागनारायण—'शर्माजी महाराज! मैं ठीक कहता हूँ। रुपयेके लालचमें मैं आ गया। ठाठसे रहना और अत्याचारीको मारकर पाँच हजार रुपया लेना मैंने बुरा नहीं समझा? मैं उन्नाव जिलेका रहनेवाला हूँ। जब हरदोई जिलेके डाकुओं और बदमाशोंने पाँच-पाँच दस-दस हजार रुपयेपर आपको मारनेसे इन्कार कर दिया, तब बाहरसे किसीको बुलाना तय किया। रियासतका इलाका उन्नाव जिलेमें है। मुझसे कहा गया कि रियासतके मैनेजर शर्माजी बड़े जालिम हैं, लोग उनसे तंग आ गये हैं। एक-दो मास तुम आरामसे रहना, फिर उनका कत्ल करके पाँच हजार

रुपया तथा इनामके साथ घर चले जाना।'

मैं—'मैं विश्वास नहीं कर सकता। मैं कैसे मानूँ कि तुम खद्दीपुरके आस-पास रहे और तीन बार मैं बालबाल बचा? तुम यह सब बता सकोगे, तब मैं मानूँगा। तुम कहाँ-कहाँ रहे?'

प्रयागनारायण—'मैं ठा० नवाबसिंह जिलेदारके यहाँ रहा। वे भी इस षड्यंत्रमें थे। गिरवरसिंहकी कोठरीमें, संकटके गाँवमें। राजा साहबके कई मामाओंका मुझे आशीर्वाद प्राप्त था। इस बातका सुबूत कि हम लोगोंने तीन बार कोशिश की और हम सफल भी हो गये होते, पर भगवान्‌ने आपकी रक्षा की। मुझे ७-८ व्यक्तियोंके अलावा किसी औरसे नहीं मिलने दिया जाता था।'

मैं—'अपने प्रयत्नोंके बतानेसे पूर्व, तुम यहाँ क्यों आये हो, यह बताओ? क्या रुपया नहीं मिल सका? कोई शरारत तो है नहीं। शरारत होती तो बताते ही क्यों?'

प्रयागनारायण—'जब आप एक माहकी छुट्टी लेकर चले आये, तब मेरे ऊपर कड़ी देख-रेख नहीं रही। मुझे इधर-उधर बातें करनेका मौका मिला। सबसे पहले मैंने आपके रथवान शंकरसे पूछा। यह पूछे जानेपर कि आप कैसे आदमी हैं, शंकरने उत्तर दिया कि आप आदमी नहीं, देवता हैं। किसानों और गरीबोंके बच्चे रोज दुआ देते हैं। जिनको रहनेको जगह न मिलती थी, वे मुफ्तमें स्थान पा गये। हमारी मुसीबतें दूर हो गईं। चाल-चलनके बहुत अच्छे, रिश्वत और नशेसे दूर हैं। शंकरकी बातसे मुझे धक्का लगा। तब आसपासके गाँवोंमें भी पूछ-ताछ की। शंकरकी ही बात सच मालूम पड़ी। तब जाना कि जालिम और बदमाश वे ही हैं, जो आपको मरवाना चाहते हैं। मैं तो बदमाश हूँ ही, पर किसी भले बेकुसूरको मैं क्यों मारूँ? तब आसामी बाबू खजांची साहबसे आपका आगरेका पता पूछकर मैं यहाँ चला आया हूँ और माफी चाहता हूँ।'

मैं—'अच्छा यह बताओ कि तुमने तीन बार कैसे आक्रमण किया

और मैं कैसे बचा ? इसपर विश्वास हो जायगा, तब ही मैं तुम्हारी बात सच मानूँगा।'

प्रयागनारायण--'बस यही मैं भी चाहता हूँ कि आप सुनकर फैसला करें। सुनिए। आप गढ़ीके भीतर दुतल्लेपर बहुत बढ़िया कमरेमें रहते हैं। दो कमरोंके पीछे आपका रसोईघर है; पश्चिमकी ओर। पूर्वकी ओर कमरेके सामने काफी खुली जगह है और अन्तमें नीचे जानेको जीना है। बगलमें अरदलीका कमरा है। पर आप खुली जगहमें अकेले ही मसहरीमें सोते हैं। हरिभजन, आपका अरदली तोताराम तथा एक अन्य व्यक्ति आपसे दूर सोते हैं। संकट और रानी साहिबाने यह तय कराया कि गढ़ीके पीछे एक बड़ी सीढ़ी द्वारा चढ़ा जाय। संकटने मुझे रिवाल्वर दिया था। सीढ़ी लगाकर हम लोगोंको ऊपर चढ़ना था। सोतेमें ही आपकी गरदन तलवारसे हमें काटनी थी। रिवाल्वर तो आपके अचानक जागनेपर काममें लाना था। डरते हम सब आपसे थे, क्योंकि आपकी ताकत और निडरताका हमें भय था। बस, बड़ी सीढ़ी ओवरसियरके यहाँसे उठाकर आई। हम सब चढ़े, पर वहाँपर हमें आपकी चारपाई ही न मिली। हम चुपचाप रसोईघरकी तरफ गये, पर वहाँ चार चारपाइयाँ मिलीं, पर मसहरी एकपर भी न थी। दबे पाँव हम लौट आये। सीढ़ीसे जैसे ही नीचे उतरे और सीढ़ी उठाने लगे, वैसे ही पहरेदारकी आवाज आई कि क्या खटका है। हम सब सीढ़ी वहीं छोड़ तितर-बितर होकर सोनेके स्थानोंपर चले गये। आप बताइये कि आप अकेले ही मसहरीमें सोते थे या नहीं ? क्या किसी दिन आप वहाँसे चले गये थे ?'

प्रयागनारायणकी बात सुनकर इन पंक्तियोंका लेखक स्तम्भित रह गया। क्योंकि केवल एक दिनके अतिरिक्त मेरे पलंगकी जगह कभी नहीं बदली गई थी। उस एक दिन गरमी इतनी अधिक थी कि मसहरीमें पसीना आता था। मसहरी खोलनेपर मच्छरोंका आक्रमण। नींद नहीं आ रही थी। पछवा चल रही थी, पर कमरेकी आड़में लगती न थी। उठकर रसोईघरके पास गया। हरिभजन और तोतारामको जगाया कि

मसहरी हटाकर मेरी चारपाई वहीं ले आएँ, क्योंकि वहाँ हवा थी। हरि-भजनने मेरा पलंग लाकर लगा दिया। मैं सो गया। अगले दिन नीचे बड़ी सीढ़ीको पड़ा पाया, तो ओवरसियरसे पूछा कि मजदूर सीढ़ी क्यों पड़ी छोड़ गये हैं? ओवरसियरने बताया कि वहाँ न जाने क्यों सीढ़ी पड़ी है, वहाँ तो कोई मरम्मत भी नहीं है। प्रयागनारायणकी उपर्युक्त बातपर विश्वास होने लगा और फिर उससे पूछा, 'अब और बात बताओ।'

प्रयागनारायण—'आपको समझनेमें तथा आपकी गति-विधि जाननेमें मुझे तीन महीने लगे थे। किसानोंके साथ मैं आपके पासतक भी गया। पर सीधा हमला तो करना ही न था, क्योंकि भेद खुलनेपर सबपर मुकदमा चलता। हथौड़ा[1] रियासतका मामला सबको मालूम ही था। आपके सब काम बड़े कायदेसे होते थे। घड़ीकी सुइयोंकी तरह काम समयपर संचालित होता था। आप नियमित रूपसे पाँच बजे प्रातः रामगंगाके किनारे दयाल-पुरकी ओर जाते थे। एक-दो मीलकी दौड़ भी लगाते थे। साथमें किसीको ले नहीं जाते थे। ठीक ६ बजे लौट आते थे। खद्दीपुरसे आगे एक मील-की दूरीपर रामगंगामें एक बड़ा कोला (धह) है। रामगंगासे लगा एक अरहरका खेत था। निश्चय किया कि मैं उसी खेतमें बन्दूक भरकर बैठ जाऊँ, तब जब आप वहाँसे निकलें, लगातार दो फायरोंसे आपको मार दिया जाय। या तो गोली खाकर आप ही धहमें लुढ़क जाते या फिर हम सब भागकर धकेल देते। बिना लाइसेंसी बन्दूक भी उसीमें फेंक देते। कछुए-नाके लाशको समाप्त कर देते। आप कहाँ विलीन हो गये, कौन जानता। मैं रुपये लेकर चला जाता। गिरवरसिंहके कमरेसे आपका आना-जाना घड़ीसे मिलाया जाता। मैं आपका पीछा भी करता। बादमें किसी ज्योतिषीसे आपको मारनेका मुहूर्त भी निकाला गया। मुहूर्तके दिन मैं ठीक साढ़े चार बजे उठा। शौचसे निवृत्त होकर नाश्ता किया। लगभग पौने पाँच बजे हम लोग चले, क्योंकि ठीक पन्द्रह मिनट बाद आप गढ़ीसे

---

१. हरदोई जिलेमें हथौड़ा एक ८० हजारकी रियासत थी। वहाँके राजाको पत्नीके कत्लके मामलेमें १० बरस या ७ बरसकी सजा हुई थी। —लेखक

निकलते। पर अन्तुपुरवाके पास जाकर हमने देखा कि आप टहलकर वापिस आ रहे हैं। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस दिन नई बात कैसे हुई। पाँच बजे जाकर आप छः बजे लौटते थे। उस दिन जानेके समय आप लौट रहे थे। मुहूर्त बेकार गया। आपको दस-बीस गजसे देखकर हम दक्खिनको चले, तब आपने आवाज लगाई, कौन हो? क्या शिकारको जा रहे हो? तब मैंने उत्तर दिया कि हाँ, राजा साहबके लिए तीतर मारने जा रहे हैं। अब हुजूर, यह तो आप जानें कि आप हमेशाकी अपेक्षा उस दिन एक घण्टा पहले घूमने क्यों गये? पर हमारा मुहूर्त बिगड़ गया, बताइये बात ठीक है कि नहीं?'

मैं—'बात बिल्कुल ठीक है। मैं नियमित रूपसे रोज टहलता हूँ। टहलनेका मेरा समय पाँच बजेसे छः बजेतकका था। यह बात मुझे इसलिए याद है कि चार-पाँच वर्षोंमें केवल एक दिन ही बजाय पाँचके चार बजे टहलने गया। मुझे याद है कि बन्दूकधारियोंसे मैंने उनका गन्तव्य पूछा था। उस दिन मैं पाँचकी अपेक्षा चार बजे इसलिए टहलने गया था, क्योंकि टडियामाके लगभग ५० काश्तकार आये हुए थे। पूरी मिसिल देखनी थी, कागजात पढ़ने थे, पूछताछ करनी थी, जमकर बैठना था। अगर मैं जल्दी मामलेको न ले सका, तो फिर काश्तकारोंको एक दिन रुकना पड़ता। इसलिए मैंने छः बजे प्रातःकालसे काम प्रारम्भ करने और मुकदमा लेनेकी सूचना दे दी थी। इसीलिए मैंने अपने दैनिक क्रममें परिवर्तन किया था। और मुझे इसी कारण वह समय-परिवर्तन याद था। प्रयागनारायण तुम्हारी बात ठीक है।'

उत्सुकतासे मैंने पूछा, 'अब तीसरी बात कौन-सी है?'

प्रयागनारायण—'सुनिए हुजूर! आप एक महीनेकी छुट्टीपर आनेवाले थे। सबको यह बात मालूम थी कि अमुक तारीखपर हरदोई होते हुए आगरे जायेंगे। हमारे प्रयत्न असफल रहे थे, अबकी हमने सोचा कि तीसरे प्रयत्नमें अवश्य फलीभूत हों। आपके जानेकी तारीखमें ६-७ दिन थे। जानेके दो ही मार्ग थे। एक तो फतहगढ़ और फर्रुखाबाद होकर,

दूसरा हरदोई होकर। हमारी एक छोटी मीटिंग हुई और तय पाया कि उसी तारीखको फर्रुखाबादकी ओर रामगंगाकी शाखा कुण्डा और गंगा-जीके बीच बड़ेगाँवके जंगलके पास ६-७ आदमी तैयार रहें, जिनके पास दो पिस्तौलें हों। हमारे एक दलकी टुकड़ी हरदोईके मार्गमें जानेके एक दिन पहलेसे ही डट जाय; पलिया गाँवके आगे। यह काम दिनमें करना था। यह तो हम जानते ही थे कि आप अचूक निशानेवाले हैं, साथमें हथियार, हरिभजन और रथवान भी होंगे। पर हमें एक कमजोरी मालूम थी कि अगर कोई भी दुःखी किसानके रूपमें आपके पास पहुँचे, तो आप बात जरूर सुनेंगे। तय था कि ६-७ आदमी किसानोंके वेशमें लट्ठ लिए पिस्तौल छिपाये आपके पास जायँ। आप रथ रुकवाते ही। अपनी मुसीबतकी बात कहें और जैसे ही एक आदमी पैर छूनेके बहाने पैर पकड़-कर खींच ले, उसी समय पिस्तौल दाग दें। दूसरी पिस्तौलसे हरिभजनको भुगता जाय। आवश्यकतापर लट्ठ भी मारे जायँ। आस-पास कोई सुनने-वाला भी न था। तेजीसे भागकर वापिस चला जाय। हमने समझा था कि इस प्रयत्नमें कोई कमी न थी, पर इस बार भी जादूगरी हुई। निश्चित तिथिके पाँच दिन पूर्व ही आप अचानक चल दिये। जब आपके जानेका पता चला, तबतक आप गंगा पार कर गये थे।'

मैं—'बात यह भी ठीक है। सूबा कांग्रेस कमेटीका पत्र आया था कि मैं अमुक आवश्यक कार्य हेतु हरदोईमें उनसे मिल लूँ। खद्दीपुर कोई राजनैतिक अड्डा न था। क्योंकि मुझे अपनी निश्चित तिथि उसी आधारपर बनानी थी, अतः मेरे जानेकी तिथि सबको मालूम थी। पर जानेकी तिथिसे पाँच दिन पूर्व जब यह सूचना मिली कि अब हरदोईमें नहीं मिलना है, तब मैं उसी दिन घरके लिए चल पड़ा, क्योंकि छुट्टी ले ही चुका था। अब तुम यह बताओ कि क्या तुम लिखकर देनेको तैयार हो?'

प्रयागनारायण—'लिखकर देना हुजूर! आप आज्ञा दें, तो रानी और संकटको मार दूँ।'

मैं—'मैं उसूलन हत्याका घोर विरोधी हूँ। हत्या करनेसे बदले और ईर्ष्याकी भावना शान्त नहीं होगी। सीधी लड़ाईमें या देशके शत्रुकी और बात है। उद्देश्य-पूर्तिकी अपेक्षा उसके साधनोंका मैं अधिक कायल हूँ। यदि मैं तुमसे ऐसा करा दूँ, तो रानी और संकट, मुझमें क्या अन्तर होगा ? यदि तुम स्वयं ऐसा करोगे, तो मैं तुम्हें पकड़वा भी दूँगा।'

प्रयागनारायण—'आप इन लोगोंपर मुकदमा दायर करें। मैं पूरा सूबूत दूँगा।'

मैं—'मैं ऐसा हरगिज नहीं करूँगा, क्योंकि मेरी रक्षा मेरे बुद्धिबल और शरीरबलसे नहीं हुई है। परमात्माने रक्षा की है। तब फिर रानी और संकटसे बदला लेनेवाला मैं कौन ? अगर खद्दीपुरमें तुम यह सब बताते तो मैं कानूनी तौरपर भुगतता। राजा उदयप्रतापसिंह और उनके पिता स्व० राजा रुक्मांगदसिंहसे मेरे बड़े अच्छे सम्बन्ध रहे हैं। मैं उनसे विश्वासघात नहीं कर सकता। उनका कोई हाथ है नहीं। बदमाश तो प्रतिबिम्ब रूप थे, उनका अपना दम न था। इलाकेमें मेरी इज्जत है। मेरी किसी कार्यवाहीसे उसमें अन्तर पड़ेगा। भगवान्‌ने जब मेरी रक्षा की है, तब वे ही दण्ड दें, चाहें पुरस्कार। पर काम तुम्हें करना चाहिये। इच्छा हो, तो करो।'

प्रयागनारायण—'बताइये, क्या करना है ? मैं हर तरहसे तैयार हूँ।'

मैं—'हरदोई चले जाओ और अदालतमें इन सब घटनाओंका लिखित बयान दे दो।'

प्रयागनारायण—'यह तो मामूली-सी बात है। सच बात तो मैं चाहे जहाँ कह दूँगा। आप और भी कुछ कहलवाना चाहें, तो कह दूँगा।'

मैं—'गलत बातें मुझे कुछ नहीं कहलवानी हैं। जो तुमने मुझसे कहा है, वह ही सब अदालत हरदोईमें कह दो।'

प्रयागनारायण—'मैं तैयार हूँ।'

× × ×

प्रयागनारायणने हरदोई जाकर हलफिया बयान मजिस्ट्रेटके

सामने दे दिया। बयानके होते ही कटियारी रियासतमें भूकम्प-सा आ गया। संकट, रानी, राजा साहब तथा उनके चपरकनाती घबरा गये। किसीको गिरफ्तारी, किसीको लम्बी सजाका भय था। यह तो सबको मालूम ही हो गया कि रियासत कोर्ट आफ वार्ड्स हो जायगी। लोगोंने सलाह दी कि फौरन माल-मन्त्री श्री रफीअहमद किदवईसे मिलकर राजा साहब रियासत कोर्ट आफ वार्ड्स कराके अपना बचाव करें। किदवई साहब बहुत बिगड़े। क्योंकि एक बार जब इन पंक्तियोंके लेखकने उन्हें रियासत बुलाया था, तब ही वे हालत जान गये थे। तीन दिनके अन्दर रियासत कोर्ट आफ वार्ड्स हो गई। लेखकसे कहा गया कि यदि वह चाहे, तो सरकारी मैनेजरके तौरपर रह सकता है। जहाँ मान-प्रतिष्ठा न हो, वहाँ जबरदस्ती रहना ठीक नहीं। फिर वहाँ पहुँचकर किसी-न-किसीके खिलाफ कार्यवाही करनी पड़ती। ऐसा लेखकको मंजूर न था। जब पुलिसको यह पता चला कि प्रयागनारायणके बयानके बाद मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है, तब मामला ठप्प हो गया।

लेखकका अटल विश्वास है कि मानवी शक्तिके परे दैवी शक्ति है, जो इस जगत्‌का तथा मनुष्योंके भाग्यका संचालन करती है। मनुष्य अपने अहंकार और उद्दण्डतामें शक्तिशाली, व्रती, धीर और वीर बनता है। यह भूल जाता है कि कर्तव्य करना उसका काम है, फलकी प्राप्ति उसके हाथमें नहीं है। दैवी शक्ति विधिवत् रूपसे उन्नति और अवनतिके ताने-बानेसे भाग्य-निर्माण करती है। नट-नागर मानवी पुतलोंको मरकट-की भाँति नचाते हैं। मनुष्यके संचित कर्म बहुत-कुछ उसके लिए सहायक होते हैं। नवीन कर्म, अच्छे और बुरे, उसके जीवनपर असर रखते हैं। पुनर्जन्म और कर्म-विपाकको जाने बिना संसारकी गुत्थियाँ समझमें नहीं आतीं। अवतारी पुरुष गांधीजीको गोली खानी पड़ती है, यह सब कर्म-विपाक नहीं तो क्या है! इन पंक्तियोंके लेखकका विश्वास है कि उस जैसा क्षुद्र व्यक्ति हत्याके तीन प्रयत्नोंपरसे भी बच गया और महात्मा गांधी जैसे महापुरुष गोलीके शिकार हुए, यह सब विधिकी विडम्बना नहीं तो

क्या है ! शायद अवतारी पुरुष महात्मा गांधीको उससे अच्छी मौत नहीं मिल सकती था और लेखक जैसे क्षुद्र प्राणीको तीन षड्यन्त्रोंके बाद भी बचाया । कोई रहस्य तो है ही । भला या बुरा इसे कोई क्या बताये । तर्कसे यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती । तर्कसे परे यह बात है । आखिर जिन्दगी है क्या ? फानीके शब्दोंमें वह—

इक मुअम्मा है समझनेका न समझानेका ।
जिन्दगी काहेको है, ख्वाब है दीवानेका ॥

दीवानेके इस स्वप्नमें लेखकके अपने संघर्षमय जीवनके झंझावातमें ऐसी अनेक घटनाएँ घटी हैं । इसलिए ऐसी घटनाएँ उसके लिए साधारण हो गई हैं ।

× × ×

गत दिसम्बर सन् १९५८ में इन पंक्तियोंका लेखक ठीक १९ वर्ष बाद एक मित्रसे मिलने गया । मार्ग खद्दीपुर होकर था । खद्दीपुरसे दो मील दूर ठहरना था । खद्दीपुरसे निकला, तो मालूम हुआ कि राजा साहब वहीं हैं । गढ़ीके दरवाजेपर जो नजर डाली, तो मालूम हुआ कि किसी दूसरी जगह आ गया हूँ । रियासतका तबेला नदारद था । उसके भग्नावशेष भी न थे । जहाँ ३०-४० बढ़िया घोड़े थे और हाथी झूमा करते थे, वहाँ चटियल मैदान था । बैलों, भैसोंकी जगह भी गायब थी । पहलवानोंका अखाड़ा तो शर्मसे धरतीमें घुस गया था । जहाँ हर समय ३००-४०० आदमी रहते थे, वहाँ हवाइयाँ उड़ रही थीं । अस्त-व्यस्त खड़ी गढ़ीकी दीवारें रियासतके पुराने वैभवका मर्सिया पढ़ रही थीं । दरवाजेमें घुसा तो फाटककी छतको टूटा पाया । पीछेसे वायुका एक झकोरा उठा, छतको पार करके दूसरी ओर निकल गया, मानो दूर बैठे राजा उदयप्रतापसिंहको संकेत करते हुए दुःख भरे उच्छ्वासमें कहाः—

रिंद खाली हाथ बैठे हैं, उड़ाकर ख़ुमोकुल ।
अब न कुछ शीशेमें बाकी है न पैमानेमें है ॥

आगे जाकर राजा साहबसे भेंट हुई । उसी पुरानी इज्जतसे मिले ।

स्वास्थ्य बिगड़ा दिखाई पड़ा। पर भोलापन वही पुराना था। उनसे मिलने कुछ लोग आ गये थे, वैसे सब सूना था। गढ़ीका एक चक्कर लगाया। दिल भरा हुआ, तूफान-सा उठा, आँखोंके फाटक उसे रोक न सके। देखकर औरोंके भी नयन सजल हो गये। जिसको बनानेमें लेखक-ने इतना परिश्रम किया था, वह सब समाप्त हो गया था। विधि-विधान-में ऐसा होना ही था, पर मनुष्य अपनी कमजोरीमें पश्चात्ताप करता ही है। लौटकर कुछ बातें कर चल दिया। बाहर संकटसे भेंट हुई। उसने नम-स्कार किया और कहा, 'आप तो बूढ़े हो गये।' यह जवाब देकर कि 'तुम्हारी जवानी कबतक रहेगी?' लेखक डिडौन गाँवकी ओर चला गया। चलचित्रोंकी भाँति लगभग २७ वर्षोंका हरदोईका इतिहास सामने आया और विलीन हो गया।

१४

पिताजीकी अस्थियोंका विसर्जन

बात तो है सन् १९०६ की। पर ऐसा लगता है कि मानो यह कलकी ही हो। कारण यह है कि बालपनमें हृदय-पटलपर जो घटनाएँ अच्छी तरह अंकित हो जाती हैं, वे बुढ़ापेतक अमिट रहती हैं और बिलकुल ताजी प्रतीत होती हैं।

आयुका दसवाँ वर्ष था और जुलाई सन् १९०६ में पिताजीका देहान्त हो गया। माँने पिताजीकी लगभग डेढ़ वर्षकी बीमारीमें जितनी सेवा की, उतनी बहुत कम स्त्रियाँ करती हैं। एक वर्षतक पिताजी शय्या-शायी रहे। मल-मूत्रतक चारपाईपर ही कर पाते। उन दिनों देहातमें तथा अनभिज्ञ लोगोंमें कमोड और पेशाबकी बोतल तो कोई जानता ही न था। सुबह ताजी हवाकी खातिर माताजी चारपाई पकड़वाकर नीमके नीचे ले जातीं। पंखे और पानीका प्रबन्ध करतीं। जब रोटी करने उठतीं, तब पंखेका काम मुझ जैसे बालकपर रहता। पिताजी बड़े प्रेमसे कहते, “बेटा, खूब पढ़ना। स्वयं अच्छे बनना और दूसरेकी उन्नतिसे खुश होना।” उन बातोंका उस समय तो कुछ भी समझमें आना असम्भव ही था। एक दिन माँकी तपस्याके बाद भी शामके समय पिताजीकी आँखोंमें दो आँसू टपके। विस्फारित नेत्रोंसे सबको देखा। धरती माताकी गोदमें ले लिये गये और सबसे विदा ले ली। छोटी-सी आयुमें पहली मौत देखी थी, रोते-रोते हिचकी बँध गई। गाँवोंमें मौतके समय छोटे बालक अलग कर दिये जाते हैं, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे बड़ा अच्छा है। मैं रातमें सोतेसे चौंकता, बबकता, स्नेहमयी माँके हाथ फेरनेसे होश आता, पर वह घाव बहुत दिनोंतक चला।

पिताजीकी मृत्यु शायद जुलाईके प्रारम्भमें हुई थी और उनकी दाह-क्रिया अपने ही खेतमें की गई। बड़े भाई घरपर थे नहीं। देहाती रिवाजके अनुसार माता-पिताका दाह-संस्कार या तो बड़ा पुत्र करता है या सबसे छोटा। छोटा भाई जगन्नाथ पाँच वर्षका था। दो आदमियोंने उसका हाथ पकड़कर शवकी परिक्रमा कराई, जलती लकड़ी हाथमें दे दी। जगन्नाथकी चीख सुनकर हम भी फूट-फूटकर रोये। माँ घरपर रो रही थीं। हम दोनोंको छातीसे लगाकर वे तनिक चुप हुईं। ठीक एक मास बाद कुटुम्बकी एक दादीका देहान्त हो गया। वे पोपली थीं, हम उन्हें पोपली दादी कहते थे। माँने हमें पोपली दादीके घर नहीं जाने दिया, पर मैंने दादीके पुत्र चाचा गुलाबसिंहको रोते देखा और मैं भी रोकर घर भाग आया।

पोपली दादीका निधन अगस्तमें हुआ था। चाचा गुलाबसिंहने तय किया कि अपनी माँकी भस्म और अस्थि त्रयोदशाहसे पूर्व ही गंगामें विसर्जित कर दी जायँ। हमारे गाँव किरथरा (जिला मैनपुरी, उत्तरप्रदेश) से लोग गंगाजीको सोरों (जिला एटा, उत्तरप्रदेश) जाते हैं। वह एक पवित्र स्थान है। तुलसीदास यहाँ रहे तो थे ही पर यह शूकरक्षेत्र उनका जन्म-स्थान भी था। चाचा गुलाबसिंहने तय किया कि त्रयोदशाहसे दो दिन पूर्व गाँवसे मक्खनपुर स्टेशनसे टूण्डला और कासगंज स्टेशन होते हुए सोरों पहुँचें और त्रयोदशाहसे एक दिन पूर्व लौट आयें। बात साधारण थी। माँने सोचा कि इस अवसरसे लाभ उठाया जाय और पिताजीकी अस्थियोंको चाचा गुलाबसिंहके साथ मेरे द्वारा विसर्जित करा दिया जाय। मेरा दसवाँ वर्ष था और उनका शायद २६ वाँ। माँसे किसीने कहा भी कि बच्चेको क्यों भेजा जाय, गुलाबसिंह कर आयेंगे। माँ पढ़ी-लिखी तो न थीं, पर कर्तव्यपरायण थीं। "योगः कर्मसु कौशलम्"की युक्तिको मैं तो भला क्या जानता था, पर माँ व्यवहारसे सूत्रको समझती थीं। इसलिए उन्होंने ठीक समझा कि मेरी रक्षाके लिए चाचा गुलाबसिंह हैं ही, पर इस बातके निश्चयके लिए कि पिताजीकी अस्थियाँ अवश्य ही गंगाजीमें

विसर्जित हों, मेरा जाना आवश्यक था।

जिस दिन चाचा गुलाबसिंहको सोरोंकी यात्रा करनी थी, उससे कई दिन पूर्व माँने एक लोटेमें ताजा जल भरा और थोड़ा गंगाजल डाला। एक कोरी मलरिया ली जिसमें लगभग एक सेर पानी आए। दोनों बरतनोंको लेकर माँने कहा, "बेटा श्रीराम! चल मेरे साथ चल।" माँके पास जो आया तो उनके नेत्रोंको सजल पाया। उनकी आकृति देखकर मैं डर गया। पर उन्होंने हाथ पकड़कर पुचकारा और उनकी आँखोंसे कुछ आँसू टपक पड़े, मानो हृदयसे मोती चू कर धरती माताको अर्पित हो रहे हों। धीरे-धीरे, पर नपे-तुले कदमोंसे, वे उस स्थानपर चलीं जहाँ पिताजीकी दाह-क्रिया हुई थी। वहाँ जाकर बैठ गईं। बची-खुची भस्म पर जल छिड़का, हाथ जोड़े। सिर जो नीचेको झुकाया तो जो जल छिड़का था, उसमें उनके नयनोंसे अश्रुधारा बह चली। मैं जो रोने लगा तो पीठ थपथपाकर सहारा दिया। फिर अस्थियाँ ऐसे ढूँढ़ने लगीं मानो पिताजीके शरीरको तलाश कर रही हों। एक-एक अस्थिको मलरियामें रखतीं। अश्रुधारासे उन्हें स्नान-सा कराती जातीं। मलरियाको सफेद कपड़ेसे ढँककर एक कड़ा धागा बाँध दिया। वे खड़ी हो गईं। आँसू तो मानो दिल पी गया। समझाने लगीं, "बेटा, तू अपने हाथसे ही गंगाजीमें प्रवाहित करना। ऐसा न हो कि गुलाबसिंह इधर-उधर कर दे। तुझे इसीलिए भेज रही हूँ। जबतक तू लौटेगा नहीं, मुझे चैन नहीं आयेगा। कल प्रातः गाड़ी जाती है और मैं रास्तेको खाना बना दूँगी। तीसरे दिन लौट आना। समझ गया।"

बस, अगले दिन प्रातःकाल आठ बजे ही चाचा गुलाबसिंहके साथ मुझे माँने विदा किया। सजल नेत्रोंसे पीठ थपथपाई। मक्खनपुरसे पैसिंजर ट्रेन शायद लगभग ग्यारह बजे टूंडलाकी ओर जाती थी, पर गाँववाले घंटों पहले रेलके लिए चल पड़ते हैं। हम लोग भी ट्रेनके आनेसे ढाई घंटे पूर्व पहुँच गये। सोरोंके लिए हाथरस जंक्शनपर रेल बदलनी पड़ती है। वहाँसे छोटी लाइन सोरोंको जाती है। उन दिनों उसे बी० बी० एंड सी०

आई० कहते थे, अब नौर्दर्न रेलवे कहते हैं। मुझे उन दिनों तो उसके किसी भी नामका पता न था। गाँववाले तो स्टेशनोंको अपने परिचित नामोंसे संबोधन करते हैं। हाथरस जंकशन और टूंडलाके बीच एक स्टेशन जलेसर है। पर गाँववाले उसे अब भी मानिकपुर कहते हैं। जब टिकिट माँगेंगे तब भी यही कहेंगे, "बाबूजी, मानिकपुरकौ एक टिकस दै देउ।" बाबू लोग जानते हैं कि उनका तात्पर्य जलेसरसे है। इसी प्रकार हाथरस जंकशनको गाँववाले मेंढ़ू स्टेशन कहते हैं। वैसे मेंढ़ू स्टेशन छोटी लाइन-पर हाथरस और हाथरस जंकशनके बीच एक स्टेशन है। गाँववालोंने तथा गुलाबसिंह चाचाने आदेश दिया था, "बेटा, सोरोंके लाएँ गाड़ी मेंढ़ू पै बदलेगी, सो इट्टेसनके नाम देखत जइए और मेंढ़ू आए तब कहि दीए।" उन दिनों उर्दूके दर्जा दोमें मैं मक्खनपुरके अपर प्राइमरी स्कूलमें पढ़ता था। अंग्रेजीके बड़े अक्षर एक दिन पिताजीने यों ही सिखा दिये थे। थोड़ी हिन्दी भी पढ़ लेता था इसलिए चाचा गुलाबसिंहके लिए मैं छोटा-सा बच्चा एक बहुत ही पढ़ा-लिखा व्यक्ति था। रेलमें बैठकर बड़ा कौतूहल हुआ। मानो किसी दूर देशकी यात्राको जा रहे हों। उससे पूर्व मक्खनपुरसे केवल एक-दो स्टेशनतक ही गया था। सोरों तो सैकड़ों मील दूर लगता था। मार्गमें अनेक चीजोंके देखनेका चाव था। अपनी साक्ष-रतापर बड़ा घमंड भी था कि इतनी उमरके चाचा गुलाबसिंह स्टेशनोंके नाम भी नहीं पढ़ सकते। बड़े हुल्लड़के बाद तीसरे दर्जेमें खचाखच भर गये। चाचा तो कहीं बैठ गये पर मैं खिड़कीपर संतरी-सा खड़ा रहा ताकि स्टेशन न निकल जाय। चाचा गुलाबसिंहको तो चिलम मिल गई। वे गप्पी भी बहुत थे। कई यात्रियोंने मुझे खिड़कीसे हटाना चाहा पर मैं कहाँ हटता! वे सब यही कहकर रह जाते, "जि छौरा बड़ौ ढीठ है, नेक ब्यारिऊ ना आमन देतु। हात्तु ना एँ।" गाड़ी चलती गई। जैसे ही प्रत्येक स्टेशनपर गाड़ी रुकनेके लिए प्लेटफार्ममें घुसती वैसे ही मैं चिल्लाकर चाचा गुलाबसिंहको बता देता कि अमुक स्टेशन आ गया है। बालसुलभ कौतू-हलके अतिरिक्त चाचा गुलाबसिंहके प्रति एक कर्तव्य-पालनकी भी बात

थी। अपना काम ठीक करनेकी ही आदत माँने आठ बरसकी उमरसे डाली थी। मैं हर स्टेशन बता देता। पर हमें तो मेंड्रू स्टेशन चाहिये था। होते-होते हाथरस जंकशन आया। उसके आते ही मैंने कहा, "चाचा हाथरस आइ गयौ, ब्हौत बड़ौ इस्टेसन ऐ।" चिलमका कश खींचते हुए वे बोले, "हमें तो मेंड्रू उतरनौ ए।" हाथरस स्टेशनसे एक रेलके बाबू पास आ बैठे थे। जब कई स्टेशन निकल गये तब मैंने कहा, "चाचा बड़ी देर है गई अबई मेंड्रू ना आवतु।" रेलके बाबूने बात सुनी तो हँसा और बोला, "अबे लड़के, मेंड्रू तो निकल गया।" मैं उन दिनों खड़ी बोली भी बोल लेता था, मैंने कहा, "मैं एक-एक स्टेशन देखता आया हूँ। मेंड्रू आता तो हम उतर न जाते।" बाबूने मुस्कराकर पूछा, "बच्चे, यह तो बता कि हाथरस जंकशन निकला या नहीं?" मैंने उत्तर दिया, "वह तो बहुत पहले निकल गया।" बाबूने तब बताया, "हाथरस जंकशनको ही गाँववाले मेंड्रू कहते हैं।" बाबूकी इस बातसे ही मुझपर वज्रपात-सा हो गया। गुलाबसिंह चाचा तो मुझपर टूट ही पड़े, "तू इतनौ पढ़ि गयौ है, तौऊ मेंड्रू ना पढ़ि पायो।" उनकी आकृति बिगड़ गई। बाबूसे मालूम हुआ कि हमारी पैसिंजर ट्रेनके लिए अब अलीगढ़ ठीक है। बाबूने मेरा पक्ष लिया, "बच्चेका क्या कसूर है? उसने जब तुम्हें हाथरस बताया तब तुम्हें उतरना चाहिये था।" चाचाने गाली देकर बताया कि उन्हें क्या मालूम कि मेंड्रूको हाथरस जंकशन कहते हैं। उस समय मैं चाचा गुलाबसिंहके उत्तरकी गलतीको न पकड़ सका और उन्होंने जो उत्तर दिया था, वह आज पचास वर्ष बाद भी ऐसा प्रतीत होता है मानो आज ही रेलमें मूर्तिमान होकर उन्होंने वह बात कही हो। उन्हें कहना यह चाहिये था कि उन्हें क्या मालूम हाथरस जंकशनको ही मेंड्रू कहते हैं, पर बात उन्होंने उलटी कही कि उन्हें क्या मालूम कि मेंड्रूको हाथरस जंकशन कहते हैं। असल बात यह थी कि उनका क्रोध मेरे ऊपर था। उनके खयालसे मैं बच्चा होनेपर भी बहुत पढ़ा-लिखा था और चाहे मैंने यात्रा की हो या न की हो, पर यह जानना आवश्यक था कि

हाथरस जंक्शनको ही मेंडू कहते हैं।

कुछ ही देर बाद अलीगढ़ स्टेशन आ गया। इतना बड़ा स्टेशन जीवनमें पहले कभी नहीं देखा था। मैं स्टेशनकी विशालतापर ध्यान-मग्न-सा था। चाचा गुलाबसिंह सीधे हाथसे मेरी अँगुली पकड़े और बायें हाथसे खोरेमें बँधी दोनों पोटरियोंको कंधेपर साधे और उसीपर देहाती लाठी चिपकाये बाहर जानेके मार्गकी ओर सिमटे-सिकुड़े चलने लगे। टिकट कलक्टरको देखकर वे ऐसे घबड़ा गये मानो उन्होंने कोई भयंकर कसूर किया हो अथवा किसी कानूनकी अवज्ञा की हो। जब भीड़ छँट गई तब अपनी लतू-पटूको फर्शपर रखकर बाबूसे गिड़गिड़ाकर कहने लगे, "गलती-से हम मेंडूके बजाय अलीगढ़ आ गये हैं।" बाबूने झिड़ककर कहा, "खड़े रहो। चार्ज देना होगा। चले आते हैं देहकानी परेशान करने।" जब सब मुसाफिर बाहर निकल गये तब बाबूने संकेतसे उन्हें बुलाया और टिकट दिखानेको कहा तो उनके पास डेढ़ टिकट सोरोंकी थी। चाचा गुलाबसिंह फिर गिड़गिड़ाने लगे। बाबूने उन्हें फिर डपटा और जेबसे रसीद बही निकाली, हिसाब-किताब जोड़कर दाम माँगे। मुझे उस समय चाचा गुलाबसिंहका गिड़गिड़ाना बहुत बुरा लगा। हो गई गलती। किराया माँगता है; दे दिया जाय। दबनेकी क्या बात है। पर अबसे पचास वर्ष पूर्व गाँवके आदमी अपने भोलेपन और सिधाईमें किसी भी सरकारी गलतीको चाहे वह अनजानमें की गई हो, बहुत ही बुरा मानते थे और शायद अबसे पचास वर्ष पूर्व बिना टिकटके यात्री आजकलकी अपेक्षा बहुत कम चलते थे। वह समय भी घोर कलियुग था और आज भी घोर कलियुग है। पर परिस्थितियोंने कितना अंतर कर दिया है कि देहातके लोग भी बिना टिकट यात्रा करना पापकी बात तो अलग जुर्मतक नहीं मानते और बिना टिकट यात्रा करनेपर अपना गौरव समझते हैं।

दो घण्टोंके उपरान्त दिल्लीकी ओरसे गाड़ी आई। पूछ-ताछके बाद हम लोग उस गाड़ीमें बैठ गये और हाथरस जंक्शन आये। सोरोंके लिए आधी रातके समय रेल मिली और उसमें बैठकर हम लोग सोरों आ गये।

अब चाचा गुलाबसिंहको अपनी माँके त्रयोदशाहमें शामिल होनेके लिए एक दिन पूरा था और अगले दिन उनका त्रयोदशाह था। हर हालतमें उन्हें २४ घण्टेके बाद गाँव पहुँच जाना चाहिये था। गलतीसे हम लोग अलीगढ़ चले गये थे, इसलिए हमारे पाससे किरायेमें कुछ दाम कम हो गये थे। खाना हम अलीगढ़ ही खा चुके थे। दस-बारह आने सोरोंमें अस्थि और भस्म-विसर्जनमें खर्च होना ही था। इसलिए किरायेकी कमीका प्रश्न था। पर सबसे जरूरी बात थी विसर्जन-कार्यसे जल्दी छुट्टी मिले और इसके बाद फिर वापसीकी सोची जाय। अनुमानतः उन दिनों गंगाजीकी धार रेलकी पटरीसे लगभग ३ मील होगी। रास्ता ठीक न था। छोटे-छोटे गड्ढे पानीसे भरे हुए थे। एक डगर-सी बनी हुई थी, उसमें भी पानी था। थोड़ी दूरपर जाकर कोढ़ियोंकी दो पंक्तियाँ मिलीं जो मार्गको दोनों ओर घेरे बैठी थीं। उनके विकृत शरीर, गली हुई नाकें, जिनमें ऊपरसे रेहट दिखाई पड़ती थी, अँगुलियोंकी जगह पीबसे चुचाते हुए ठूँठ, अर्धगलित पैरोंकी अँगुलियाँ, विकृत आँखें, मक्खियोंकी उनके ऊपर भिनभिनाहट और उनके अर्ध-नग्न शरीर, तिसपर भर्रायी आवाजमें यात्रियोंसे पैसेकी धृष्टतापूर्ण याचना और कुछ न देनेपर उनको गन्दी गालियाँ देना—उस दृश्यको देखकर मैं उस अवस्थामें बहुत सहम गया। अपने पास किरायेकी कमी हो रही थी और चाचा गुलाबसिंह एक-एक पैसा देते तो सबको दे भी न पाते। यह समझमें न आया कि इतने कोढ़ी वहाँ कैसे आ गये। उस समय यही खयाल आया कि वे सोरोंके ही निवासी होंगे। उस थोड़ी उम्रमें उन कष्ट-पीड़ितोंके प्रति सहानुभूति तो न हुई वरन् हुआ भय और घृणा। उस प्रकारके दृश्यकी कभी कल्पना भी न की थी। एक कोढ़ीने तो मेरी टाँग ही पकड़ ली होती। पर मैं चीखकर कोढ़ियोंकी पंक्ति कूद गया और चाचा गुलाबसिंहको वहीं बुलाया। वे चक्कर काटकर आये और मेरी अँगुली पकड़े पानीमें चलने लगे। पैरोंमें जूते तो थे नहीं, बस एक कुर्ता और धोती यही पोशाक थी। बड़ी उम्रमें भी मेरा कद ५ फीट ४ इंचका है और दसवें वर्षमें तो मैं

नन्हा-सा बच्चा था। जिन गड्ढोंमें चाचा गुलाबसिंहके घुटनों पानी आता, उनमें मेरे कमर और छातीतक आ जाता। "शाबाश बेटा" कहकर मुझे हाथसे वे निकाल लेते। एक तो भूख लग रही थी, दूसरे सब कपड़े भींग गये थे और दचकोंसे शरीर त्रस्त था। पर गंगाजीको देखनेकी उत्सुकता और माँकी आज्ञाका पालन—पिताजीकी अस्थियोंके विसर्जनका कार्य उस छोटी उम्रमें भी मेरे लिए बहुत आवश्यक था। माँने बड़े भरोसेसे एक थाती सौंपी थी कि मैं स्वयं गंगाकी धारमें उस मलरियाको प्रवाहित कर दूँ इसलिए भूख, थकावट व अन्य कष्टोंकी कोई विशेष चिन्ता न थी।

गंगाजीतक पहुँचते-पहुँचते मेरी तबीयत कुछ खराब-सी होने लगी और यह लगने लगा कि बुखार आयेगा। गंगातटपर पहुँचते ही एक पण्डेने चाचा गुलाबसिंह और मुझको घेर लिया। गंगासे लगा हुआ एक छोठा नाला था, जो दोनों ओरसे बन्द था और जिसमें घुटनों-घुटनों पानी था। उसमें दो-तीन मेहतर खड़े थे। चाचा गुलाबसिंहने अपनी पोटरी खोली। मलरियाको उठाकर मैंने बड़ी बजबूतीसे पकड़ लिया। मेरी नजर गंगाजीकी प्रवाहित धाराकी ओर थी, जो बड़ी तेजीसे सबको छोड़ती, आगे बढ़ रही थी। मेहतर कहते थे कि अस्थियों और भस्मको उस गड्ढेमें डालो उसमें कुछ तलाश भी करते थे और उसमें डालनेकी अपनी फीस भी लेते थे। जोंककी भाँति एक अधेड़ पण्डा भी हमसे आ लगा और कहने लगा बिना एक रुपया दिये अस्थि-विसर्जन-क्रिया नहीं होगी। चाचा गुलाबसिंहको तो गड्ढेमेंसे मेहतरोंने और ऊपर बालूमें पण्डेने घेर-सा लिया। चाचा गुलाबसिंह अपनी माँकी अस्थियों और भस्मकी हाँड़ी और मेरे पिताजीकी अस्थियोंकी मलरियाके लिए १ रुपया देनेको तैयार थे। सीधे और भोले आदमी थे। पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यदि उस गड्ढेमें पिताजीकी अस्थियोंका विसर्जन होगा तो माँको मुँह कैसे दिखाऊँगा। कल-कल निनाद करती सुरसरि सभीको समताका सम्यक् उपदेश-सा दे रही थीं, पर पण्डे-पुजारी व घाटके मेहतर गंगाजीको भी

बन्द-सा कर रहे थे। अगर उनका वश चलता तो वे उसकी धारको सन्दूक-में बन्द कर लेते। चाचा गुलाबसिंहने एक रुपया तो पण्डाको दे दिया, पर पण्डा झुककर आँखें तरेर रहा था कि बिना दो रुपयेके भस्म और अस्थियोंका विसर्जन गड्ढेमें नहीं हो सकता। मेहतर अपनी फीस माँग रहे थे और मेरा दिल बैठा जा रहा था। चाचा गुलाबसिंहकी आवाज बहुत तेज थी। पण्डे और चाचा गुलाबसिंहमें क्रोधका वार्तालाप चल रहा था। तू-तड़ाककी नौबत आ चुकी थी। नीचे गड्ढेमें खड़े मेहतर पण्डेकी बातपर तबलेका-सा ठेका लगा रहे थे, उनका सम दो रुपयेकी फीसपर ही टूटता था और वहींपर टनाका होता था। अवसर पाकर मैं बाजकी भाँति पिताजीकी अस्थियोंकी मलरियापर लपका। गंगाजीका किनारा वहाँसे कोई १५ गज था। वहींतक मुझे भागना था। मलरिया लेकर मैं जो भागा तो पण्डेने पीछा किया। उस उम्रमें भी कबड्डी खेलने, कूद-फाँद करने, कुश्ती लड़ने और दौड़नेमें मैं आस-पासके गाँवके लड़कोंमें सबसे अच्छा था। अपनेसे ड्यौढ़े लड़केको मैं उठाकर दे मारता था। भागनेमें तो चाचा गुलाबसिंह भी उस उम्रमें नहीं पकड़ सकते थे। दौड़नेके लुखर-पेच—लोमड़ीकी भाँति दौड़नेकी कला—मुझे आती थी। जैसे ही मलरियाको लेकर मैं पूरी ताकतसे भागा वैसे ही चाचा गुलाबसिंह-को छोड़कर पण्डेने मेरा पीछा किया। मेहतरने फिर तबलेका-सा ठेका दिया, 'पकरौ जाय छोकरै' और पण्डेने गाली देते हुए कहा, "अभिहाल तेरी धुनाई कत्तूँ, देखूँ कहाँ जाइगौ"। दस गज दौड़ा हूँगा कि पण्डा बिल-कुल पास आ गया। मैंने लुखर-पेच चलाया और एकदम समकोण बनाते हुए कावा जो काटा तो पण्डा बुरी तरह बालूमें मुँहके बल गिरा। उसके मुँहमें तनिक बालू भी चली गई। इसी बीच भागकर गंगाजीके बिलकुल किनारे जाकर पूरे जोरसे मैंने मलरिया गंगाकी धारमें फेंक दी। माँकी आज्ञाका पालन हो गया और पिताजीकी अस्थियाँ नियमानुसार गंगा माईकी गोदमें विसर्जित हो गईं। पर पण्डा क्रोधकी मूर्ति बन मेरी ओरको दौड़ा। अस्थियोंका विसर्जन तो हो गया था पर गंगाकी धारमें मैं अपने-

को विसर्जित नहीं करना चाहता था। पण्डेने तुरन्त ही मुझे पकड़ लिया। उसने पूरी शक्तिसे गलपटेपर एक थप्पड़ जमाया। मुझे ऐसा लगा मानो धरती चक्कर काट रही हो। फिर हाथ पकड़कर पीठमें दो-तीन घूँसे कसकर जमाये और कमरपर एक लात मारी। बर्रकी भाँति मैं भी क्रोधित हो गया और लातके लगते ही गिरतेमें पण्डेकी टाँग पकड़ उसकी पिण्डली-में अपने सब दाँत गड़ा दिये। बुल टैरियर जैसे पकड़ करता है, वैसे ही उसकी तिलीको मैंने दाँतोंसे पकड़ लिया। पण्डा भी गिरा हुआ था, उसके थप्पड़ और घूँसे मेरे ऊपर बरस रहे थे। मैं रोता भी जाता था और काटता भी जाता था। पण्डा भी गालियाँ देता जाता था। पर उसकी मारसे मैंने उसकी तिलीको न छोड़ा तो उसने पासके और पण्डोंसे कहा, "जा नैंकसे छोराने मेरी सिबरी तिली खाइ डारी, ऐ लरिका है कि बनरा, कै राक्षस ? मार कूँ तौ गिनतु ही नाएँ"। इतनेमें चाचा गुलाबसिंह अस्थियों और भस्मको उस गड्ढेमें फेंक, शोर मचाते इधर आये। एक बूढ़ा पण्डा भी इधर आ गया। चाचा गुलाबसिंहने जब छुड़ाया तो मैं सुबुक-सुबुककर रोने लगा। बूढ़ा पण्डा समझदार था। उसने अधेड़ पण्डेकी तिलीको देखा, उसमेंसे कई जगहसे खून जारी था। मेरे कपोलपर थप्पड़की सब अँगुलियाँ अंकित थीं। बूढ़े पण्डेने पुचकारकर कहा, "बेटा क्या बात थी ?" सिसकियाँ भरते हुए और हिचकियाँ लेते हुए बूढ़े पण्डेको बता दिया कि माँकी आज्ञा थी कि अस्थियाँ गंगा माईकी धारमें प्रवाहित की जायँ और वह पण्डा और मेहतर दो रुपया माँगते थे, पर मैं तो गंगाकी धारमें ही अस्थियोंका विसर्जन करना चाहता था; सो कर दिया। पण्डेने पकड़ना चाहा, मैंने गुलकुइयाँ काटीं, पण्डा गिर गया, इससे उसे खीझ लगी, इतनेमें मैंने मलरिया गंगाजीके अर्पण कर दी। तब उसने मुझे बुरी तरह मारा और मैंने उसे काट खाया। उस बूढ़े पण्डेने मेरी पीठ थपथपाकर प्रोत्साहन दिया और कहा कि ठीक किया और उस पण्डेको धिक्कारते हुए कहा, "अरे मूर्ख ! वैसे ही आर्यसमाजका जोर बढ़ रहा है, अब यह लड़का बड़ा होकर यहाँ काहेको आयेगा।

जीविका चलाओ। यात्रियोंकी सामर्थ्य देखकर उनका प्रेम हासिल करो, नहीं तो तुम इस शूकरक्षेत्रको बदनाम कर दोगे।"

उस समय मुझे अपनी जीतकी खुशी थी। बूढ़े पंडेकी बात तो कुछ समझमें न आई, पर यह बात तो दिलमें घर कर गई कि सोरोंमें तो स्नानके लिए भी न आना चाहिये और पाठक बुरा न मानें, उसी समय यह भावना जाग्रत हुई कि गंगा भी माता हैं और धरती भी माता हैं, तब फिर अस्थियोंका विसर्जन धरती मातामें ही क्यों न कर दिया जाय। यह विचार ठुकाई-पिटाईके कारण था। पर जब शान्ति-निकेतनमें श्रद्धेय आचार्य क्षितिमोहन सेन-से प्रसिद्ध बाउल शेख मगनका एक पद सुना, जिसका एक अंश यह है :—

"तोमार द्वारे नानार ताला,
कुरान, पुरान, तस्वीह, माला"

तब यह सोरोंकी बचपनकी बात याद आई। यों सोरोंकी बात भुलानेसे भी नहीं भुलाई जाती। और यह समझमें आया कि मनुष्यने अपने स्वार्थमें इतने व्यवधान बना रखे हैं कि दैवी प्रकाश-स्फुलिंगको इतना बाँध-सा रखा है, जलती मशालोंको बुझाकर ऐसा एकत्र किया है कि साधारण मनुष्य ज्ञान-पिपासामें पथ-भ्रष्ट हो जाता है। वैसे सोरोंसे अब कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। सोरोंके गोस्वामी तुलसीदास थे, पर पचास वर्ष पहलेकी घटनासे कोमल हृदयपर जो घाव हुआ था, उसका चिह्न अब भी अंकित है। अपनी कमजोरीको व्यक्त करनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि जब कभी जीपसे मैं दस-बीस बार सोरों होकर निकला हूँ, तो गंगाजीको देखनेकी तबीयत नहीं हुई और न वहाँ कभी साहित्य-समारोहमें जानेकी अभिरुचि हुई। एक पण्डेके दुर्व्यवहारसे सोरोंके सब पण्डे खराब थोड़े ही हो गये, पर बचपनकी चोटकी टीस नहीं जाती। इसे मानवी कमजोरीके अतिरिक्त क्या कहा जाय!

अब सवाल वापसीका था। दोपहर हो चुका था और चाचा गुलाब-सिंहको २४ घण्टे बाद तो हर हालतमें घर पहुँचना ही था। बस हम

गंगाजीको प्रणाम करके चल दिये। लौटती बार पहलेकी अपेक्षा गड्ढों और पानियोंमें कम डूबा-डूबी हुई। पर सूखे रास्तेपर आनेतक चाचा गुलाबसिंह मेरी अंगुली पकड़े थे। कपड़े तो भींग ही गये थे। लौटती बार कोढ़ियोंका दल नहीं मिला। ऐसा मालूम हुआ मानो धरतीमें विलीन हो गया हो। असलमें प्रातःकाल वे यात्रियोंसे भिक्षाके लिए आते होंगे और आठ-दस बजेके लगभग चले जाते होंगे। कोढ़ियोंको न देखकर बड़ी राहत मिली और रेलकी पटरीपर आकर तो ऐसा मालूम हुआ मानो अपने गाँवके स्टेशन मक्खनपुरसे हम समन्वित हो गये हों।

चाचा गुलाबसिंहने अपनी बसनीसे अपना खजाना देखा। पैसे गिने मैंने ही। अब याद नहीं कि कितने दाम रहे होंगे, पर यह स्पष्ट था कि मक्खनपुरतकका किराया पास न था। खानेको भी पैसे न थे। खानेपर कुछ खर्च किया जाता तो कियायेमें और भी कमी होती। पर पानी पीनेकी खातिर चाचा गुलाबसिंहने दो पैसेका गुड़ और दो पैसेके चने लिये। चने और गुड़ खाकर हम लोगोंने डटकर पानी पी लिया। बस शरीरके इंजिनको चलानेके लिए उतने आग-पानीसे काम लेना था। मेरी तबीयत कुछ अनमनी-सी हो गई थी, पर यात्रा तो करनी थी। यह तय पाया कि कई स्टेशनोंको पैदल चलकर पार किया जाय और शामको एक गाड़ी हाथरस जंकशनको जाती थी उसे कहीं भी किसी स्टेशनपर पकड़ा जाय। चाचा गुलाबसिंहकी चालसे मैं चल नहीं सकता था इसलिए मैं सौ दो सौ गज रेलकी पटरीपर आगे भागता और फिर बैठ जाता। मेरे दौड़ते ही चाचा गुलाबसिंहके प्रोत्साहनसूचक शब्द सुननेको मिलते, "छाबाछ (शाबास) बेटा, ऐसैई भाजौ चलि।" चाचा गुलाबसिंह जवान थे। इसी भाग-दौड़में कासगंज स्टेशन आ गया। गंगाजीसे हम १३ मील आ चुके थे। कासगंज स्टेशन पार करनेके बाद दिन काफी था और हमारा यह निश्चय दृढ़ था कि यात्राको जितना पैदल काटा जा सके काट लिया जाय ताकि मक्खनपुरके लिए किराया बच रहे। अब मेरे पैर सूज गये थे। छाले तो पड़ ही गये थे। पैरोंके ऊपर

अंगुलियोंके पास फोड़े-से पक रहे थे। मेरे लिए आगे भागकर बैठ जाना और चाचा गुलाबसिंहके आते ही फिर भागना अब कम हो रहा था। उन्होंने मेरा कराहना सुना और सूरत देखी तो कहा, "बेटा, घबराइ मत।" मैं भी नशेकी हालतमें उसी तरह चलता ही गया और सायंकालको गोधूलिके समय हम लोग मारेहरा स्टेशन आये। अबतक १६ मील हम चल चुके थे। मारेहरा स्टेशनपर टिकटघरके पास मैं लेट गया। शरीरपर बहुत बोझ-सा प्रतीत हो रहा था। गाड़ी आनेमें अभी पौन घंटा था। पर टिकट लेनेसे पूर्व एक नई मुसीबत खड़ी हो गई। चाचा गुलाबसिंह सीधे तो थे ही। उनके पोंगापनको लोग फौरन ताड़ गये। बसनीसे निकालकर वे जमीनपर रख पैसे गिन रहे थे कि बड़ी मूछों-वाला हाथमें छड़ी और रेशमी कुरतेवाला एक आदमी आया और चाचा-से बोला, "कहाँ जाओगे?" मेरे मने करनेपर भी उन्होंने तड़ाकसे कह दिया, "भैया, मक्खनपुर जाऊँगा।" वह भी बोला, "मक्खनपुर तो मुझे भी जाना है।" चाचा गुलासिंह बड़े खुश हुए। उन दोनोंने यह तय किया कि वही आदमी हमारा भी डेढ़ टिकट खरीद दे। वह तो यह चाहता ही था। बैठकर पैसे गिनने लगा और अपनी जेबमें डाल लिये। मैंने विरोध किया तो मेरी ओर आँखें तरेरकर कहने लगा, "यह लौंडा बड़ा चालाक है।" पैसे देकर चाचा गुलाबसिंह तो निश्चिन्त हो गये पर मैं रुआँसा होकर चाचा गुलाबसिंहका हाथ पकड़ उसके पीछे हो लिया। खैर ही पड़ गई। जब टिकट-घरसे वह दूसरी ओर चलने लगा तो मैंने उसकी धोती पकड़ ली। बस उसने कसकर एक चाँटा रसीद किया। उलझकर मैंने उसकी मूँछें पकड़ लीं। और कुछ सूझा ही नहीं। तब चाचा गुलाबसिंहको ताव आया। उन्होंने उसकी कमर पकड़ ली। आखिर देहाती थे। उठाकर उसे प्लेटफार्मपर दे मारा। मूछें तो मेरे हाथसे छूट ही गईं पर दो-चार बाल तो हाथमें ही रह गये। गिरतेमें एक चाँटा मुझे उसने और मारा। भीड़ होने लगी। पुलिस कांस्टेबल आ गये। चाचाने बताया कि यह आदमी हमारे पैसे लेकर भागा जाता था।

पूछा गया कि क्या जेब कतरी थी। तब बताया गया कि टिकटके पैसे लेकर वह कैसे जा रहा था। कांस्टेबल उसे पकड़कर रोशनीमें लाया। जेबमेंसे पैसोंकी गिनाई हुई। नतीजा यह हुआ कि कांस्टेबलोंने उसके कहे अनुसार उसके पैसे उसे दिला दिये और हमारे पैसे चाचा गुलाब-सिंहको। पैसोंके वजनसे मालूम होता था कि हमारे कुछ पैसे वह बदमाश ले गया, पर एक मुसीबतसे बच गये थे। मेरी तो सुबहसे ही पिटाई हो रही थी। चाचा गुलाबसिंहके साथ कोई बड़ी उमरका आदमी चाहिये था। बार-बार मैं सोचता कि यदि अस्थियोंकी मलरिया उनके सुपुर्द होती तो वे कभी गंगाजीमें न छोड़ पाते। माँ उन्हें समझती थीं।

टिकट लेने जो गये तो पैसे टूंडले स्टेशनतकके ही थे। टूंडलेसे अपना गाँव १६ मील है। टूंडलेके वे १६ मील इधरके २-४ मीलसे भी कम थे। टिकट लेकर हम लोग बैठ गये। हाथरसपर गाड़ी बदली और टूंडलेकी गाड़ीमें बैठ गये। मुझे बुखार चढ़ने लगा। हम लोग प्रातःकाल २ बजे टूंडलेपर उतरे। मुझे तेज बुखार था। मेरे पैर पक गये थे। स्टेशन-पर पानी पिया। यह तय किया कि प्रातःकालतकका समय स्टेशनसे दूर किसी खेतीकी मेड़पर लेटकर काटा जाय। भीड़ और आदमियोंसे डर लगता था। उन दिनों टूंडला स्टेशनका यार्ड पूर्वकी ओर इतना लंबा न था। मेंड़पर हम लोग लेट गये। मुझे जाड़ा लग रहा था। चाचा गुलाब-सिंहने खोर मुझे उढ़ा दी और खुद सो गये, पर मैं जाड़ेमें ठिठुरता-काँपता रहा। प्रातःकाल पाँच बजे चाचा गुलाबसिंह तो गाँवकी ओर चल पड़े, क्योंकि वह दिन उनकी माँके त्रयोदशाहका था। मुझे पुचकारकर वे चले गये कि मैं, जब मेरा बुखार कम हो तब पीछेसे आ जाऊँ। मैं मेंड़पर अकेला पड़ा रहा।

बुखार कम होनेके बजाय और बढ़ गया। सूजे पैर ऊपरी भागमें कई जगह पक गये थे। उनमेंसे पीब निकलने लगी थी। मक्खियाँ परेशान कर रही थीं। मैंने घास तोड़कर पैरोंपर डाल ली और धूपकी तेजीसे बचनेके लिए एक बबूलके नीचे सरक गया। जब खेतका

मालिक आया तो उसने दुत्कारकर पूछा, "कौन है? भाग यहाँसे? मर-मरा गया तो हमारे जिम्मे पड़ेगा।" बड़ी कठिनाईसे उठा, दो खेत जाकर बैठ गया। चला ही नहीं जाता था। प्यास लग रही थी। दो-दो खेत पार करके रेलवे लाइनके पासके एक गाँवके पास पहुँचा। एक चबूतरा था। नीमका एक पौधा था। वह नीमका पेड़ अब भी है, जब रेलसे वह दिखाई देता है तो पुरानी स्मृति ताजी हो जाती है। थोड़ी देर बाद एक बुढ़िया बाहर आई और आश्चर्यमें बोली, "जि को लरिका तापमें डरा है। कौन बिरादरी है?" बुढ़ियाको जब बताया कि मैं ब्राह्मण बालक हूँ, माँके कथनानुसार सोरों पिताकी अस्थियाँ ले गया था। रास्तेमें ठगे जानेसे पैसे कम पड़े सो पैदल जाना है। साथके चाचा चले गये हैं। तब बुढ़ियाने बड़े प्रेमसे पानी पिलाया, एक खटोला दिया और सिरहाना लगाया और बोली, "लला कैसी है तेई अम्मा? जा उसरि पै अस्थि सिराइबे ना भेजति।" मैं रुआँसा लेटा रहा। बुढ़िया रोने लगी। उसने कहा, "जब तेरी ताप उतर जाय तब चलौ जाईयो।" दोपहर बाद ज्वरका प्रकोप कम हो गया और जब वह बुढ़िया फिर पानीको पूछने आई तब मैंने कहा, "दादी अब हम टरकि जांगे।" उसने केवल यही कहा, "तेरो मन होइ तौ जा।" गत प्रातःकाल मैं गंगातटतक सोरोंसे दो मील, वापसीमें फिर दो मील और वहाँसे मारहरा स्टेशनतक पूरे सोलह मील तय कर चुका था। यानी बीस मील तो कल शामतक हो चुका था। टूंडलेसे हमारा गाँव १८ मील था। सोचा कि फीरोजाबाद १० मीलतक तो पैदल चला जाय और फिर फिरोजाबादसे मक्खनपुर ६ मील इक्केपर और मक्खनपुर स्टेशनसे गाँव २ मील पैदल चलना ही था। कई-कई गज चलता, फिर बैठ जाता। तिलोकपुर गाँव जो मेरे फार्मसे अब दो मील है, अबसे पचास वर्ष पूर्व मेरे मार्गमें पड़ा। वहाँ माँगकर पानी पिया। लड़खड़ाते पैर पड़ते थे। वहाँके निवासियोंने मुझे पागल समझा। एक व्यक्तिने करीब आकर जब देखा तब मैंने किरथिरा गाँवका मार्ग पूछा। आगे चलकर हजरतपुरके

नालेको पार किया। नालेमें बड़ा डर लगा। आठ-दस मिनट आराम किया। पैर परेशान कर रहे थे। बुखार कम हो चला था, कमजोरी बढ़ रही थी। उठते-बैठते किसी प्रकार आगरा-फीरोजाबादकी पक्की सड़कपर आ गया। बड़ी कठिनाईसे हिम्मत बाँधते हुए फीरोजाबाद दिखाई पड़ा। फीरोजाबादको देखकर साहस बढ़ गया। उन दिनों उसकी आबादी ८-१० हजार रही होगी, अब तो ८० हजार है। शहर पार करके इक्कोंके अड्डेपर आया। उन दिनों एक पूरी सवारीका किराया दो आने था और बच्चेका चार पैसे। पर इक्केवालेने मुझे बीमार देखा तो दो आनेसे कममें बैठाना स्वीकार न किया। पैसे तो थे नहीं पर मक्खनपुरमें जानकारीके भरोसे बैठ गया। दो-तीन मील बाद मुझे कै आने लगी। अन्य सवारियाँ परेशान होने लगीं और इक्केवालेको आफत (मुझे) बिठानेके लिए तंग करने लगीं। मेरे प्रति उनका विचार वैसा ही था जैसा मेरा सोरोंके कोढ़ियोंके प्रति। मक्खनपुर पहुँचकर एक परिचित दुकानदारसे दो आने उधार लिए। मक्खनपुरमें एक घंटे स्कूलमें लेटा रहा। उल्टीसे पेट साफ हो गया। भूखके मारे दम निकला जा रहा था पर बुखार न था इसलिए धीरे-धीरे चलकर गाँवमें आया। अपने खेत, आमके पेड़, कुएँको देखकर सब कष्ट भूल गया। दरवाजेपर चाचा गुलाबसिंह मिले। देखकर बड़े खुश हुए और गोदमें उठाकर वही कहा जैसा वे कहा करते थे, "शाबाश बेटा, तू बड़ौ मद्द (मर्द) है। अब सूदौ घरै जा। भाभीने तेरे बिना रोटी ना खाई!"

घरमें घुसते ही माँके दर्शन हुए। देखकर मेरा कुम्हलाया चेहरा मुस्कराहटसे खिल गया। माँने छातीसे लगा लिया। सूजे पैरोंमें पीब देखकर वे विह्वल हो गईं। नीमके पत्ते लाईं। खौलते पानीमें डाला। फिर सेहते-सेहते पानीसे घाव धोये। घुटनोंतक दबाया। हाथ-पैर पोंछे। गरम दूध पीनेको दिया। बुखारके कारण मेरे आग्रहपर भी रोटी नहीं दी। अपनी माँके रक्षक कक्षमें बैठकर मैं सब बातें भूल गया! उन्होंने कहा, "गुलाबसिंहने सब बता दिया है। अब तू सो जा। तैंने बड़ा भारी

काम किया। अपने बापका नाम निकालो। ऐसे ही मेहनत करो।"
दूध पीकर मैं सो गया। पूरे १२ घंटे बाद उठा। तबीयत बिल्कुल ठीक थी। सूजन पटक गई। पकी जगह न जाने क्या लगाया गया।

× × ×

आज न चाचा गुलाबसिंह हैं और न स्नेहमयी माँ। अपनी आयु भी ६१ वर्षकी हो चुकी है। पर जीवनकी अनेक घटनाओंमेंसे पिताजीकी अस्थियोंकी विसर्जन-सम्बन्धी यात्रा बिल्कुल ताजी है। जीवन बचपनसे ही संघर्षमय रहा है। माँ बताती थी कि मैं आठ मासका पैदा हुआ था और माँके बचनेकी भी कोई आशा न रही थी। पाठक कहेंगे कि जो बचपनसे संघर्ष करता आया है उसके लिए संघर्ष आसान है। पर जहाँ सारे जीवन सदा मरनेका खतरा हो वह कोई अच्छा जीवन नहीं है। कविवर फानीने कहा है—

'जिंदगी और मौतमें कुछ फर्क चाहिये था।'

पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर मौतको जीवनका एक दूसरा रूप ही कहते हैं तब फिर जिंदगी और मौतमें कोई फरक ही नहीं रहा। पर दुनियादारीके लिए कविवर गालिबकी यह बात ठीक है—

कैदेहयात, बंदेग़म, असलमें दोनों एक हैं,
मौतसे पहले आदमी ग़मसे नजात पाए क्यों ?[1]

यह बात यहाँ लिखना अप्रासंगिक भले ही हो, पर बचपनकी उस सोरों-यात्राके कारण समझ आनेपर यानी काफी बड़ी उमरमें यह इच्छा जरूर प्रकट की और वह वसीयतके तौरपर अब भी है कि मरनेके बाद इन पंक्तियों-के लेखकके शरीरको फार्मके ही किसी स्थानपर जलाया जाय और अस्थियों-को या तो किसी फलदार पेड़की जड़में लगाया जाय या फसलदार खेतमें ताकि धरती माताको कुछ पोटाश और फास्फेटकी खाद मिल जाय। जो गंगामें अस्थि-विसर्जन करते हैं उनसे हमें कोई विरोध नहीं। अपनी माँका अस्थि-विसर्जन भी हमने हरद्वारमें किया, पर अपनी तो यही इच्छा है।

---

१. हयात=जीवन, कैदेहयात=जीवनकी कैद। बन्देग़म=दुखोंकी पकड़। नजात=मुक्ति।

समीक्षा

१५ अगस्त १९४७ को भारतको पूर्ण स्वतंत्रता मिली। इस स्वतंत्रता-प्राप्तिसे पूर्व भारतका विभाजन हुआ। विभाजनसे बहुत पहले महात्मा गांधीने कहा था—"भारतका विभाजन पाकिस्तान और भारतके रूपमें, मेरी लाशके ऊपर होगा।" इससे स्पष्ट है कि महात्मा गांधी विभाजनके विरोधी थे। देशके कई बड़े राजनीतिज्ञोंने महात्माजीकी राय नहीं मानी और ब्रिटिश सरकारसे एक प्रकारसे सौदा किया। ब्रिटिश सरकार समझती थी कि देशमें पं० जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल कुछ भी कहें, जबतक महात्मा गांधी अपनी मोहर नहीं लगा देंगे तबतक विभाजन तो क्या, कोई बात भी नहीं चल सकती। इसलिए तत्कालीन वायसराय लार्ड माउंटबेटेनने महात्माजीसे पूछा कि अगर कांग्रेसके उच्च राजनीतिज्ञ कार्यकर्ता विभाजनको राजी हो जायँ तो क्या उन्हें आपत्ति होगी। महात्माजीको शायद मालूम हो गया था कि सत्ता-सुन्दरीका मोह कांग्रेस हाईकमांडके प्रमुख व्यक्तियोंको बहुत काफी है। महात्माजी तो कांग्रेसके चार आनाके सदस्य भी न थे। अतः उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि जब कांग्रेसको विभाजनके विरुद्ध कुछ नहीं कहना तो वे भी कुछ न कहेंगे। इस प्रकार भारतका विभाजन हुआ और १५ अगस्त १९४७ को जब पूर्ण स्वतंत्रता-प्राप्ति संबंधी खुशियाँ नई दिल्ली तथा अन्य स्थानोंमें मनाई जा रही थीं, तब राष्ट्रपिता और मानवताका महाप्राण पूर्वी बंगालके नोआखाली क्षेत्रमें दुखियों और अन्यायत्रस्त व्यक्तियोंके घावोंपर स्नेह तथा सहानुभूतिका मरहम लगा रहा था। थोड़े ही दिनों बाद नई दिल्लीमें मानवता, न्याय और सचाईकी खातिर महात्मा गांधीका बलिदान हुआ। यह सब उस महाप्राणके अनुरूप ही था। महात्मा गांधीका बलिदान भारतीय इतिहासमें एक विशेष स्थान रखता है।

सत्य और अहिंसाका पुजारी अपने आदर्शपर शहीद हो गया और उस शहादतने उसकी अपूर्णताको पूर्ण कर दिया।

यहाँपर इस बातपर विचार करना अप्रासंगिक होगा कि भारत विभाजनकी जिम्मेदारी किसपर थी, क्योंकि यह तो ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और एक पृथक् निबंधका विषय है। पर विचारणीय बात यह है कि भारतीय स्वतंत्रता और भारतकी घोषित लोकतंत्र-प्रणाली विश्व और मानव-समाजके लिए कल्याणकारी होगी अथवा फ्रांस और रूसकी राज्य-क्रांतियोंके समान वह अहिंसा और सत्यकी कोरी बातें बनाकर उन प्रवृत्तियोंकी पोषक होगी जो थोड़े ही दिनों बाद फ्रांसके साम्राज्यवाद और उपनिवेशके पोषक बनेंगे और रूसके साम्यवादके सिद्धांतके साथ कम्युनिस्ट साम्राज्यकी पीठ थपथपायेगी। इसके अतिरिक्त इस बातपर भी विचार करना है कि भारत जैसे गरीब देश, जिसमें लगभग ७५ प्रतिशत लोग देहातमें रहते हैं, वास्तविक हित—आर्थिक, सामाजिक और नैतिक उत्थान प्रत्येक दृष्टिसे होगा अथवा तथाकथित लोकतंत्रके आवरणमें उन प्रवृत्तियोंका पोषक होगा जो उपनिवेशवाद, दोहन और शोषणकी जननी होती है। यह प्रश्न हमने इसलिए उठाया है कि फ्रांसकी राज्यक्रांतिमें स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृ-भावके नारे लगाये गए थे। विजित देशोंको फ्रांसकी राज्यक्रांतिसे बड़ी प्रेरणा मिली थी। फ्रांसकी राज्यक्रांतिके आदर्शोंकी खातिर हजारोंका रक्तपात हुआ। तत्कालीन अनेक विख्यात क्रांतिकारियोंको मौतके घाट उतार दिया गया, क्योंकि वे पथभ्रष्ट हो गये थे। नेपोलियन जो 'राज्यक्रांतिका शिशु' था, फ्रांसका सम्राट् बना। जिन आदर्शोंको लेकर फ्रांसकी राज्यक्रांति शुरू की गई थी वे सब गैर-फ्रांसीसियोंके लिए व्यर्थ रहे। स्वयं रूसकी राज्यक्रांतिमें भी लेनिनके बाद एक प्रकारसे कम्युनिस्ट साम्राज्यवादकी लहर उठी। यदि ऐसी बात न होती तो रूसका सैनिक प्रभाव पूर्वी जर्मनी, पोलैंड, हंगरी आदि देशोंमें इतना प्रबल न होता। इन पंक्तियोंके लेखककी यह आशंका है कि भविष्यमें रूसकी यह प्रवृत्ति कम्युनिस्ट शासनको अन्य देशोंमें स्थापित करनेमें सहायक हो सकती है। केन्द्रीय यूरोप, बल्कान देश और दक्षिणी-

पूर्वी एशियामें वह प्रवृत्ति प्रबल हो सकती है। चीनकी कम्युनिस्ट वृत्ति भारतकी उत्तरी सीमाके द्वार कभी खटखटायेगी। जो प्रवृत्ति चल रही है वह इस बातकी द्योतक है। पर इन विषयोंपर तो संकेतमात्र ही यहाँ करना है। विवेचन तो इस बातका करना है कि भारतीय शासनकी रूपरेखा क्या विश्वमें फैले उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और व्यापारिक साम्राज्यवादके रोकनेमें समर्थ होगी। कहीं ऐसा न हो कि गांधीजीकी सत्य और अहिंसाकी नीति कोरे कागजोंपर ही रह जाय और उनकी सर्वोदयी, विकेन्द्रीकरण तथा गरीबोंके लिए हितकी बात एक आदर्शवादी-की बहक बता दी जाय। तथापि भारत विश्वके प्रभावमें पड़कर और अपनेको बेबसीकी हालतमें डालकर उसी मार्गपर न अग्रसर हो जिसका विरोध महात्मा गांधीने किया था और अप्रत्यक्ष रूपसे लोकतंत्रकी दुहाई देता हुआ फ्रांस, रूस, इङ्गलैंड, चीन और अमेरिकाके व्यापारिक साम्राज्यवादकी ओर बढ़े।

असलमें भारतकी स्थिति उस यात्रीके समान है जो एक चौराहेपर खड़ा होकर चारों दिशाओंके सिगनलको देखता है कि वह किस मार्ग-पर चले। भारत अपने भाग्य-निर्माणमें ऐसे ही एक चौराहेपर खड़ा है जहाँसे वह साम्राज्यवाद, उसके दूसरे रूप उपनिवेशवाद, आधुनिक साम्रा-ज्यवाद—व्यापारिक—के मार्गको पकड़ सकता है। साथ ही यह भी संभव है कि यह गांधीजीके बताये मार्गपर अग्रसर होकर विश्वके अनेक देशोंके लिए नैतिकता, आध्यात्मिकता, स्वावलम्बन और विश्व-कल्याणके मार्ग दिखाये। व्यापारिक साम्राज्यवादकी ओर प्रगतिमें कोई अड़चन नहीं है, पर व्यावहारिक दृष्टिसे महात्मा गांधीके मार्गपर चलना कठिन है। इस बातका विश्लेषण तनिक गहराईसे करना है, क्योंकि व्यापारिक साम्राज्यवाद और गांधीजीके मार्गके बुनियादी तथ्योंको समझना होगा।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद और अमरीकी, रूसी आदि अनेक देशोंकी व्यापारिक साम्राज्यवादी प्रवृत्तियोंकी मूल भित्तियाँ क्या हैं; इस बातको समझनेके लिए हमें औद्योगिक क्रांतिको समझना

होगा। इंग्लैंडमें जब औद्योगिक क्रांति हुई थी तो दुनियामें एक ऐसी लहर उठी कि उस क्रांतिके कारण मानव-समाजके सुख और उसकी समृद्धिका ठिकाना न रहा था। इंग्लैंडके पास प्रचुर मात्रामें लोहे और कोयलेकी राशियाँ थीं, मशीनोंके लिए उनकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। पर इंग्लैंडके पास कपास नहीं था। औद्योगिक क्रांतिके कारण इंग्लैंडमें उत्पादन इतना बढ़ा कि उसकी खपत स्वयं इंग्लैंडमें न हो सकी। अपने देशमें बनी चीजोंके लिए इंग्लैंडको नये बाजार ढूँढ़ने पड़े। व्यापारके मार्ग समुद्रों द्वारा खुले हुए थे पर व्यापार-मार्गकी रक्षाके लिए सेना और नाविक बेड़ेकी आवश्यकता हुई और विदेशोंमें तथा मार्गोंमें अपने व्यापारकी रक्षाके लिए सैनिक शक्तिको बढ़ावा दिया गया। फलस्वरूप जिन देशोंमें गृह-उद्योगों और कुटीर-धंधोंका बोलबाला था उनकी आर्थिक व्यवस्था चौपट हो गई और मशीन-निर्मित मालसे विदेशोंके बाजार भर दिए गए। साथ ही गुलामी प्रथाके अंत करनेकी जो प्रशंसा की जाती है, उसका मूल कारण यह था कि नवीन मशीनोंके आविष्कारोंके कारण मजदूरोंकी कम जरूरत रही। मशीनोंकी कार्यक्षमता और विदेशोंमें जाल बिछानेके कारण पश्चिमी राष्ट्रोंमें नैतिक समृद्धि बढ़ी। एक ओर विलासिताकी चरम सीमा हुई तो दूसरी ओर अन्य देशोंको गरीबीका दामन पकड़ना पड़ा। इंग्लैंडका अनुकरण पश्चिमके अनेक राष्ट्रोंने किया और अमेरिकाने तो कार्यक्षमता और उत्पादनमें एक अचम्भा-सा कर दिखाया। गत प्रथम महायुद्धका मूल कारण इंग्लैंड और जर्मनीकी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता थी। बढ़िया और सस्ते जर्मन मालके सामने अंग्रेजी माल टिक न सकता था। अनेक देशोंका व्यापार जर्मनी धीरे-धीरे हथिया रहा था। अफ्रीका, दक्षिणी-पूर्वी एशिया और चीनमें अपनी व्यापारिक सत्ता जमानेकी होड़ लगी हुई थी। वातावरण विस्फोटक था। आस्ट्रियाके आर्क ड्यूककी हत्या तो जर्मनी और इंग्लैंडकी प्रतियोगिता-रूपी बारूदमें दियासलाई लगानेके समान था। द्वितीय महायुद्धका मूल कारण भी जर्मनी-इंग्लैंडकी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता थी। बल्कान

प्रदेश, तथा अन्य देशोंसे इंग्लैंडका व्यापार अमरीकाके हाथमें जा चुका था। इधर जापानने अपनी कार्यक्षमताके कारण दक्षिणी-पूर्वी एशियामें इंग्लैंडको व्यापारिक क्षेत्रमें परास्त कर दिया था। इंग्लैंडके अधीन भारत-ने भी उद्योगीकरणमें कुछ प्रगति की थी। पर बड़ी-बड़ी मशीनें और सामुद्रिक मार्ग इंग्लैंडके ही हाथमें थे। इधर रूसने भी व्यापारिक क्षेत्रमें पेंग बढ़ाई। राजनैतिक लिप्साके अतिरिक्त व्यापारको बढ़ाने और उसकी रक्षाकी खातिर पाश्चात्य राष्ट्रोंमें भयंकर प्रतियोगिता चल रही थी। उस विस्फोटक स्थितिका अंतिम रूप द्वितीय महायुद्ध ही था। यदि ध्यान-पूर्वक सोचा जाय तो साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और वर्तमान उद्योगी-करण, जिनमें दूसरे देशोंमें अपना माल खपानेकी प्रवृत्ति निहित है, व्यापारिक साम्राज्यवादके ही पर्यायवाची हैं। कम्युनिज्म भी मशीन युगकी एक आवश्यक प्रतिक्रिया है और समय पाकर कम्युनिज्म-जन्य साम्राज्य-वाद विश्वके लिए कम खतरनाक न होगा, क्योंकि उसका मूलाधार केवल भौतिक सुख है। यह बात विवादग्रस्त हो सकती है और उसका विवेचन यहाँ अप्रासंगिक है पर शहतीरकी भाँति यह प्रवृत्ति विश्वके सामने है। गत द्वितीय महायुद्धके पश्चात् भी केवल भौतिक सुखकी खातिर विश्वमें अचल व्यापार बढ़ाने और दूसरोंको हटानेकी इतनी होड़ लगी है कि कभी-न-कभी सर्वसंहारक महाविनाशकारी युद्ध हो सकता है। पर अब जो युद्ध होगा उसमें महाविघातक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग होगा और ऐसा लगता है कि कला-कौशल, मानव-हित और सांस्कृतिक आदान-प्रदानके पीछे जहरमें बुझी एक ऐसी तेज छूरी है जो कभी-न-कभी विश्वके विनाशका कारण हो सकती है। यह निराशावादीकी कोई बहक नहीं है वरन् कठोर सत्यका अंकन है जिसको विश्वके महान् विचारक और राजनीतिज्ञ देख रहे हैं। विश्वके रंगमंचपर रॉकेट, हाईड्रोजन बम तथा अणु आयुधोंकी जो होड़ मची है, उसका एक रूप महायुद्ध ही है। तब फिर पाश्चात्य संस्कृति चाहे वह पाश्चात्य देशोंमें हो, चाहे सुदूर पूर्वमें, वह तीसरे विनाशकारी युद्धकी जननी हो सकती है। तीसरे महायुद्धके

होनेपर ईसा, बुद्ध, महावीर और महात्मा गांधीकी प्रवृत्तियाँ काम न आयेंगी। विश्वकी उस दुर्दशाकी कल्पना ही की जा सकती है।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि विश्वकी हालत नाजुक है। यदि मानव-समाजका निर्माण ठीक ढंगसे न हुआ तो फिर किसीकी भी खैर नहीं। यहाँ तो इस बातकी समीक्षा करनी है कि विश्वकी विस्फोटक परिस्थितिमें भारतकी स्वतन्त्रता, स्वयं भारत और विश्वके लिए कल्याण-कारिणी होगी या नहीं। या भारत, फ्रांस और रूसकी भाँति विश्वकल्याण, सत्य और अहिंसाको छोड़कर उन्हीं प्रवृत्तियोंका शिकार होगा जिनके कारण शोषण और दोहनको बल मिलता है और वह रूस या इंग्लैण्ड या अमरीकाका पिछलग्गू बन सत्य और अहिंसाकी ताजियेदारी करेगा।

भारत कृषिप्रधान देश है; उसकी ७५ प्रतिशत जनसंख्या खेतीपर निर्भर है और भारतकी सात प्रतिशत जनसंख्या अप्रत्यक्ष रूपसे खेतीपर निर्भर है। शेष १८ प्रतिशतको भी खाद्यान्न देहातसे ही मिलता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि भारतके प्राथमिक और मुख्यतम उद्योग खेती-बारीकी ओर समुचित ध्यान न दिया गया और खाद्यान्नमें भारत स्वावलम्बी न हुआ तो भारतमें कोई भी योजना और शासन चल नहीं सकता। हमारे शासक-वर्गको खेतीकी ओर न तो विशेष दिलचस्पी है, न इस दिशामें कोई प्रयत्न ही जारी है। पर वह समय दूर नहीं जब आत्म-रक्षा और खाद्यान्नके लिए केन्द्रीय और राज्योंकी सरकारोंको समुचित ध्यान देना होगा। गत द्वितीय महायुद्धमें अकेले बंगालमें दुर्भिक्षके कारण १५ लाखसे ३५ लाखतक व्यक्ति मर गये और किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों-को तो १० हजार रुपयेमें भी एक मन चावल नहीं मिला। इसपर ध्यान इसलिए और भी देना है कि शिक्षित वर्ग रुपये-पैसेको ही सब कुछ सम-झने लगा है। खेती तो निकम्मे निकृष्ट लोगोंके लिए ही समझी जाती है। नौकरी ही शिक्षाका उद्देश्य है। ऐसी दशामें निकट भविष्यमें खाद्यान्नका घोर संकट आयेगा। इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, रूस और अमरीकाके-से उद्योगीकरणकी होड़ लगी हुई है। हम उद्योगीकरणके

विरोधी नहीं हैं, पर हम उसे हर चीजमें नहीं चाहते। जो काम लघु उद्योगोंसे न हो सके उसके लिए बड़े कारखानें हों। पर, भारत जैसे गरीब देशमें लघु उद्योगोंको छोड़ना आत्मघातका आह्वान करना है। साथ ही यह बात भी स्मरणीय है कि भारतमें कोयला है, लोहा है, कपास भी है। इसलिए यदि ठीक ढंगसे कार्य किया जाय तो कपड़ेके उद्योगमें दक्षिण-पूर्वी एशियाके देशों और मध्यपूर्वके देशोंमें भारतके वस्त्र उद्योगका बोलबाला हो सकता है। उचित कार्यक्षमतासे भारत मध्यपूर्वसे लगाकर दक्षिणपूर्वतकके बाजारोंको अपने कब्जेमें कर सकता है। एक प्रकारसे इस मार्गसे भारत उसी मार्गका अनुगामी होगा जिसपर पाश्चात्य राष्ट्र चल रहे हैं। फिर अफरीकी देशोंमें अपने मालको खपाना होगा। अभी तो भारतको ऊपरी आवश्यकताओंको ही पूरा करना है पर उसमें इतनी क्षमता है कि वह उद्योगीकरणमें विश्वका एक प्रमुख देश बन जाय और 'रौकेटरी'में अन्य देशोंकी समता करने लगे। उस दशामें भारतकी राजनीति रूस और चीनकी राजनीतिसे भिन्न नहीं हो सकती। भारतकी आबादी इतनी घनी है कि उसे अपनी आबादीके लिए ही उपनिवेश खोजने पड़ेंगे। इंग्लैण्डको अपने उपनिवेश आबादीके कारण न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, कैनेडा और अन्य देशोंमें बनाने पड़े। चीन भी कम्यूनिस्ट शासनके दृढ़ होनेपर अपनी बढ़ती आबादीके लिए तिब्बतमें चीनियोंको बसानेका प्रयत्न अवश्य करेगा। कोरी भौतिक समृद्धि ऐसी प्रवृत्तिकी जननी होती है। भौतिकवादके हम विरोधी नहीं हैं पर भौतिकवाद और आध्यात्मिकवादका सुन्दर समन्वय होना चाहिए। भारतमें प्राणपणसे प्रयत्न हो रहा है और यह खुलेआम कहा जा रहा है कि भारतके जीवन-स्तरको उठानेके लिए उद्योगीकरणके ऊपर इतना जोर दिया जा रहा है मानो उद्योगीकरणके होते ही स्वर्गकी स्थापना हो जायेगी। महायुद्धके बाद भारतके पास अरबों रुपये कोषमें थे पर वे सब खाद्यान्न और मशीनोंकी खरीददारीमें उलीचे जा रहे हैं, और निर्यात कम होनेसे विदेशी मुद्राकी प्राप्तिकी

स्थिति भी बड़ी गम्भीर होती जाती है। यदि हमारे देशवासी कृषि-उद्योगको प्राथमिकता देते और कृषिसे ही इतना रुपया प्राप्त करते तो न तो खाद्यान्नकी यह स्थिति होती और न इतना व्यय होता।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भारतके राजनीतिज्ञ और उसके नेता इतने नासमझ हैं जो स्थितिको समझते ही नहीं। वे नासमझ हैं अथवा बड़े बुद्धिमान् इसका उत्तर देशवासी स्वयं दे लें पर इस बातके कहनेमें हमें संकोच नहीं कि हमारे वर्तमान शासक 'कृषिशास्त्र' से अनभिज्ञ हैं और ७५ प्रतिशत जनताको वे नहीं समझते। इस बातको वे भूल रहे हैं कि किसानोंमें बड़ी भारी बेचैनी और अश्रद्धा है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिसे पूर्व कांग्रेस किसानों और गरीबोंका प्रतिनिधित्व करती थी। महात्मा गांधी तो 'गरीबोंका प्रतिनिधित्व' ही नहीं करते थे वरन् सच्चे अर्थोंमें गरीब भारतकी आत्मा उनके द्वारा मुखरित होती थी। किसानों और गरीबोंकी खातिर उन्होंने देहातमें रहना शुरू किया था। तीसरे दर्जेमें चलते थे, पर आजादीके बाद देशमें एक ऐसी प्रवृत्ति चल पड़ी कि पढ़े-लिखे लोग और नेता देहातमें रहना नहीं चाहते। उन्होंने जीवनका जो स्तर बनाया है वह देहातमें मेल नहीं खाता, सेवा-राजनीतिके स्थानमें सत्ता-राजनीति चल पड़ी है। अंग्रेजोंके समयमें सरकारी नौकरीको प्रतिष्ठाका साधन समझा जाता था, पर आजादीके बाद नेतागीरी न केवल प्रतिष्ठाका साधन है वरन् जीविकाका भी एक साधन बन गई है। राज्योंकी विधानसभाओंमें पहुँचनेके लिए तीन-तीन कौड़ीके आदमी तिकड़मके सहारे सफल हो जाते हैं। एम० एल० ए० और एम० पी० बननेका चस्का उन्हें इसलिए है कि नौकरी अथवा परिश्रम द्वारा तो वे पचास रुपया मासिक भी नहीं कमा सकते, परन्तु एम० एल० ए० और एम० पी० बनकर कई-कई सौ मासिक पाते हैं, सगे-सम्बन्धियोंको नौकरी दिला सकते हैं, सरकारी नौकरोंपर रोब जमा सकते हैं। ऐसी दशामें सत्ताका खून उनकी दाढ़ोंमें लग जाय तो आश्चर्य ही क्या है। देशवासियोंका अधिकांश समय चुनावोंमें ही जाता है।

गांधीजीने रचनात्मक कार्यको राजनीतिकी आधार-शिला माना था। राजनीतिक स्वतन्त्रता साध्य नहीं थी, एक साधनमात्र थी—प्रत्येक व्यक्तिके उत्थान और विकासके लिए। गांधीजीने राष्ट्रनिर्माण और समाज-निर्माणकी भित्तिको दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया था। छुआछूत तथा ऐसे ही अन्य सामाजिक कलंकोंको मिटानेका प्रयत्न किया था। पर आज तो विधानसभाओं और लोक-सभाओंमें हरिजनोंके स्थान हमेशाके लिए सुरक्षित रखनेकी कोशिश हो रही है। अंग्रेज भी यही चाहते थे कि भारतीय समाजका पृथक्करण होता रहे। पंचायत कानून बना, चुनाव भी हो गये और दुनिया-भरमें ढिंढोरा पिटा कि भारतमें देहाती प्रजातन्त्रका बोलबाला हो गया, पर व्यावहारिक दृष्टिसे देशकी वर्त्तमान स्थितिमें पंचायतकी स्थापना एक अभिशापके रूपमें देहातकी दुर्दशा कर रही है। सैद्धान्तिक दृष्टिसे कोई पंचायतका विरोधी नहीं हो सकता। सहकारिता, पंचायतों और लोकतन्त्रीय शासनके लिए जीवनमें नैतिकता-की आवश्यकता है। सैकड़ों वर्षोंकी गुलामीके बाद देशमें औसतन नैतिक-स्तर नीचे गिरा हुआ है। फलस्वरूप कुछ पंचायतोंको छोड़कर शेष पंचायतोंमें राजनैतिक दलबन्दी, बिरादरीवाद और गुण्डागर्दीका बोलबाला है। फूट डालनेके लिए जो काम देहातमें अंग्रेज नहीं कर सके, वे इन पंचायतोंने कर दिये। प्रमाणके लिए पंचायतोंके बाद देहातमें मुकदमेबाजी कम होनी चाहिए थी। पर अब अपीलमें वे सब मुकदमे कोर्टमें जाते हैं जो पहले कभी आ ही नहीं पाते थे। घी तथा अन्य खाद्य-पदार्थ स्वास्थ्यके लिए आवश्यक हैं, पर टाइफाइडके रोगीको तो मार ही देते हैं। यही हाल पंचायतोंने देहातमें किया है। वर्त्तमान स्थितिमें पंचायतोंकी स्थापनाने यही किया है।

कांग्रेसका भविष्य भी कुछ उज्ज्वल नहीं दिखाई देता। सन् १९४२ के आन्दोलन-सम्बन्धी तीन वर्षकी जेलके बाद जब हम छूटे तो महात्मा गांधीके यहाँ पेशी हुई। तोड़-फोड़का काम क्यों शुरू किया गया और उसकी प्रगति क्या थी इसपर हमने अपने स्पष्ट विचार महात्माजीके

सामने रख दिये—"सन् १९४२ के 'अगस्त-प्रस्ताव' के बाद अधिकांश कांग्रेसियोंमें हीनत्व-भावना आ गई थी। कांग्रेसके प्रस्ताव और उद्देश्य महान् थे पर लोग कष्ट और पीड़नसे बचनेके लिए जेल चले जानेकी तैयारी करने लगे। 'करो या मरो' से बचने लगे। सरकारी नौकरोंसे यह अपील कि वे नौकरी छोड़ें न तो कांग्रेसकी सहानुभूति करें, बेकार रही। करोड़ोंके देशमें शायद एक दर्जनने ही नौकरी छोड़ी। सात्त्विक वृत्ति अच्छी है, बादमें रजोगुणीका नम्बर आता है। पर तमोगुणी तो खराब ही है। तोड़-फोड़का काम रजोगुणी वृत्तिका था। दम घुटनेवाले व्यक्तिका जीवित रहनेके लिए प्रयास था और अंग्रेजी शासनके लिए प्रतिक्रिया थी। जो कुछ भी आपका दंड हो, मुझे स्वीकार है।" हँसकर महाप्राण बापू बोले, "कांग्रेस डूब रही है, वह बहुत बड़ी संस्था है। शायद कोई रास्ता बचनेका निकल आये या उसे तोड़ना भी पड़े।"

हम जैसे क्षुद्र व्यक्तियोंका-सा बापूका दृष्टिकोण न था। अब उनकी शहादतके वर्षों बाद भी वह बात हमारे कानोंमें गूँज रही है। कांग्रेसका जन-सम्पर्क मिटता जाता है। अनेक ऐसे कांग्रेसी हैं जिनके पास नकद एक हजार रुपयातक भी न था, आज उनके सुन्दर भवन खड़े हैं, बैंकोंमें रुपया भरा पड़ा है। सत्य और गांधीजीके नामपर वे वोट माँगते हैं। देहातोंमें शासनके प्रति न श्रद्धा है न भय। अराजकताका ज्वर तीव्र होता जाता है। राजनीतिक गुण्डागर्दी बढ़ रही है। मंडलोंमें अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो पुलिसकी, तहसीलकी, नियोजन विभागकी दलाली करते हैं। सरकारके पास ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिसमें अनुदानके रुपयोंमेंसे देहातके कुछ पेशेवर लोग खा जाते हैं। पाँच सौ रुपये जो कूपके होते हैं उनमेंसे दो सौ रुपये 'धूपप्रसाद' नेता खा जाते हैं। विकासका कार्य हो रहा है। कुछ थोड़े-से लोग अमीर हो रहे हैं और अधिकांश गरीब। लोगोंमें यह बात घर कर गई है कि विधानसभाओंमें देहातका उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। कुछ आदमियोंको छोड़कर गांधीजीके खास आदमी-तक कहीं-न-कहीं सरकारी नौकरीमें चिपके रहना चाहते हैं। सेवाके

स्थानपर दिखावा और ढोंग चल रहे हैं।

राजनैतिक दृष्टिसे भारत किसी गुटमें नहीं है पर रूसी और अमरिकी गुटोंकी ओरसे प्रत्यक्ष प्रयत्न अवश्य हैं कि वह किसी-न-किसी गुटमें आ जाय। पाकिस्तान अमेरिकन गुटमें नत्थी है और उस गुटकी हिमा-इतसे भारतके विरुद्ध उसका प्रचार और विरोध अबाध रूपसे जारी है। कश्मीरके मामलेको लेकर कभी जिहादकी धमकी दी जाती है तो कभी अन्य किसी प्रकारके आक्रमणकी। गत द्वितीय महायुद्धके बाद जो राष्ट्र स्वतंत्र हुए हैं उन सबकी स्थिति खराब है। खाद्यान्न संकट उनकी आर्थिक व्यवस्थाको जर्जर बना रहा है। कानून बनाने, घोषणा करने और भाषणोंकी भरमारसे उन देशोंकी जनता त्रस्त है। नए राष्ट्रोंका जन्म हो रहा है और अफ्रीकाके अनेक देशोंमें राजनैतिक चेतना तीव्रतम हो रही है और कदाचित् राष्ट्रीयता और मानवताका अंतिम युद्ध अफ्रीकामें हो।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थितिके उपर्युक्त चित्रणमें पाठकोंको यह प्रतीत होगा कि भारतके राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवनपर तमतोमका गहन आवरण चढ़ा हुआ है। इस प्रकारकी परिस्थितिमें निराशाका होना स्वाभाविक है, पर प्रश्न यह है कि क्या देशका त्राण संभव नहीं है ? यदि वर्त्तमान अधोगतिको दूर करनेके लिए उद्योगीकरण ही सफल हो तो क्या हर्ज है। साधारण जनता, और विशेषकर भारतकी, न तो किसी 'वाद' पर जाती है और न किसी राजनैतिक दल-विशेषका साथ देती है—यदि उसके संकट दूर हो जायँ। साधारण जनताको शांति, सुरक्षा और दृढ़ आर्थिक व्यवस्थाकी आवश्यकता है। किसानोंकी सहा-नुभूति और सहयोगसे और कांग्रेसके उज्ज्वल नेतृत्व, विशेषकर महात्मा गांधीके नेतृत्वसे, ब्रिटिश शासनका तख्ता पलट गया और यदि किसानों-की स्थिति नहीं सुधरी तथा बिना उनको समझे उनका नेतृत्व स्वार्थी लोगोंके हाथोंमें रहा तो किसानोंके सहयोगसे ही कांग्रेसको बड़ा भारी धक्का लगेगा। बढ़ती आबादी और आर्थिक व्यवस्थामें भी देशका त्राण सम्भव ही नहीं, निश्चित है। देशका कल्याण न तो कोई पूँजीवादसे होगा

न साम्यवाद और न तथाकथित समाजवादसे वरन् राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके बताये मार्गसे हमारे राजनीतिज्ञ और अन्य लोग कितने ही बहक जायँ; उन्हें बाध्य होकर गांधीजीके मार्गपर ही जाना होगा। इस मार्ग-पर न चलनेसे जनताका ही अहित न होगा वरन् विश्वशांति और मानव-हितकी भी हानि होगी। गांधीजीके प्रोग्राम और उनके बताये मार्गके लिए गांधीजी वाङ्मय लिपिबद्ध है। उसपर कुछ लिखना पुनरावृत्ति करना है, पर फिर भी यह तो लिखना ही पड़ेगा कि विश्वका त्राण गांधीजीके बताये मार्गपर चलनेमें ही है। जो बात एक व्यक्तिके लिए ठीक है वह विश्वभरके लिए ठीक है इसलिए जबतक प्रत्येक व्यक्ति सुधरनेकी कोशिश न करेगा तबतक कोरे कानूनोंसे कुछ न होगा। गांधीजीके प्रोग्रामके अनुसार नियोजनके चार स्तंभ हैं—(१) मनुष्य, (२) जमीन, (३) गाय, (४) लघु उद्योग।

मनुष्योंमें जबतक नैतिकता और नागरिकता नहीं आयेगी तबतक उसका विकास सम्भव नहीं। नैतिकता बाजारमें नहीं बिकती, उसका प्रारम्भ घरमें होता है। जिस व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें नैतिकता और नागरिकता नहीं है वह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। बिना नैतिकता और नागरिकताकी भावनाके समाज-कल्याण और निर्माण बालूकी भीतके समान है। राष्ट्रीय सम्पत्तिकी इकाई जमीन है। उसको उपजाऊ बनाना, उचित नियमोंका प्रयोग करना आवश्यक है ताकि उससे जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। भारत जैसे कृषिप्रधान देशमें गाय आर्थिक व्यवस्थाका केन्द्रबिन्दु है, झूठी पूजा और कोरी भावनाके लिए नहीं वरन् उससे अधिक दूध प्राप्त करनेके लिए। साथ ही गृह-उद्योगों और लघु-उद्योगोंके बिना न तो इस देशकी बेकारी दूर होगी और न आवश्यक वस्तुओंकी प्राप्ति हो सकेगी। गाँव-वाले कपड़ा, चीनी, तेल आदिके लिए शहरोंकी ओर भागते हैं। यदि देशकी ७५ प्रतिशत आबादीको स्वावलम्बी बनना है तो यह प्रयास होना चाहिए कि जो काम घरमें हो सकता है वह गाँवमें न हो, जो गाँवमें

हो सकता है वह शहरमें न हो। किसानकी खूनकी कमाईका अधिकांश भाग छिन जाता है। फसलपर गल्ला सस्ता हो जाता है और फिर महँगाईकी मारसे किसान मरता है। गाँव क्या है मानो गरीबी और बेबसीके फफोले देशभरपर भरे पड़े हैं। हमारी व्यवस्थामें गाँववालोंकी जरूरतें गाँवोंमें ही पूरी होनी चाहिए।

हमारा अटल विश्वास है कि गांधी-मार्गपर चलनेसे ही देशकी समृद्धि सम्भव है। उन्हींके मार्ग द्वारा भारतकी स्वतंत्रता विश्वके लिए कल्याण-कारिणी हो सकती है। शब्द ब्रह्म है अतः यदि भारतके विवेकशील विद्वान् साहित्यसेवी और पत्रकार अपनी वाणियों और लेखनियों द्वारा उसका प्रचार करें तथा स्वयं आचरण करें तो कोई कारण नहीं कि भारत समृद्धिशाली न हो और वह समता, मानवता तथा विश्व-बन्धुत्वका व्यावहारिक आदर्श उपस्थित करके नव-निर्माणमें सहायक न हो सके।

गांधी पुण्यतिथि
जनवरी, १९५४
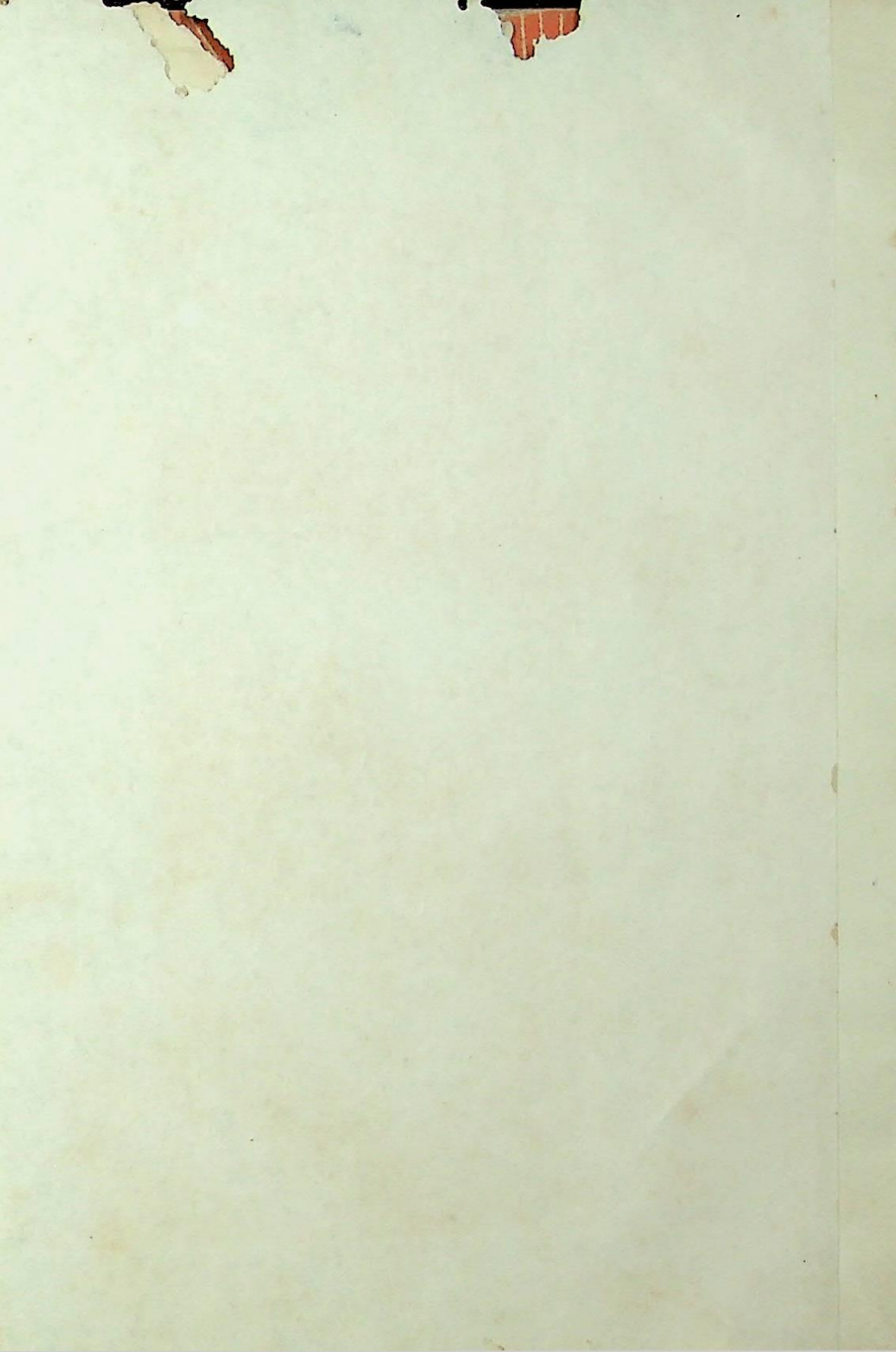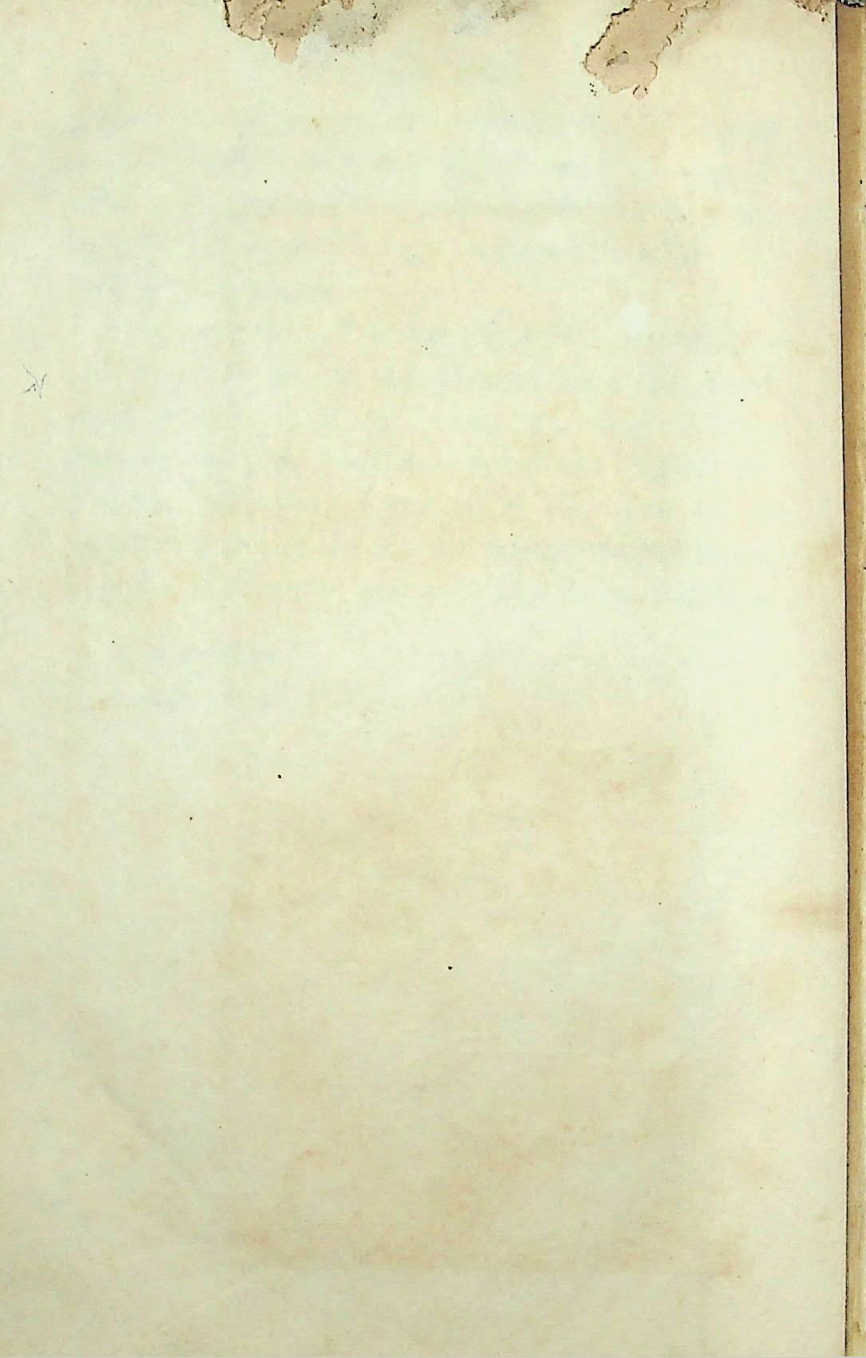
जन्मतः ब्राह्मण होनेपर भी स्वभावतः क्षत्रिय ...
किसान। एम० ए०, एल-एल० बी० छोड़, १९२० ...
योग आन्दोलनमें उतर क्रान्तिकारियोंका संघर्षमय जीवन उनकी साधना रही है और 'दैनिक प्रताप', तत्पश्चात् 'विशाल भारत' का सम्पादन तथा स्वतन्त्र पत्रकारिता जीवनकी आराधना। संघर्षों और विपत्तियोंमें वे पले और अपने आदर्शों पर अडिग रहनेके कारण जीवित रहे।

हृदय-स्पर्शी संस्मरण, भावपूर्ण स्कैच तथा साकार शब्द-चित्रोंके धनी शर्माजी, हिन्दीमें शिकार-साहित्यके तो जन्म-दाता ही हैं।

'संघर्ष और समीक्षा' सन् बयालीसके स्वानुभवोंका संकलन है। 'नवभारत टाइम्स्'के शब्दोंमें, "इन निबन्धोंमें इतिहास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, संस्मरण एवं 'रिपोर्ताज' का ऐसा सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है कि पढ़नेवाला मंत्र-मुग्ध हो जाता है।

"...लेखकने आन्दोलनको स्वयं देखा था, सक्रिय भाग लिया था, दारुण यातनाएँ सही थीं, परिणामतः वैयक्तिक अनुभव और स्वानुभूतियोंकी अभिव्यक्तिमें स्वभावतः एक मुखरता, हृदय-ग्राहिता और प्रभविष्णुता आ गई है। भाव, भाषा, शैली और सभी दृष्टिसे लेखक का प्रयत्न सफल है।"...

तीन रुपया